ISSN : 2321-3922
जुलाई -2024
RNI-BIHHIN05394
वर्ष-12 अंक-38
Regd. No. PT/105/BGP-13/2027

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

www.susambhavya.com

ग़ज़ल विशेषांक

सुसंभाव्य

(सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका)

जुलाई–सितम्बर–20 24

प्रकाशन : 27 जनवरी 2013

श्री दयानन्द जायसवाल
संस्थापक–सह–प्रधान संपादक

श्रीमती अनिता जायसवाल
संरक्षक

डॉ. गिरिजा शंकर मोदी
सम्पादक मंडल

अश्विनी प्रजावंशी
सम्पादक मंडल

श्रीमती छाया पाण्डेय
संस्थापक सदस्य

श्रीमती संयुक्ता गुप्ता
संस्थापक सदस्य

कार्यालय प्रभारी

बिरजू कुमार
भागलपुर
7004435995

सुमित भारती
कोलकाता
8757689138

सौरभ भारती
दिल्ली
8699170450

स्वत्वाधिकारी व प्रकाशक :

श्री दयानन्द जायसवाल

संपादन, संचालन, प्रबंधन एवं
समस्त व्यवस्था अवैतनिक एवं अव्यावसायिक ।
रचनाओं के लिए रचनाकार स्वयं उत्तरदायी।
समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र
भागलपुर।

RNI No. : BIHHIN05394/2015
ISSN - 2321-3922
वर्ष–11, अंक–38

अतिथि संपादक
अनिरुद्ध सिन्हा
मो० : 7488542351

सम्पर्क : श्री दयानन्द जायसवाल

मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर–813210 (बिहार)
मो० : 09931240303
वेबसाईट : www.susambhavya.com
ई–मेल : dnj.sambhavya@gmail.com

RNI No. : BIHHIN05394/2015
ISSN - 2321-3922
जुलाई–सितम्बर–24

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

वेबसाईट : www.susambhavya.com

आमंत्रण

'सुसंभाव्य' अंतर्राष्ट्रीय स्तर की हिंदी त्रैमासिक है जो वर्तमान समय में विश्व के विभिन्न देशों के पाठक सहित भारत के लगभग सभी शहरों के सहृदयों का स्नेह इस पत्रिका को प्राप्त है।

इसका ई–संस्करण विश्वग्राम के सभी सुधी पाठकों एवं स्नेहीजन के लिए www.susambhavya.com पर सहजता के साथ सुलभ है। मुद्रित संस्करण यथासंभव रचनाकारों, हिंदी के लिए समर्पित संस्था और संस्थानों को उपलब्ध कराया जाता है।

श्रेष्ठ चिंतन सहज–सरल अभिव्यक्ति के माध्यम से जब कोई व्यक्ति सार्वभौम होकर जन–गण में व्याप्त हो जाता है तब वह व्यक्ति से व्यक्तित्व और व्यक्तित्व से संस्थान बन जाता है। ऐसे महान विभूतियों से आग्रह है कि जनवरी 2025 अंक में प्रकाशन हेतु अपनी मौलिक, नवीनतम एवं प्रतिनिधि रनचाएं अपने पत्राचार–पता के साथ, कोरियर या डाक से संपादक के पते पर भेजें।

आइये सब मिलकर सामाजिक सरोकार से संबंधित सार्वभौम, सार्वजनीन एवं श्रेष्ठ साहित्य के माध्यम से धर्म–मज़हब, जाति, लिंग, वर्ण, वर्ग और नस्ल–भेद की दीवार हटा दें और सिर्फ इंसान बनें तथा उत्तम ज्ञान एवं श्रेष्ठ आचरण से स्वयं का परिष्कार कर विश्वग्राम का सौभाग्य बनें।

संपादक
सुसंभाव्य हिन्दी त्रैमासिक
E-mail : dnj.sambhavya@gmail.com
Mob.: 9931240303

सम्पर्क : श्री दयानन्द जायसवाल
मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर–813210 (बिहार)
मो० : 09931240303

नोट : कृपया अपनी रचनाएँ kurtidev -010 में ही ई मेल से भेजें अन्यथा स्वीकृत नहीं होगी।

अनुक्रम

1. संस्थापक की कलम से – दयानन्द जायसवाल 5
2. अतिथि संपादक के दो शब्द – अनिरुद्ध सिन्हा 6
3. हिंदी ग़ज़ल में दलित दस्तक – डॉ. जियाउर रहमान जाफरी 7
4. समकालीन संवेदना को स्वर देती ग़ज़लें – हरेराम समीप 12
5. हिन्दी गजल समीक्षात्मक विश्लेषण – डॉ. कृष्ण कु. नाज 15
6. समाज में दिन-ब-दिन फैलती नफरत के खिलाफ गजल की चिंता – के. पी. अनमोल 19
7. हिन्दी गजल के विभिन्न आयाम – डॉ. रमा दूधमांडे 21
8. समकालीन जीवन दृष्टि और सपनों की उष्माः जिन्दगी आने को है – डॉ. सारिका मुकेश 24

— ग़ज़लें —

9. अनिरूद्ध सिन्हा 20
10. ईश्वरदत्त अंजुम 26
11. वशीर अहमद 'मयूख' 26
12. राजेन्द्रनाथ रहबर 27
13. सुधेश 27
14. मीरा हिंगोरानी 28
15. हितेश कुमार वर्मा 28
16. जहूर अहमद खाँ 28
17. अंजना वर्मा 29
18. शशि आनन्द अलबेला 29
19. हरेराम समीप 30
20. बसंत, कालजयी घंश्याम 31
21. कृपाशंकर अचूक 31
22. चाँद मुंगेरी 32
23. अशोक मिजाज बद्र 32
24. डॉ. राजेन्द्र प्रसाद मोदी 33
25. कैलाश पचोरी 33
26. परवीन कुमार अश्क 34
27. प्रो० वशिष्ठ अनूप द्विवेदी 34
28. शुचि भवि 35
29. श्लेष चन्द्राकर 35
30. के. पी. अनमोल 36
31. कविता विकास 36
32. रमेश कंवल, वसंत राघव 37
33. डॉ. शैलेश गुप्त 'रवि' 37
34. रमेश वियोगी 38
35. आसमां बेगम 38
36. सारिका त्यागी 38
37. इन्दिरा शबनम 39
38. प्रतिभा शुक्ल 39
39. सागर मिर्जापुरी 39
40. सुशील साहिल 40
41. अशोक अंजुम 40
42. दिनेश तपन 41
43. डॉ. अलका वर्मा 41
44. मो० नसीम अख़्तर 42
45. डॉ. सीमा विजयवर्गीय 42
46. अभिनव अरुण 43
47. डॉ. नलिनी विभा 'नाज़ली' 44
48. डॉ. विज्ञान व्रत 44
49. कमलेश साह 45
50. चन्द्रभान राही 45
51. सुषमा चौहान 'किरण' 45
52. सूर्यप्रकाश 'अस्थाना' 46
53. शकील आज़मी 46
54. नसीमा 'निशा' 46
55. ज्ञानप्रकाश विवेक 47
56. वर्षा सिंह 47
57. हीरा प्रसाद हरेन्द्र 48
58. लोदी मो० शफी खान 48
59. मनीष बादल 49
60. नेमीचंद जैन 49
61. अरुण कुमार वर्मा 50
62. ज्ञानेन्द्र पाठक 50
63. डॉ. नूतन कुमारी 51
64. राजेश पाठक 51
65. सपना चन्द्रा 51
66. शिव कुमार सुमन 52
67. माधुरी स्वर्णकार 52
68. रामचरण राग 53
69. गणेश शंकर श्रीवास्तव 53
70. प्रेमरंजन अनिमेष 54
71. विनय मिश्र 54
72. सुमन आशीष 55
73. विकास 55
74. डॉ. भावना 56
75. राजेन्द्र वर्मा 56
76. कमलेश भट्ट 'कमल' 57
77. अभिषेक कुमार सिंह 57
78. संजीव प्रभाकर 58
79. अनुज पाण्डेय अब्र 58
80. संजय कुमार कुन्दन 59
81. स्वदेश कुमार भटनागर 59
82. धर्मेन्द्र गुप्त साहिल 60
83. पंकज कर्ण 60
84. राहुल शिवाय 61
85. नफ़ीस परवेज़ 61
86. बसंत राघव 62
87. मधुकर वनमाली 62
88. सरोज व्यास 63
89. रमेश कटारिया 'पारस' 63
90. नूर मोहम्मद 'नूर' 64
91. उमा श्री 64
92. रवीन्द्र रवि 65
93. अंजनी कुमार शर्मा 65
94. डॉ. मनाज़िर आशिक़ हरमानवी 65
95. डॉ. अमरेन्द्र 66
96. डॉ. आभा पूर्वे 66
97. खुशीलाल मंज़र 67
98. हृदयेश मयंक 67
99. भानु मित्र 68
100. जहीर कुरैशी 68
101. बेकल उत्साही 69
102. शहादत अली निज़ामी 69
103. सत्यम भारती 70
104. सुभाष पाठक 'जिया' 70
105. गरिमा सक्सेना 71
106. महेन्द्र अग्रवाल 71
107. डॉ. आरती कुमारी 72
108. भगवती प्रसाद द्विवेदी 72
109. सुभाष चन्द्र झा 73
110. रवि खंडेलवाल 74
111. वाई० वेदप्रकाश 74
112. अनामिका सिंह 75
113. भानु झा 75
114. नवीन माथुर पंचोली 76
115. आराधना प्रसाद 76
116. सुधीर कुमार प्रोग्रामर 77
117. कृष्ण कुमार प्रजापति 77
118. शिव नारायण 78
119. ममता किरण 78
120. नज़्म सुभाष 79
121. द्विजेन्द्र द्विज 79
122. अविनाश भारती 80
123. विकास विदीप्त 80
124. शरद नारायण खरे 81
125. अंजनी कुमार सुमन 81
126. प्रकाश पुरोहित 82
127. धर्मपाल महेन्द्र जैन 82
128. कंचन लता चतुर्वेदी 83
129. प्रसन्न वदन चतुर्वेदी 'अनघ' 83
130. मुनव्वर राणा 84
131. सामबे, ग़ज़ाला तवस्सुम 84

हो गई है पीर पर्वत सी पिघलनी चाहिए

हो गई है पीर पर्वत सी पिघलनी चाहिए
इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए
आज ये दीवार पर्दों की तरह हिलने लगी
शर्त लेकिन थी कि ये बुनियाद हिलनी चाहिए
हर सड़क पर हर गली में हर नगर हर गाँव में
हाथ लहराते हुए हर लाश चलनी चाहिए
सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मक़्सद नहीं
मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए
मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में सही
हो कहीं भी आग लेकिन आग जलनी चाहिए।

दुष्यंत कुमार

पुरोवाक्

दयानन्द जायसवाल

संस्थापक की कलम से

अतीत के महत्वपूर्ण क्षणों को साहित्य हमारे आनेवाली पीढ़ी के लिए सहेजकर रखता है। सुख के क्षण हों या दुख के, सभी पर साहित्य की कितनी पैनी नजर होती है, फ़िराक़ गोरखपुरी से सुनें–''ग़ज़ल वो बाँसुरी है, जिसे जिंदगी की हलचल में कहीं खो दिया था और जिसे ग़ज़ल का शायर कहीं से फिर उसे ढूंढ लाता है और जिसकी लय सुनकर भगवान की आँखों में भी इंसान के लिए मुहब्बत के आँसू आ जाते हैं।''

समकालीन हिन्दी ग़ज़ल जो न केवल समकालीन भारतीय समाज की आशा–आकांक्षाओं और अपने समय की विसंगतियों को मजबूती और सच्चाई से अभिव्यक्त कर रही है, बल्कि आम आदमी की पीड़ा और तमाम तरह की दुश्वारियों को व्यक्त करते हुए भारतीय व्यवस्था और राजनीति को कटघरे में खड़ा करने से नहीं चूकती। आधुनिककाल में जब साहित्य ने रीतिकालीन दरबारी संस्कृति से मुक्ति की घोषणा की, तब उसका सामना भारतीय जनजीवन के विद्रूप यथार्थ से हुआ। आगे चलकर एक ऐसा समय आया, जब नई कविता के बौद्धिक आतंक ने हिन्दी कविता से संप्रेषणीयता की आवश्यकता के सारे विमर्श को गायब कर दिया था और कवि को अपनी कविता उन लोगों तक न पहुँच पाने की पीड़ा भीतर तक सालने लगी थी, जिनके लिए वह लिख रहा था, तब हिन्दी में ग़ज़ल के अंदाज़े–बयाँ, मारक प्रभाव, संप्रेषणीयता और स्मृतिजन्य क्षिप्रता की विशेषताओं को पहचानते हुए ग़ज़ल में समकालीन जीवन की विडम्बनाओं की प्रभावशाली अभिव्यक्ति होने लगी।

ग़ज़ल अब केवल प्रेम और विरहजनित पीड़ा को व्यक्त करने का माध्यम भर नहीं रह गई है। ग़ज़ल में अब समकालीन जीवन की विसंगतियों से उत्पन्न विकारों और समस्याओं पर खुलकर अभिव्यक्ति होने लगी है। ग़ज़ल अब गुलो–बुलबुल के किस्सों से बाहर आ चुकी है। ग़ज़ल में अब महबूब का ही नहीं, माँ का भी ज़िक्र होता है और बेटी का भी। अब ये उन हवेलियों और कोठों से निकलकर घरों में सज रही है और हिन्दी, उर्दू का झगड़ा, कोई झगड़ा नहीं रहा। भाषा और भाव में भाव बड़ा रहता है, लेकिन भाषा की अहमियत भी अपनी जगह है। दुष्यंत ने कहा है–''ग़ज़ल एक कोमल विधा है। यहाँ साँस लेने से सफ़ीने डूब जाते हैं, सो ग़ज़ल की नाज़ुक ख़्याली का ख़्याल रखना पड़ता है।'' पुस्तकीय ज्ञान न भी हो तो ग़ज़ल की वे सारी बहरें (छंद) जिसके अंतर्गत कोई शायर अपने 'अशआर' रच रहा है, उसके अवचेतन में जरूर विद्यमान हो। यह अवश्य ध्यान रहे कि शेर छंद मुक्त तो नहीं हो गया, बहर से बाहर तो नहीं चला गया। उर्दूभाषियों में तो यह कहावत प्रसिद्ध है कि शायर पैदा होता है, बनता नहीं। इस कहावत की कसौटी पर परख कर देखें तो अनुभव होगा कि कबीर काव्यात्मक स्वभाव लेकर ही पैदा हुए थे। ग़ज़ल की विशेषता है कि उसमें शब्दों का किफ़ायत के साथ प्रयोग होता है। इसमें व्यक्तिगत शैली अथवा ग़ज़लकार के निजी एवं सशक्त लहजे होते हैं। इसका प्रत्येक शेर अपनी विषय–वस्तु के दृष्टिकोण से अपना पूर्ण अस्तित्व रखता है। ग़ज़ल की नाज़ुकी, ग़ज़ल की खूबसूरती और दो मिसरों में सदियों की दास्तान कह देने की खुसुशियत, साहित्य की दूसरी विधाओं से जुड़े बड़े–बड़े साहित्यकार भी ग़ज़ल के चुंबकीय आकर्षण से बच नहीं पाये।

हिन्दी ग़ज़ल के इतिहास में दृष्टि डालें, तो पता चलता है कि हिन्दी में ग़ज़ल लिखने की परंपरा बहुत पुरानी है। कविता में अन्त्यानुप्रास/तुकांत परंपरा की शुरूआत सन् 690 ईसवी के आसपास सिद्ध सरहपा ने की थी। जिसे आधुनिक कविता का प्रारंभिक रूप माना जा सकता है। सिद्ध सरहपा द्वारा रचित दोहे शेर/बैत के समान ही थे। उदाहरण के तौर पर–

जेहि वन पवन न सचरई, रवि ससि ना प्रवेस।
तेहि वट चित्त विश्राम करूँ, सरहे करिय उवेस।।

कबीर (1338–1518) की निम्नलिखित ग़ज़ल पर सबसे पहले डॉ. गोविंद त्रिगुनपात का ध्यान गया। जिसके आधार पर कबीर को पहला हिन्दी ग़ज़लकार माना गया।

हमन हैं इश्क मस्ताना हमन को होशियारी क्या,
रहें आजाद यों जग में हमन दुनिया से यारी क्या,
कबीरा इश्क का मारा दुई को दूर कर दिल से,
जो चलना राह नाजुक है हमन सिर बोझ भारी क्या।

हालाँकि बाद के कवियों ने भी कबीर की तरह छंदबद्ध कविताओं को समृद्ध किया है। रहीम (1556–1627 ईसवी) का दोहा–

रूठे सुजन मनाइए, जो रूठै सौ बार।
रहिमन फिर फिर पोइए, टूटे मुक्ताहार।।
एकै साधै सब सधे, सब साधे सब जाय।
रहिमन मूलहिं सीचिबो, फूले फलै अघाय।।

बिहारी (1603–1664) ने भी अच्छे दोहे लिखे–

सतसैया के दोहरे, ज्यों नावक के तीर।
देखन में छोटे लगैं, घाव करैं गंभीर।।

जिस तरह हिन्दी दोहों से हिन्दी ग़ज़लों का विकास हुआ, ठीक उसी तरह बैत या शेर से उर्दू ग़ज़लों का विकास हुआ है। आरंभिक उर्दू ग़ज़लों के उद्गम की तुलना तुकांत हिन्दी कविताओं (दोहों) से की जा सकती है। बहुत से समीक्षक भारतेंदु हरिश्चन्द्र (1850–1885 ईसवी) को पहली हिन्दी ग़ज़ल लिखनेवाला कवि मानते हैं। बानगी के तौर पर उनकी ग़ज़ल का एक शेर है–

रुखे रौशन पे उनके गेसू–ए–शबगूं लटकते हैं
क़यामत है मुसाफिर रास्ता दिन में भटकते हैं।

निराला (1896–1961) की ग़ज़लें हिन्दी ग़ज़लों के बहुत करीब दिखाई देती हैं, जैसे–

जमाने की रफ्तार में कैसा तूफाँ
मरे जा रहे हैं जिये जा रहे हैं
खुला भेद विजयी कहाए हुए जो,
लहू दूसरों का पिये जा रहे हैं।

बहुत से कवियों ने बेहतरीन हिन्दी ग़ज़लें लिखी हैं एवं आज भी लिख रहे हैं। जिनकी रचनाधर्मिता से हिन्दी ग़ज़लसंसार समृद्ध हुआ है

और निरंतर हो रहा है, लेकिन काव्य–संसार में 'साये में धूप' के माध्यम से इसे स्थापित करने का श्रेय दुष्यंत कुमार को दिया जाता है। उनकी हिन्दी ग़ज़लों को जो लोकप्रियता हासिल हुई है, उससे साहित्य जगत में हिन्दी ग़ज़लों की सशक्त उपस्थिति दर्ज हुई।

मानव संवेदनाओं एवं चेतना को जागृति करने में हिन्दी ग़ज़ल ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। मानवतावादी चिंतन को इस विधा में विशिष्ट स्थान मिला है। यह हिन्दी साहित्य की एक सशक्त और अत्यन्त लोकप्रिय काव्य–विधा है। हिन्दी साहित्य का इतिहास इस बात का साक्षी है कि हिन्दी काव्य में अनेक आंदोलन एवं वाद आये और चले गये। नयी कविता, अकविता, विचार कविता आदि आंदोलन एक समय हिन्दी काव्याकाश पर छाये रहे हैं। किन्तु यह समस्त आंदोलन लयहीनता, अतिबौद्धिकता एवं व्यापक उद्देश्यों के अभाव के कारण जनमानस पर अपना शाश्वत प्रभाव स्थापित नहीं कर सके। गीतात्मक काव्य में आज नवगीत के अतिरिक्त केवल ग़ज़ल ही एक विशिष्ट तेवर के साथ हिन्दी में प्रचलित है। इसकी शुरूआत लगभग पन्द्रह सौ वर्ष पहले अरबी भाषा में हुई थी। आयातित विधा होने के कारण हिन्दी ग़ज़ल उर्दू ग़ज़ल के कथ्य एवं शिल्प से प्रभावित तो है, किन्तु इससे अपने कथ्य–कौशल में निश्चय ही परिष्कार किया है और उर्दू ग़ज़ल की औपचारिकता की अपेक्षा अत्यधिक अनौपचारिक हो गई है। निस्संदेह हिन्दी ग़ज़ल ने काव्य को नयी भावभूमि एवं नवीन तेवर प्रदान किये हैं और वह दरबारों से निकलकर जनमानस का कंठहार बन गयी है। हिन्दी ग़ज़ल को परिभाषित करते हुए डॉ. कुँअर बेचैन लिखते हैं कि ''ग़ज़ल रेगिस्तान के प्यासे होठों पर उतरती हुई शीतल तरंग की उमंग है। ग़ज़ल घने अंधकार में टहलती हुई चिंगारी है। ग़ज़ल नींद से पहले का सपना है। ग़ज़ल जागरण के बाद का उल्लास है। ग़ज़ल गुलाबी पाँखुरी के मंच पर बैठी हुई खुशबू का मौन स्पर्श है।''

इस प्रकार ग़ज़ल में भाषा का सौंदर्य ताजा मक्खन की कोमलता एवं महक, केशर का रंग एवं सुगंध तथा प्रेम का संपूर्ण रोमांच विद्यमान है। नवीनतम विषयों का निचोड़ है। आकाश का छोर ढूंढने की ललक है। शब्दों में निहित स्वाद तथा लावण्य का अनूठा सुमेल है।

अनिरुद्ध सिन्हा
गुलजार पोखर, मुंगेर
मो. 7488542351

अतिथि संपादक के दो शब्द

मुझे यह बात कहने में कोई मुश्किल नहीं होती कि आज की हिन्दी ग़ज़लें हिंदी काव्य में अपना स्थान ग्रहण करने के बाद आज हमारे जीवन का सफल वार्ताकार बन चुकी है। एक तो प्रथम कारण इसकी पुरानी और दृढ़ परंपरा है। लोकोक्तियाँ और पारिभाषिक शब्दावली, भाषा का रखरखाव, अभिव्यक्ति की क्रिया जो पाठक को सहज ही अपनी ओर आकर्षित करने में सक्षम है। हम जानते हैं कि कोई भी विधा को पाठकीय स्वीकृति प्राप्त करने के लिए इन सारी विन्दुओं पर काफी गंभीरता के साथ विचार करने की जरूरत पड़ती है। हिन्दी के ग़ज़लकारों ने इन विषयों पर गंभीरता के साथ सोचा और अपने लेखन का आधार बनाया। विषय और वर्णन के चयन के अतिरिक्त भाषा–संबंधी निपुणता की विश्वस्त साक्षी के रूप में इस विशेषांक की ग़ज़लें हैं। ग़ज़लों के चयन में पूरी तरह से पारदर्शिता लाने का प्रयास किया गया है। कभी–कभी निर्मम होकर भी सोचना पड़ा। इस अंक में कुछ ग़ज़लकारों की ग़ज़लें नहीं आ पायीं। इसका प्रमुख कारण की कुछ सीमाएँ हैं तथा अपनी मजबूरियाँ हैं। कभी–कभी ग़ज़लों के साथ ऐसा भी होता है, सिर्फ पाठ के स्तर पर ही शिल्प, छंद और रवानी के प्रति भी गंभीर होना पड़ता है। इस कसौटी पर ग़ज़लें नहीं उतरती हैं, तो दिक्कत हो ही जाती है। इस विशेषांक में शामिल ग़ज़लों के बारे में इतना तो कहा ही जा सकता है, जो ध्यानाकर्षण का केंद्र है कि यह विशेषांक एक छतनार पेड़ की तरह है, जिसमें बुजुर्गी का, प्राचीनता का, सभ्यता और संस्कृति का, दर्दमंदी और जीवन के फल लगे हैं। निर्णय तो पाठक ही करेंगे इन फलों में मिठास है कि नहीं। कहना न होगा कि आधुनिक हिन्दी काव्य–जगत में ग़ज़ल ने विशेष लोकप्रियता प्राप्त की है और अन्य विधा के सर्जक भी इसे आदर की दृष्टि से देखने, परखने, सुनने और सराहने लगे हैं।

अंत में दयानंद जायसवाल के श्रम भी उत्साह देनेवाले थे। अंक आने में थोड़ा विलंब हुआ। इसे संपादकीय मजबूरी नहीं, बल्कि समय का कठोर हो जाना था।

आलेख

हिन्दी ग़ज़ल में दलित दस्तक

डॉ. जियाउर रहमान जाफरी
असिस्टेंट प्रोफेसर
मिर्जा गालिब कॉलेज गया, बिहार
मो.–9934847941

हिन्दी में दलित साहित्य की अवधारणा भक्तिकाल में रैदास की कविताओं से शुरू हुई, लेकिन उसे वास्तविक पहचान आधुनिक काल में दलित लेखकों की आत्मकथा से मिली। हिन्दी की पहली दलित कथा मोहनदास नैमिश राय की 'अपने–अपने पिंजरे' (1995) मानी जाती है। उसके बाद ओम प्रकाश वाल्मीकि का 'जूठन' (1997) प्रकाशित होता है। ये दोनों दलित साहित्य के बेहद महत्वपूर्ण आत्मकथा रहीं। इसमें दलितों का पूरा जीवन दिखाया गया है कि वह किस तरह की जिंदगी जीने को विवश हैं। इसी क्रम में कौशल्या बैसंती का 'दोहरा अभिशाप' (1999), सूरजपाल चौहान का 'तिरस्कृत' (2002), धर्मवीर का 'मेरी पत्नी और भेड़िया' (2009) तथा तुलसीराम का 'मुर्दहिया' (2010) आदि का नाम भी लिया जा सकता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी दलितों को शिक्षा प्राप्त करने के लिए जो लंबा संघर्ष करना पड़ा, जूठन इसे गंभीरता से उठाती है। मुर्दहिया पूर्वी उत्तरप्रदेश के ग्रामीण अंचल में शिक्षा के लिए संघर्ष एक दलित की मार्मिक अभिव्यक्ति है। दोहरा अभिशाप इस बात को मजबूती से रखती है कि स्त्री अगर दलित भी हो, तो उसे दोहरे अभिशाप से गुजारना पड़ता है। एक उसका स्त्री होना और दूसरा उसका दलित होना।

आधुनिक हिन्दी कविता में दलित दस्तक हीरा डोम की काव्य रचना अछूत की शिकायत से मिलती है, जिसमें कवि भगवान द्वारा भी भेदभाव किये जाने का वर्णन करता है–'हमनी के दुख भगवानों न देखे' कवि प्रश्न करता है एक ही जिस्म हमारा भी है और ब्राह्मण का भी। फिर हम दलितों को वो अधिकार क्यों नहीं है। सितंबर 1914 की सरस्वती पत्रिका में छपी यह पहली और आखिरी दलित कविता है, जिसे भोजपुरी भाषा में लिखा गया था।

दलित हिन्दू समाज व्यवस्था में सबसे निचले पायदान पर है। उसके पास संविधान प्रदत्त मौलिक अधिकार भी नहीं है। दलित रचनाओं में जहाँ सामाजिक भेदभाव जनित पीड़ा है, वहीं दलित कविताओं में शोषण और उत्पीड़न से मुक्ति के स्वर भी हैं। अन्य कविताओं की तरह दलित कविता मनोरंजन का साधन नहीं है, बल्कि इसमें अपनी पीड़ा और अपना आक्रोश है। दलित कवि डॉ.एन. सिंह ने जिसे 'बेजुबान आदमी की आवाज कहा है'। ओमप्रकाश वाल्मीकि, कमल भारती, डॉ. युवराज सिंह 'बेचैन', मलखान सिंह, निर्मला पुतुल, जयप्रकाश कर्दम आदि वह दलित कवि है, जिनकी कविताओं में दलित समाज की वेदना, व्यथा, आक्रोश, आकांक्षा और छटपटाहट साफ दिखाई देती है। उदाहरण के लिए जयप्रकाश कर्दम की कविता 'मेरे अधिकार कहाँ हैं' कि कुछ पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं–

तुम कहते हममें यह नहीं
तुम कहते हम सब भाई हैं
फिर क्यों ऊँचे तुम मैं नीचा क्यों
जाति वर्ण की खाई है
तुम चाहो रामराज आए
तुम श्रेष्ठ
शूद्र मैं बना रहा हूँ
तुमको सारे अधिकार रहें
मैं वर्जनाओं से लड़ता रहूँ।

ग़ज़ल जो एक सामंतवादी विधा थी, हिन्दी में आकर सर्वहारा वर्ग से जुड़ गयी। फारसी, अरबी, उर्दू की ज्यादातर ग़ज़लें प्रेमप्रधान थीं। यहाँ तक कि हिंदी में भी निराला, त्रिलोचन, रंग और शमशेर ऐसी ही ग़ज़लें लिखते रहे; लेकिन दुष्यंत ने ग़ज़ल का लहजा बदला, जो ग़ज़ल शृंगार की थी, वह ग़ज़ल घर–परिवार की बन गयी। उसमें अपनी तकलीफों का बयान होने लगा, जो ग़ज़ल राजदरबारों में रहकर आई थी, मनुष्य की जरूरतों से जुड़ गयी। उसमें सत्ता और सामंत के प्रति विरोध दिखाई देने लगा।

हिन्दी का दलित वर्ग भी इसी आशा असमानता का शिकार रहा, भेदभाव, छुआछूत और पाकी–नापाकी के बने बनाये हुए मानदंडों ने उन्हें हमेशा हाशिये पर रखा। वह जिस धर्म के थे, उस धर्म के ठेकेदारों ने भी उन्हें खारिज किया।

हिन्दी कविता से हिन्दी ग़ज़ल की स्थिति इस अर्थ में भी थोड़ी–सी अलग है कि हिन्दी दलित कविता में दलित कवियों में ही प्रमुखता से अपने जज्बात रखें। इसलिए उसमें आत्म पीड़ा भी दिखाई पड़ी। हिन्दी ग़ज़ल में एक दो को छोड़ दें, तो मुश्किल से ही कोई दलित ग़ज़लकार मिलेंगे। जो है, वह उतने चर्चित नहीं है। ऐसे ही हिंदी ग़ज़ल की बीमारी दस–बीस ग़ज़लकारों को लेकर ही चलने की है, उसमें भी गुटबाजी मौजूद हैं। जहाँ तक मुझे पता है हिन्दी ग़ज़ल में दलित और दलित वर्ग की स्थितियों को तलाश करता हुआ यह हिन्दी का पहला रिसर्च आर्टिकल है।

हिन्दी ग़ज़ल में कई ऐसे शायर हैं, जिसमें दलित के साहस, संघर्ष, दुखदर्द, भेदभाव और शोषण–उत्पीड़न का वर्णन किया गया है। हिन्दी ग़ज़ल का अध्ययन करने पर पता चलता है कि दलित चेतना को लेकर शायरी करनेवाले अदम गोंडव हिन्दी के पहले ग़ज़लकार वह स्वयं भी एक प्रकार से इसकी घोषणा करते हुए एक कविता लिखते हैं–

आइए महसूस करिए जिंदगी के ताप को
मैं चमारों की गली तक ले चलूँगा आपको
जिस गली में भूखमरी की यातना से ऊबकर
मर गई पुलिया बिचारी एक कुएँ में डूबकर।

हिन्दी ग़ज़ल में अदम गोंडवी वैसे ग़ज़लगो हैं, जिन्होंने कभी चापलूसी नहीं की, बल्कि तल्ख तेवर अख्तियार किया। वह वास्तव में इस

सदी के महान ग़ज़लकार और जन कवि हैं। चर्चित कवि ईश मिश्र मानते हैं कि अदम अन्य दलित दबे–कुचले वर्गों के साथ कृषक वर्ग के भी बुद्धिजीवी हैं, वहीं मधु खर्राटे ने माना है, अदम ने सामाजिक विसंगतियों, आर्थिक विषमता, गरीबी नैतिक पतन, दलित चेतना आदि का चित्रण भी अपनी ग़ज़लों में खूब किया है। अदम की दलित विषयक खेलों में यह प्रतिरोध दिखाई देता है–

तुम्हारी मेज चाँदी की तुम्हारा जाम सोने का
यहाँ जुम्मन के घर में आज भी फूटी रकाबी है।

अदम हिंदी के पहले ग़ज़लकार हैं, जिन्होंने एक–दो शेर नहीं, बल्कि दलितों के हालात पर पूरी की पूरी मुसलसल ग़ज़लें कहीं हैं। देखें, एक–दो ग़ज़ल के कुछ शेर–

अन्त्यज कोरी पासी हैं हम
क्योंकर भारतवासी हैं हम
अपने को क्यों वेद में खोजें
क्या दर्पण विश्वासी हैं हम
छाया भी छूना गर्हित है
ऐसे सत्यानाशी हैं हम
धर्म के ठेकेदार बताएँ
किस ग्रह के आधिवासी हैं हम

ऐसी ही उनकी दूसरी एक ग़ज़ल है–

वेद में जिनका हवाला हाशिये पर भी नहीं
वे अभागे आस्था विश्वास लेकर क्या करें
लोकरंजन हो जहाँ शंबूक वध की आड़ में
उस व्यवस्था का घृणित इतिहास लेकर क्या करें
कितना प्रतिगामी रहा भोगे हुए क्षण का यथार्थ
त्रासदी, कुंठा, घुटन, संत्रास लेकर क्या करें।

इस तरह की ग़ज़लें लिखना इतना आसान नहीं है। इसके लिए अदम को गाँव के ठाकुरों का विरोध सहना पड़ा। उन्हें ठाकुर जाति पर कलंक की पदवी दी गई अदम के ऐसे शेर भरे पड़े हैं।

हिन्दी ग़ज़ल–परंपरा में अदम को छोड़कर दलित विषय को लेकर बाजाब्ता शायरी करनेवाले कोई नहीं है, लेकिन हिन्दी के कई महत्वपूर्ण ग़ज़लकार हैं, जिन्होंने अपनी शायरी में पूरी मजबूती के साथ दलितों की दशा और दिशा का चित्रण किया है, जिसमें अनिरुद्ध सिन्हा, राम कुमार 'कृषक', विनय मिश्र, नूर मोहम्मद 'नूर', कमलेश भट्ट 'कमल', रामचरण 'राग' और नचिकेता आदि के नाम लिये जा सकते हैं। इनकी ग़ज़लें समाज के सबसे निचले और पिछड़े वर्ग तक पहुँची है, जिसने न मात्र दलित साहित्य को, बल्कि ग़ज़ल साहित्य को भी समृद्ध किया है।

असल में दलित शब्द को समझे बिना दलित चेतना को नहीं समझा जा सकता। दलित समाज का वह तबका है, जो आर्थिक दृष्टि से वंचित, शोषित, उत्पीड़ित, दमित और समाज में समझे जानेवाले नीचे कुल का है। अपमान,बेबसी, उपेक्षा का दंश झेलता हुआ यह बढ़ा है। इनका आशियाना वह मलिन बस्ती है, जहाँ से शहर भर की गंदगी गुजरती है। दलित को छूने मात्र से कोई नापाक हो जाता है और ऐसी मानसिकता उसे हाशिए पर ढकेल देती है। हिन्दू वर्ण व्यवस्था में चारो जातियों में दलित की गिनती नहीं होती। इसके लिए अछूत, अन्त्यजा, पंचम वर्ण आदि शब्द कर लिये गये हैं। इनकी परिछाईं से ही समाज नष्ट हो जाता है। इनके मरने पर देवता फूलों की बारिश करते हैं। यह ठाकुर के कुएँ में पानी नहीं पी सकते हैं।

दलित के लिए यह सारे हिदायत और बंधन हैं। दलित लेखक जयप्रकाश कर्दम मानते हैं–प्रत्येक दलित ने अपने जीवन में कभी–न–कभी किसी–न–किसी रूप में अन्याय, अपमान और उपेक्षा का दंश झेला है।

जातिगत उपेक्षा, भेदभाव, अपमान, हेय समझने की मानसिकता अपने ही बीच के एक आदमी को हिन्दी ग़ज़ल स्वीकार नहीं कराती। शायर मानता है कि भेदभाव कभी ईश्वर नहीं सिखाता। यही प्रश्न रविदास और कबीर भी करते हैं और यही सवाल हिंदी का ग़ज़लगो भी करता है। जब सब कुछ एक हैं तो उसे निम्न जाति का क्यों समझा जाए–

जातों–पातों का क्या करें कोई
ऐसी बातों का क्या करें कोई
यहाँ पर सब बराबर हैं, यह दावा करनेवाला भी
उसे ऊपर उठाता है मुझे नीचे गिराता है।
–बल्ली सिंह चीमा

क्यों महाजन की आँख है हमपर
हम कोई सूद की रकम तो नहीं
–बालस्वरूप राही

पूरे ढाँचे को बदलने की जरूरत होगी
अब ये हालात नहीं यूँ ही सँभालनेवाले
–लक्ष्मी शंकर बाजपेई

यह कहते आए हैं दाई से लेकर साईं तक
कि कोई जन्म से छोटा बड़ा नहीं होता
–विजय कुमार स्वर्णकार

ऐसा नहीं है कि हिन्दी ग़ज़ल में सिर्फ दलित की पीड़ा ही है, बल्कि कई शेर ऐसे भी हैं, इसमें दलित वर्ग के बुद्धि, ताकत, संघर्ष का माद्दा और राजनीतिक तथा सामाजिक चेतना भी दिखाई गई है। कुछ शेर इस संदर्भ में देखे जा सकते हैं–

देश का है हाथ वह भी यह समझ
अब दलित भी है नहीं कम देख ले।
–मांगन मिश्र मार्तण्ड

अपने हक के लिए लड़ाई सीधे लड़ना है
लौट न आए फिर से वही दलालों वाले दिन।
–किशन तिवारी

यह बात कोख से तय कैसे हो गई आखिर
के मेरे छूने से गंगा को पाप लगता है।
–विजय कुमार स्वर्णकार

उंगली, जुबान, हाथ, नज़र इस्तेमाल कर
बेखौफ हो के वक्त से सीधे सवाल कर।
–माधव कौशिक

सदियों तक गम मन ही मन में पाले हैं
पर अब हम आवाज उठानेवाले हैं।

–केपी अनमोल

ग़ज़ल इशारों में बात करती है, लेकिन स्थितियाँ हर वक्त इशारों में बात करनेवाली नहीं होती। हिंदी ग़ज़ल ने शुरू से अपना तल्ख तेवर अख्तियार किया है। हिन्दी ग़ज़ल के कई ऐसे शेर हैं, जिसमें बिना किसी छुपाव के सीधे–साधे सवाल पूछा गया है। कुछ शेर मुलाहिजा हो–

हवा मिट्टी या पानी पर सभी का हक बराबर था
बिगड़ कैसे गया पर्यावरण फिर लोकशाही का।

–दिलीप दर्श

हिकारत इस कदर अच्छा नहीं है
दलित भी आदमी होते हैं साहब!

–तनवीर साकित

आपके ढंग में चौधराहट हैं
इस तरह मशवरे नहीं होते।

–महेश कटारे

आज भी तो है वही सामंतशाही मध्ययुग
ले गए औरत उठाकर रोकता कोई नहीं।

–राम मेश्राम

देख भगवे लिबास का जादू
सब समझते हैं पारसा तुमको।

–हस्तीमल हस्ती

हमारी मुश्किलें मानो हमारे गम को तुम समझो
कभी तो इस तरह भी हो मुकम्मल हमको तुम समझो।

–कमलेश भट्ट 'कमल'

कहना न होगा कि हिंदी ग़ज़ल में दलित के कई रूप सामने आते हैं। दलित समाज में सबसे निचले पायदान पर हैं, लेकिन यह भी सच है कि अब दलितों की स्थितियाँ पहले से बेहतर हुई हैं। वोट की राजनीति ही सही, उनके वजूद को समझा जाने लगा है। ग़ज़ल में कई ऐसे शेर मिलेंगे, जिसमें यह बदला हुआ मंज़र दिखाई देता है–

मिले हैं टिकट जबसे भूमाफियों को
दलितों की बस्ती बसाने लगे हैं।

–लवलेश दत्त

टिकी हैं आँख गुब्बारे पे उसकी
करेगा कुछ नया मतलू का बेटा।

–अनिरुद्ध सिन्हा

गर नहीं सबका तो मैं यह पूछता हूँ आपसे
यह जमीं किसके लिए है आसमाँ किसके लिए।

–माधव कौशिक

दलित की बस्तियाँ होकर कभी गुजरो
मिलेगी हर जगह खुशबू मोहब्बत की।

–विकास

भाषिक कला की दृष्टि से दलित रचनाएँ इन्कार की भाषा है। इसकी भाषा, साहित्य के मानदंडों से थोड़ी अलग है। इसमें गाली–गलौज है, इसके प्रतीक भी जो इस्तेमाल किये गये हैं, वह भी वीभत्स और घिनौने हैं। इसका अपना कारण भी है कि दलित साहित्य में उसी परिवेश की बोलियों को जगह दी गई है, जिसमें दलित वर्ग जीते आए हैं। अक्सर दलित पर चर्चा करते हुए यह प्रश्न भी उठाया जाता है कि गैर दलित साहित्यकारों की रचना दलित विमर्श में शामिल की जाए या नहीं। एक बड़े वर्ग का तर्क है कि गैर दलित ने दलितों पर सिर्फ लिखा है–भोगा नहीं है। उनकी बात मान लेने से 'ठाकुर का कुआँ' लिखनेवाले प्रेमचंद से 'चतुरी चमार' लिखनेवाला निराला तक दलित साहित्य से खारिज कर दिये जाएँगे। तुलसीराम का अलग ही मत है, वह पूरी तरह से ब्राह्मणवाद के खिलाफ खड़े हैं। दलित के बड़े चिंतक तुलसीराम की दृष्टि में दलित को बंधनों से अलग अपना रास्ता बनाना होगा। वह 'समयांतर' पत्रिका के एक आलेख में लिखते हैं कि ब्राह्मणवादी जो व्यवस्था है, उसको माननेवाले तो गैर ब्राह्मण जाति हैं, जिसमें दलित भी शामिल है। दलित भी पूजा उसी देवता का करता है, जिस देवता को ब्राह्मण पूजता है। वही कर्मकांड जो ब्राह्मण करता है, वही दलित भी करता है। तो आप उसके खत्म होने की बात कैसे कर सकते हैं! आज के दौर में दलितों को अधार्मिक हो जाना चाहिए।

यह ठीक है कि दलित आज भी संघर्ष कर रहे हैं। अपने स्वाभिमान की लड़ाई लड़ रहे हैं; लेकिन यह भी सच है कि आज दलित जातियाँ इसमें ब्राह्मण भी शामिल है, का एक बड़ा वर्ग दलितों के साथ खड़ा है, उनकी रचनाएँ दलित विमर्श पर आ रही है। इसलिए दलित साहित्य से उनकी रचनाओं को खारिज करना या सीधे–सीधे आरोप मढ़ देना तर्कसंगत नहीं कहा जा सकता। आज दलित के लिए पद दलित शब्द का भी इस्तेमाल हो रहा है। यह अलग प्रश्न है कि पददलित सिर्फ दलितवर्ग हैं या अन्य ऊँचे समझे जाने वाले वर्ग भी। यही प्रश्न रैदास भी पूछते हैं–'जन्मजात मत पूछिये का जात अरु पात।' और ग़ज़लकार दीप नारायण भी–

कौन सही बात पूछते हो तुम
क्यों मेरी जात पूछते हो तुम।

–दीप नारायण

शायर यह मानकर चलता है कि दलित को लंबे दिनों तक उनके अधिकार से वंचित रखा गया। स्लम बस्तियों में रहनेवाला यह बड़ा वर्ग आज भी शुद्ध हवा, शुद्ध पानी और शुद्ध भोजन की तलाश में है। उनकी जरूरतों में शिक्षा भी है और सम्मान भी। वह सिर्फ वोट के लिए नहीं है, अपनी जिंदगी सुधारने के लिए भी बने हैं। रामचरण 'राग' ने इसपर एक मुकम्मल ग़ज़ल लिखी है–

दलित की चेतना को वोट का अधिकार है केवल
किताबों के अलावा तो दलित लाचार है केवल
युगों से गंदगी का बोझ हम सिर पर उठाते हैं
हमारी इस जिंदगी का बस यही आधार है केवल
हमारे नाम पर होती सियासत की हकीकत है
यहाँ बस भाषणों में ही दलित उद्धार है केवल
हमें शिक्षा सही लेकर नये प्रतिमान गढ़ने हैं
बिना शिक्षा हमारी जिंदगी बेकार है केवल
भला अंबेडकर का हो दिखाया पथ नया हमको
नहीं तो साँस जीवन पर रही बस भार है केवल।

–रामचरण 'राग'

ऐसे ही कुछ अन्य शेर भी देखनेयोग्य हैं–

कुचला गया है कौन यहाँ और कितनी बार
गिनती में एक पूरी सदी ही मिसाल है।
–विनय मिश्र

वे ही पूजित, वो ही चर्चित ऐसा वैसा मैं ही क्यों हूँ
पाँचों उंगली उनकी घी में भूखा प्यासा मैं ही क्यों हूँ।
–विनय मिश्र

उनकी आँखों के सपने को सजाकर देखो
हाँ यह दलित बस्ती है जरा नज़र उठा कर देखो।
–ए.आर. आज़ाद

धंधा ही राजनीति है झंडा उठाइए
जय भीम कहके ताज पे कब्जा जमाइये।
–राम मेश्राम

मेरा तो घर भी जूठा, कमरा जूठा, आँगन जूठा
मेरे घर आई तो बोलो, कहाँ रहेगी गंगा जी।
–ज्ञान प्रकाश विवेक

गगनचुम्बी इमारत उठ रही है
पचीसों झुग्गियों की जान लेकर।
–जहीर कुरैशी

पानी तक वो बाँट ले गये
जिनसे थे संबंध लहू के।–उर्मिलेश

जब हुई नीलाम कोठे पर किसी की आरजू
फिर अहिल्या का सरापा जिस्म पत्थर हो गया।
–अदम गोंडवी

हुई बरसात तो झुग्गी ने सोचा
अचानक अपने छप्पर की दिशा में।
–जहीर कुरैशी

आलोचक ज्ञान प्रकाश विवेक मानते हैं ग़ज़ल में कविता से कहीं अधिक चुनौतियाँ हैं। असल में ग़ज़ल समझ आनेवाली विधा है। यह ज्यादा प्रतीकों, मिथकों और व्यंजनों में विश्वास नहीं करती। इसलिए पाठक जान जाता है कि शायर क्या कहनेवाला है। ग़ज़ल ने अपनी करवटें ली हैं। कभी समय से कटकर नहीं रही। ग़ज़ल ने कभी बादशाहों की बात की, जमींदारों की बात की, स्त्री–पुरुष और बच्चों की बात की, पर आज यही ग़ज़ल दलितों, गरीबों और हाशिए के लोगों की बात कर रही है। यह वह प्रेमिका नहीं है, जिसे प्रेम में ही दिल लगता है या आँख, नाक और कान खोलकर चलनेवाली प्रेयसी है। ग़ज़ल में जहाँ बादशाहों का गुणगान होता है, आज वहाँ दलितों और वंचितों की बातें भी हैं। यह वह विधा है, जो हालात के मुताबिक कभी रुख नहीं बदलती, वो उसके साथ शामिल हो जाती है। कुछ शेर उल्लेखनीय है–

खुदा के वास्ते इसपर ना डालिये कीचड़
बची हुई है यही शर्ट आखिरी मेरी।
–ज्ञान प्रकाश विवेक

झूठा बता के बाज को बीवी को फाहिशा
हमने दलित विमर्श को अभिनव उछाल दी।
–राम मेश्राम

डेढ़ अरब की आबादी में किसको तेरी फिक्र पड़ी
जीता है तो जी ले यूँ ही वरना तू भी जाकर मर।
–कमलेश भट्ट 'कमलेश'

कहाँ से और आएगी अकीदत की वह सच्चाई
जो जूठे बेर वाली सिरफिरी शबरी से आती है।
–उर्मिलेश

बूढ़ा बरगद जानती है किस तरह से खो गई
रमसुधी की झोंपड़ी सरपंच की चौपाल में।

आज का समाज किसी की बात को यूँ ही स्वीकार नहीं कर लेता, बल्कि उसमें विरोध करने और अपने हक के लिए लड़ने की ताकत है–

याचकों के वेश में
हम जिये इस देश में
तुगलकी फरमान था
आपके आदेश में। –अश्वघोष

ठंढा मत हो जाने दो
अपना रक्त तपाते रहना। –चन्द्रसेन विराट

अछूतानंद जिन्होंने आदि हिन्दू धर्म नाम से एक संस्था चलाई और इस नतीजे पर पहुँचे कि दलित ही वास्तव में प्राचीन हिन्दू हैं। उन्होंने एक कविता लिखी थी–'दलित कहाँ तक पड़े रहेंगे, जमीं के नीचे गिरे रहेंगे'–हिन्दी ग़ज़ल इस प्रश्न का उत्तर तलाशती है। अनिरुद्ध सिन्हा का एक प्रसिद्ध शेर है–

बचपन में हर काम सुहाना सीख लिया
दुनिया भर का बोझ उठाना सीख लिया
पास्ता कलम किताब उठाने के बदले
मैंने जूठा प्लेट उठाना सीख लिया
–अनिरुद्ध सिन्हा

इस संदर्भ में कुछ और शेर का भी अपना मूल्य है–

नदियों के गंदे पानी को घर में निखार कर
चूल्हा जला रही है वह पत्ते बुहार कर
–डॉ. भावना

दलितों की इसी बस्ती से तो मैं भी गुजरता हूँ
कभी आते हुए मुँह पर नहीं रूमाल रक्खा है।
–डॉ. जियाउर रहमान जाफरी

मेरी ग़ज़लों में लैला है न कोई हीर मौलाना
मेरे अशआर में है आदमी की पीर मौलाना।
–राजेन्द्र तिवारी

इस हिकारत की नज़र ने जो मुझे तोड़ दिया
सोचा हम जैसों ने यह उम्र गुजारी कैसे।
–विजय कुमार स्वर्णकार

या दलित जाने या जाने इक नदी
शहर भर की गंदगी धोने का दुख।
आपको हासिल हई ऊँचाइयाँ
आप क्या जानें दलित होने का दुख।

–ए.एफ.नज़र
हम ही खा लेते सुबह को भूख लगती है बहुत
तुमने बासी रोटियाँ नाहक उठाकर फेंक दी।
–दुष्यन्त कुमार
हमारा खून तुम्हारी खराब क्या मतलब
गरीब जिस्म अभी तक कबाब क्या मतलब।
–नूर मोहम्मद नूर
अगले कल के लिए जोड़ना भी नहीं
रोज ही मांगना रोज खाना भी है।
–जहीर कुरैशी
सर जो मुश्किल है तो फिर पैर ही काटे जाएँ
तय हुआ है कि किसी से कोई ऊँचा न रहे।
–महेश अश्क

दलित लेखक मनोज सोनकर का मानना है कि दलित कविता का मूलमंत्र है हमें आदमी चाहिए। श्यौराज सिंह को विश्वास है कि वह वक्त जरूर आएगा–
हम सुबह के वास्ते आए हैं
हम सुबह जरूर लेकर जाएँगे।

दलित चिंतक कँवल भारती एक व्यक्ति की हत्या को पूरी समष्टि की हत्या स्वीकारते हैं–
शंबूक तुम्हारी हत्या
दलित चेतना की हत्या थी
स्वतंत्रता समानता और न्यायबोध की हत्या थी।

हिन्दी ग़ज़ल उस विभाजन के खिलाफ है, जो मनुष्यता के रास्ते में खड़ी है। हिन्दी का शायर मानता है कि जबतक आखिरी पायदान पर बैठे व्यक्ति तक न्याय नहीं पहुँचता, कुछ भी न्याय संगत नहीं हो सकता, कुछ शेर काबिले गौर हैं–
हम भी स्वाधीनता मानते हैं
पर दीया पेट पर जलाते हैं।
–भवानी शंकर
दर्द, बेचैनियाँ, घुटन, आँसू
ये जहाँ मुझको और क्या देगी।
–गिरिराज शरण अग्रवाल
आदमी होगा मर गया गंगू
फर्ज पूरा तो कर गया गंगू।
–रामकुमार कृषक
राहु को सबने पासवाँ यूँही न कह दिया
दुनिया में उसका कोई भी सानी न बन सका।
–आर.पी.घायल
वह दर्द वह बदहाली के मंजर नहीं बदले
बस्ती में अंधेरों से भरे घर नहीं बदले
–लक्ष्मीशंकर बाजपेई
रहना पड़ा जा साँप के जंगल में हाशमी
हमने भी इस शरीर को चंदन बना दिया।
–फजलुर रहमान हाशमी
बुझा देते हैं जाकर झोंपड़ी में वह चिरागों को
जमींदारों का यह रुतवा हवाओं से कहाँ कम है
–अनिरुद्ध सिन्हा
पूछिए उस अभागन से उसका पता
जिंदगी को जिसे झुर्रियाँ खा गयीं।
–अनिरुद्ध सिन्हा
तुम्हारे पाँव के नीचे कोई ज़मीन नहीं
कमाल यह कि फिर भी तुम्हें यकीन नहीं।
–दुष्यन्त कुमार

हिन्दी ग़ज़ल के कई शेर ऐसे भी हैं, जिसमें शबरी और शंबूक को प्रतीक बनाकर अपनी बात कही गई है–
थोड़ा सच्चा थोड़ा झूठा होता है
वर्जित फल का स्वाद अनूठा होता है
शंबूकों को प्राण गँवाने पड़ते हैं
एकलव्य का दान अंगूठा होता है।
–राहुल शर्मा

दलित और वंचित वर्ग पर कई तरह के सामाजिक बंदिश लगाए गए हैं। उन्हें मंदिर जाने से रोका गया। शादियों में वह घोड़े पर नहीं जा सकते थे अथवा आसन ऊँचा नहीं कर सकते थे। उनकी स्त्रियाँ पर्दा नहीं कर सकती थीं। उन्हें अच्छे नाम से पुकारा नहीं जाता था। उच्च जातियाँ उनकी इज्जत–आबरू ले ले, तो वह अपराध नहीं था। हिंदी ग़ज़ल ऐसे मसलों को भी उठाती है। कुछ शेर देखें–
उन्हें तो चाहिए ज्यादा मगर थोड़ी नहीं मिलते
हमेशा ही निवाले हाथ को जोड़े नहीं मिलते
वह पैदल ही चला जाता रहा बारात को लेकर
अभी कुछ दलितों को यहाँ घोड़े नहीं मिलते।
–अंजनी कुमार 'सुमन'
फर्क इन्सान में इंसां को मिटाने देते
मंदिरों में दलितों को भी तो जाने देते।
–अमान ज़खीरवी

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि हिंदी ग़ज़ल में दलितों के जीवन और उनकी समस्याओं पर गहराईपूर्वक विचार गया है। अपने लेखन शैली और प्रभावी ढंग के कारण हिन्दी ग़ज़ल से दलित साहित्य की समृद्धि में अपनी प्रभावपूर्ण उपस्थिति दर्ज की है।

समीक्षा

समकालीन संवेदना को स्वर देती ग़ज़लें

हरे राम समीप
फरीदाबाद–126006
मो.–9871691313

चाँद मुंगेरी हिन्दी के वरिष्ठ साहित्यकार हैं। पिछले चार दशकों की उनकी रचना–यात्रा में उन्होंने उपन्यास, लघुकथाएँ, एकांकी व्यंग्य लेखन के साथ कविताएँ और ग़ज़लें भी लिखी हैं। अबतक उनकी आठ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, जिसमें उनका एक उपन्यास, एक लघुकथा संग्रह, एक कविता संग्रह तथा तीन ग़ज़ल संग्रह हैं। उनकी ग़ज़ल एक लंबे अर्से से देश की तमाम पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित हो रही हैं। यह अलग बात है कि उन्होंने अपनी ग़ज़लों के संग्रहों का बहुत देर बाद प्रकाशन कराया है; लेकिन यह भी सच है कि वे बरसों से ग़ज़लें लिख रहे हैं और अच्छी ग़ज़लें लिख रहे हैं। पिछले वर्ष उनके दो ग़ज़ल संग्रह आये–'तलाश सूरज की' और 'क्षितिज के पार'। चूँकि इन दो संग्रहों में उनकी अबतक लिखी ग़ज़लों में केवल 194 ग़ज़लें संकलित हैं, अतः इनकी अन्तर्वस्तु, स्वभाव और लहजे में अधिक अंतर नज़र नहीं आता है, इसलिए ग़ज़लकार के सरोकारों, सामर्थ्य की परख के लिए इन दोनों को युगल संग्रह के रूप में देखना समीचीन होगा।

'क्षितिज के पार' संग्रह के ब्लर्ब में डॉ. अमरेन्द्र ने लिखा है–'चाँद मुंगेरी की ग़ज़लें' सिर्फ अपने ग़ज़ल शिल्प की मजबूती के कारण ही प्रभावित नहीं करती, इनके कहने का अंदाज जो बहुत कुछ शैली के अंतर्गत समाहित है, शिल्प से कहीं अधिक मन को बाँधता है और यही कहन शैली इनको ग़ज़ल के और शायरों में कहीं कुछ ऐसी पहचान देती है कि दूर से ही इनकी पहचान संभव है।

उर्दू में इनकी ग़ज़लों से मेरा परिचय लंबे समय का है। इधर जब इनकी कुछ हिन्दी ग़ज़लें पढ़ने का अवसर मिलता, तो चौक गया। कहना ही पड़ा कि जो सधे शायर होते हैं, उनके लिए भाषाएँ कभी दीवार नहीं बन सकतीं। मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि ग़ज़ल कहने के लिए जिन बारीकियों की जरूरत होती है, वे चाँद मुंगेरी जी की ग़ज़लों से बिछुड़ कर नहीं चलती। हिन्दी ग़ज़ल के नाम पर सिर्फ हिन्दी के शब्दों को रख देने का मोह नहीं है, अनुभव अनुभूतियों को प्रतीकों–बिम्बों में रखना इनकी हिन्दी ग़ज़लों की ख़ासियत है।

चाँद की ख़ासियत यह भी है कि वे उर्दू ग़ज़ल की लंबी परम्परा और उसके शिल्प से वाकिफ़ हैं और हिन्दी ग़ज़ल के नयेपन के प्रति भी जागरुक हैं। उनके इन संग्रहों को पढ़कर हमें ग़ज़ल की उस संवादमयता का परिचय मिलता है, जो सीधे अवाम से मुख़ातिब है। इसीलिए इनकी ग़ज़ल की परख़ आवश्यक हो जाती है।

इनके युगल संग्रहों से गुजरते हुए जो अशआर हमें ठहरकर सोचने को विवश करते हैं, उनमें से हम कुछेक का विश्लेषण करते हैं। सबसे पहले उनके आत्मकथ्य और रचनात्मक सरोकारों के संदर्भ में आये ये शेर देखिये–

अब सुनाएँ क्या कथा संघर्ष की
यह व्यथा कोई नहीं है अर्श की
आज के दौर की नई ग़ज़लें
तिलमिलाती हैं मिरचई ग़ज़लें

ये तिलमिलाती मिरचई ग़ज़लें इसलिए हैं कि ग़ज़लकार को अपने सामने एक तल्ख़ और विसंगत वर्तमान खड़ा मिला है, जहाँ उसके और अवाम के सपने अहर्निश टूट रहे हैं–

स्वप्न नियमों के अहर्निश मिट रहे हैं
मोहरे उत्थान के नित पिट रहे हैं

और परिणामस्वरूप–

देखता हूँ रक्त से तर शब्द जब अखबार पर
रह न पाता है भरोसा आदमी के प्यार पर

आदमी के प्यार पर भरोसा अब रह नहीं पाता; क्योंकि चारों ओर फैली विषमता और अमीरी–गरीबी की गहरी खाई उसको संदेहास्पद बनाती है–

पल रही है ज़िंदगी कितनी यहाँ फुटपाथ पर
और बैठे मौन हो तुम धर के हाथ पर

ग़ज़लकार चिंतित है कि फुटपाथ पर या हाशिए में जीता जीवन जैसे–गरीब–मजदूर अपने अभाव, भूख, बेबसी, बेकली, जुल्म और हादसे का क्यों बार–बार शिकार हो रहा है–

मोल अपने पसीने का है बस यही
पेट भरता रहे बस खुशी चाहिए
सिलसिला इक भूख का पहले से था अब यह सितम
और एक लड़की हुई घर में सयानी देखिए।

दूसरी ओर अमीरी या धनतंत्र से बढ़ती मूल्यहीनता से आम आदमी की बेचैनी और सामाजिक अराजकता, अन्याय और अत्याचार का मंज़र सामने है। चाँद अपनी ग़ज़लों में उनका खुलासा कर जीवन के स्याह चित्रों को प्रस्तुत करते हैं–

बोलो कहाँ मिलेंगे सच्चाइयों के मोती
पर्वत उलट के देखा, सागर खंगाल आये
ठूँठ ही केवल अकड़ दिखला रहे
है नमित वह शाख जो फलदार है
बोलकर झूठ वो पा गये मंजिलें
करके विश्वास हम देखे रह गए

आज के इस दौर में ग़र चाहते हो तुम खुशी
हाथ जोड़ो या न जोड़ो दुम हिलाना सीख लो।

समाज में व्याप्त यह विषमता निरंतर अन्याय और हिंसा को बढ़ावा देती रहती है–

लोग कितने जुल्म के हाथों सताए जाएँगे
और कितने सर यहाँ यूँ ही कटाए जाएँगे।

हमारा देश गाँवों का देश है; लेकिन आज शासन का ध्यान शहरों के विकास में लगा है। उन्हें गाँव की कोई चिंता नहीं है। छूटा हुआ गाँव, बिछड़े हुए अपने लोग और खो गए प्रकृति के सुंदर नजारे शहर में आये ग़ज़लकार की स्मृति में बार–बार आते हैं, जो उसे उस गरमी जीवन के आनंद से दूर ले जा रहा है–

गाँव की राहें हमेशा बस अमन की ओर थीं
आज सड़कें शहर से मिलकर हमें हिचकिचातीं।

ग़ज़लकार जानता है कि इस नकली 'हिचकोलती' तरक्की ने ही आज गाँव और चौपाल को सूनसान बना दिया है–

गाँव घर चौपाल खाली रास्ते सूनसान हैं
जिस जगह कल थी बहारें अब वहीं श्मशान हैं।

और–

गाँव, कस्बा, शहर जंगल हो गये
प्रेम के बाजार चंबल हो गये।
बिम्ब अंबर के मरने लगे
आह! तारे भी भरने लगे

प्रकृति और पर्यावरण की इस त्रासदी को ग़ज़लकार पूरी जागरुकता और मार्मिकता से यूँ व्यक्त करता है। कवि की संवेदना उस पेड़ की ओर जा रही है, जो बेवजह कट रहे हैं–

कौन सुनता है यहाँ पर्यावरण की सिसकियाँ
देख कटते जंगलों को काल लेता मुस्कियाँ।

इसी तरह मानवीय संबंधों में भी निरंतर ह्रास देखकर चाँद साहब कहते हैं–

गाँव, घर, बाजार में अब नाचती हैं तल्ख़ियाँ
प्यार के कूचे सभी वीरान क्योंकर हो गए
बढ़ गई है आदमी के बीच इतनी दूरियाँ
हम हमारे घर में ही मेहमान क्योंकर हो गए।

अथवा–

एक माँ के नयन में थे सपने बहुत
पूत घर से गया सब धरे रह गए

इसका कारण शोषक बाजार और स्वार्थपूर्ण राजनीति हतो रही है, जो आदमी से आदमी के बीच दीवारों खड़ी कर रहे हैं और कट्टरता या साम्प्रदायिकता का ज़हर फैला रहे हैं–

नफ़रत के अंधेरों में डूबा है नगर अपना
यह बोझ भरा जीवन पथ ढूंढे किधर अपना
हवाओं में चिंगारी यूँ मत उछालो
इसी से गरीबों का यह घर जला है
कर रहे थे जो कभी इंसानियत का तजकिरा
अब हुआ क्या बोलिए हैवान क्यों कर हो गए

ग़ज़लकार इस विभाजनकारी स्थिति से हमें आगाह भी करता है कि ये जो विद्वेष की आँधी चल रही है, इससे पूरी मानवता संकट में आ गई है–

तेज आँधी चल रही है घर मकान ख़तरे में है
बेख़बर बैठो न तुम सारा जहां खतरे में है

वह इस ख़तरे का एकमात्र उपाय आपसी प्रेम, सामाजिक सद्भाव और समरसता में पाता है–

धर्म ज़िन्दा है यहाग़ज़ल बस प्रेम के दो घूंट से
खून यारो धर्म को कबतक पिलाये जाएँगे
इस उजाड़ा धरती पर एक दिन वृष्टि होगी प्रेम की
स्वप्न देख नंगे नयनों से हम तो बम बम हो गये।

लेकिन उसे वह वृष्टि होते हुए नहीं देखता और अपनी ग़ज़लों में असंतोष से भर जाता है और इसके लिए व्यवस्था के जिम्मेदार नेताओं को जिम्मेदार ठहराता है–

कभी कुछ तो अभी कुछ तो कुछ कुछ बताते हो
भरम में डालकर अवाम को क्यों बरगलाते हो
नहीं कर सके जो समस्या निवारण
दिवा स्वप्न फिर से रिझाने लगे हैं
सपना दिखाकर आसमाँ पे ले गये हमें
बस जिंदगी गरीब की भी छली गई।

ग़ज़लकार जब जनता को चुपचाप सहन करते देखता है, तो उसे व्यंग्यपूर्ण ढंग से वह जनता को भी फटकारता है–

देख लो इनका समर्पण राह में जो हैं खड़े
चिलचिलाती धूप में सत्कार करने के लिए।

इन शोषण और दमन की स्वार्थ शक्तियों से ग़ज़लकार प्रतिरोध के लिए पीड़ित आम जन को यूँ प्रेरित करता है–

आँखों में आँखें डालकर उनसे सवाल कर
घर से तेरे ले गए सूरज निकालकर
दिन रात जो हमला करते हैं पेट पर मज़लूम के
अब जाग तू हिम्मत जुटा पुरज़ोर उन पर वार कर

शायर अवाम से सवाल करते हुए संघर्ष के लिए तैयार करता है–

चाँद! तुम्हीं से पूछ रहा है, बस इतना बता दो तुम
कबतक बात सहोगे ऐसे तुम अपने अपमान की।

इस तंज़ का प्रमुख कारण है कि वे अपने देश को बहुत प्यार करते हैं और उनकी शान किसी तरह कम नहीं होने देना चाहते। देशप्रेम और एकता को समर्पित उनका यह शेर देखें–

ले तिरंगा अबतक जाऊँ तमन्ना है यही
मिल न पाए रहगुजर कोई तो फिर जज्बात क्या?

इसके लिए चाँद साहब अवाम के मन में साहस, हिम्मत और हौसला भी भरना चाहते हैं–

बिछाकर लाख काँटे रोक तुम हमको न पाओगे
हमें मंजिल पर जाना है कहा यह शर्तिया मैंने
मन से हमारे खौफ़ ये जैसे चला गया
हमको हमारी जिंदगी से प्यार हो गया
जिंदगी को जिंदगी से काटकर देखो नहीं
जिंदगी होती सफल जुड़ जाती जीवन से जभी।

और कवि सुफल जिंदगी के लिए क्रांति का रास्ता प्रगति का रास्ता मानता है। इसीलिए वह जनसंघर्ष के माध्यम से परिवर्तन की पहल करता है–

कब तलक तुम कैद रख पाओगे सूरज की किरण
हर जगह तनने लगी हैं देख लो अब मुट्ठियाँ
जिस दिन वह इंकलाब को तैयार हो गया
उस दिन सुनहरे ख़्वाब का हकदार हो गया।

और इंकलाब के लिए युवा वर्ग का आह्वान करते हुए वे कहते हैं–

त्याग दुर्बलता हृदय की और अवसर तक पहुँच
शान्ति पाने के लिए तू स्वयं शंकर तक पहुँच

अथवा–

शोषितों का अब उठो उद्धार के लिए
मन संजोए स्वप्न को साकार करने के लिए
तुम अपने बाजुओं को जरा झाड़कर उठ्ठो
उठ्ठो मेरे भाई जरा ललकार कर उठ्ठो
घर से निकला था अकेले बन गया एक कारवाँ
सुगबुगाते हर बशर के दिल में कुछ अरमान है।

उपर्युक्त अशआर के विश्लेषण से यह कहा जा सकता है कि चाँद मुंगेरी की ये ग़ज़लें अपने समय की संवेदना को बड़ी सार्थकता के साथ रूपायित करती हैं। इनमें ग़ज़लकार का व्यक्तित्व, उसका परिवेश, उसकी सोच व सरोकार स्पष्ट परिलक्षित होते हैं। ग़ज़लकार जो देखता और भोगता है, वही लिखता है। चाँद की ग़ज़लें भी उसी यथार्थ की मार्मिक अभिव्यक्ति से पाठक के अंतर्मन को छूने का प्रयत्न करती हैं। ऐसे मार्मिक शेर जन सामान्य में न केवल स्वीकृति पाते हैं, बल्कि आत्मीय बनकर उद्धरणीय भी हो जाते हैं। वास्तव में एक सफल ग़ज़लगो वही है, जो जनमानस में अपनी ग़ज़लों की छाप छोड़ पाता है और उन्हें विस्मरणीय बनाता है। चाँद मुंगेरी यही करते हैं। यहाँ उनका चिंतन प्रौढ़ और व्यापक मानवता के संदर्भ में अभिव्यक्त हुआ है। दरअसल वही शायरी सार्थक और प्रासंगिक होती है, जो आदमी को आदमी बनाए रखने में मदद करती है।

चाँद की ये ग़ज़लें समकालीन यथार्थ और उसमें हो रही हलचलों से आम जन को रूबरू कराती हैं। साथ ही सामाजिक विसंगतियों और राजनीतिक विद्रूपताओं के विरुद्ध संघर्ष का बिगुल फूँकते नजर आते हैं। इस तरह वे अवाम के शायर हैं। इसके लिए वे आम जन से संवाद के लहज़े में उनके प्रतिरोध के स्वर में अपना स्वर मिलाते हैं। तात्पर्य यह है कि इन ग़ज़लों में कुढ ऐसा नयापन है, जो परिवेशगत यथार्थ और आम जन की पीड़ा को मुखरित करता है और इसके लिए उनकी सहज, सरल और बोधगम्य भाषा उनकी ग़ज़लों की वाहक बन जाती है। यहाँ उनकी अनुभूति और चिंतन सहजता से अभिव्यक्त हुआ है। चूँकि ग़ज़ल का प्रत्येक शेर अपनी अंतर्वस्तु में एक दूसरे शेर से भिन्न होता है, इसलिए यहाँ यह चिंतन अधिक वैविध्यपूर्ण होकर प्रस्फुटित हुआ है।

शिल्प के स्तर पर ये ग़ज़लें अपने अनुशासन अर्थात् बहर, वज्न, रदीफ, काफिया आदि के अंतर्गत लिखी गई हैं और शिल्प की कसौटी पर खरी उतरती हैं। इन्होंने बड़ी और छोटी बहर की अनेक ग़ज़लें कहीं हैं। वास्तव में चाँद की ग़ज़लें उर्दू ग़ज़ल परंपरा से हिन्दी प्रकृति की ग़ज़ल की ओर आई हैं, इसलिए इनका शिल्प, मुहावरेदानी और शब्दों के बर्ताव में कहीं कोई चूक नहीं दिखाई देती है।

भाषा के निकष पर चाँद मुंगेरी की ग़ज़लों में संवादमयी भाषा का प्रयोग मिलता है। वे अपनी ग़ज़लों में शब्दों के सटीक प्रयोग को तरजीह देते हैं। इसलिए यहाँ कठोर और अप्रिय शब्द नहीं दिखाई देते हैं। वे अपनी बात बड़े ही संयमित ढंग से बिना लाग–लपेट के कह जाते हैं। जुबान की यह सादगी इन ग़ज़लों की खासियत है। यद्यपि यहाँ ग़ज़लकार ने अनेक स्थानों पर तत्सम शब्दों का प्रयोग किया है, तो फ़ारसी शब्दों तथा इजाफत के इस्तेमाल से भी गुरेज नहीं किया है और इन ग़ज़लों में उन्होंने भाषा का प्रचलित और सहज रूप ही अपनाया है।

इस तरह कह सकते हैं चाँद मुंगेरी के इन शेरों को पढ़ना सुखद अनुभूति देता है। पहले पन्ने से अंत तक एक से बढ़कर एक शेरों से भरे ये दोनों संग्रह अंदर तक झकझोर गये। वे सचमुच ग़ज़ल विधा के सशक्त हस्ताक्षर हैं। वे ग़ज़ल के प्रति इसलिए समर्पित हैं, क्योंकि वे ग़ज़ल की सामर्थ्य पर विश्वास करते हैं। उन्होंने अपनी ग़ज़लों से साबित किया है कि वे अपनी सामाजिक जिम्मेदारी कभी नहीं भूले हैं और इस लेखन को उन्होंने एक सामाजिक जिम्मेदारी की तरह लिया है। तभी तो उनके दोनों संग्रहों की ग़ज़लों में जीवन का यथार्थ पूरी शिद्दत से व्यक्त हुआ है, जो कभी–कभी प्रत्यक्ष तो कभी संकेतित होकर प्रभाव उत्पन्न करता है। कलात्मक स्तर पर भी इन संग्रहों में अनेक ग़ज़लें आकर्षक और उत्कृष्ट बन पड़ी हैं। इस तरह कहा जा सकता है कि चाँद मुंगेरी के ये दोनों ग़ज़ल संग्रह सार्थक ग़ज़ल से भरपूर हैं और इनका ग़ज़ल की दुनिया में पूरी आत्मीयता से स्वागत होगा।

आलेख

हिन्दी गजल : समीक्षात्मक विश्लेषण

डॉ. कृष्णकुमार 'नाज'
लक्ष्मी विहार, मुरादाबाद
उत्तर प्रदेश
मो. 9927376877

(क) शिल्पगत वैशिष्ट्य :

हिन्दी में ग़ज़ल चूँकि उर्दू से आयी है, इसलिए हिन्दी कवियों ने भी फारसी छन्दशास्त्र का ही सहारा लेकर ग़ज़लें कही हैं। हाँ, कुछ कवियों ने हिन्दी छन्दों, यथा–दोहा, पीयूषवर्ष, सुमेरू आदि को आधार बनाकर भी ग़ज़लें कही हैं, लेकिन यह तकनीक तेजी के साथ आगे नहीं बढ़ पायी। यद्यपि हिन्दी के अनेक छन्द ऐसे हैं, जो फारसी की बहरों से समानता रखते हैं। यहाँ डॉ. अनन्तराम मिश्र द्वारा दोहा छन्द में लिखी गयी ग़ज़ल के दो शेर प्रस्तुत हैं–

''कौन सुझाये पन्थ अब, कौन बँधाये आस
यह दीपक भी हो गया, अन्धकार का दास
यहाँ यक्ष का वास है, है प्रश्नों की भीड़
चलो चलें उस ताल पर, आज बुझा लें प्यास।''[1]

यदि भाषिक संरचना की दृष्टि से देखा जाय तो हिन्दी कवियों द्वारा कही गयी ग़ज़लों में भाषा के तीन रूप मिलते हैं। प्रथम रूप तो वह है जिसमें उर्दू–फारसी की भारी भरकम शब्दावली को प्रमखुता के साथ लिखा गया है।

ऐसे कवियों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, निराला, शमशेर बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार आदि का नाम लिया जा सकता है। यहाँ शमशेर बहादुर सिंह के कुछ शेर प्रस्तुत हैं–

''चुपके से कोई कहता है शाइर नहीं हूँ मैं
क्यों अस्ल में हूँ वो जो बज़ाहिर नहीं हूँ मैं
भटका हुआ–सा फिरता है दिल किस ख़्याल में
क्या ज़ादा–ए–वफ़ा का मुसाफ़िर नहीं हूँ मैं
क्या वसवसा है पाके भी तुझको नहीं यक़ीं
मैं हूँ जहाँ वहाँ भी तो आखिर नहीं हूँ मैं
सौ बार उम्र पाऊँ तो सौ बार जान दूँ
सदके़ हूँ अपनी मौत से क़ादिर नहीं हूँ मैं।''[2]

चन्द शेर दुष्यन्त कुमार के भी प्रस्तुत हैं–

''दरख्त है तो परिन्दे नज़र नहीं आते
जो मुस्तहक़ हैं वही हक़ से बेदखल लोगो
वे कह रहे हैं ग़ज़लगो नहीं रहे शायर
मैं सुन रहा हूँ हर इक़ सिम्त से ग़ज़ल लोगो।''[3]

इन्हीं के कुछ शेर और हैं–

''अगर खुदा न करे सच ये ख़्वाब हो जाये
तेरी सहर हो, मेरा आफ़ताब हो जाये
हुजूर आरिज़ो–रुख़सार क्या तमाम बदन
मेरी सुनो तो मुज़स्सिम गुलाब हो जाये
उठा के फेंक दो खिड़की से साग़रो–मीना
ये तिश्नगी जो तुम्हें दस्तयाब हो जाये
गलत कहूँ तो मेरी आक़बत बिगड़ती है
जो सच कहूँ तो खुदी बेनक़ाब हो जाये।''[4]

उक्त शेरों पर उचटती दृष्टि डालने से ही स्पष्ट हो जाता है कि शमशेर बहादुर सिंह ने उर्दू–फारसी के भारी–भरकम शब्दों का प्रयोग किया है। ऐसे शब्द जिन्हें आम आदमी न बोलता है, न समझता है। यदि यह ग़ज़ल फारसी लिपि में प्रकाशित की जाये, तो हिन्दी की नहीं रह जायेगी। जबकि दुष्यन्त की गजलों में इतनी क्लिष्टता नहीं है। यद्यपि उन्होंने भी कई स्थानों पर उर्दू–फारसी के कठिन शब्दों का प्रयोग किया है, लेकिन उनके ऐसे शेरों की संख्या कम है।

द्वितीय रूप वह है जिसमें सस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग किया गया है। ऐसे कवियों में चन्द्रसेन विराट, बलवीर सिंह रंग, शिवओम अम्बर आदि आते हैं। यहाँ शिवओम अम्बर की ग़ज़ल के कुछ शेर उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं–

''हर घड़ी अन्याय के प्रतिवाद–सी
है हमारी चीख शृंगीनाद–सी
यह क़लम दीपित रही हर दौर में
क्रुद्ध लपटों में अचल प्रहलाद–सी
दु:ख आये नित्य नियमों की तरह
भूल से आई खुशी अपवाद–सी
बन्धुओ, है शब्द की दैनन्दिनी
दर्द के ऋग्वेद के अनुवाद–सी
इन दिनों है शुष्क अधरों पे ग़ज़ल
बाण बींधे क्रौंच की फरियाद–सी।''[5]

श्रीअम्बर ने उक्त ग़ज़ल में सस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दावली का प्रयोग किया है, जो सुशिक्षित वर्ग की ही समझ में आ सकती है, अल्प शिक्षित अथवा अशिक्षित वर्ग इसकी पहुँच से बाहर हो जाता है। जबकि तृतीय रूप वह है, जिसमें जनभाषा का प्रयोग किया गया है। ऐसी ग़ज़लों में उस शब्दावली का प्रयोग है, जो जनसाधारण आमतौर पर बोलता–लिखता और समझता है। ऐसे कवियों में दुष्यन्त कुमार, कृष्णबिहारी 'नूर' समेत बहुत से कवियों को सम्मिलित किया जा सकता है। यह कहना अधिक उपयक्त होगा कि आज अधिकतर कवियों द्वारा ग़ज़लों में जनभाषा का प्रयोग किया जा रहा है। ऐसी ग़ज़लों में सम्प्रेषणीयता की क्षमता अधिक होती है। उदाहरण के तौर पर कृष्ण बिहारी 'नूर' की ग़ज़ल के चन्द शेर द्रष्टव्य हैं–

''लफ़्जों के ये नगीने तो निकले कमाल के
ग़ज़लों ने खुद पहन लिये जेवर ख़्याल के
ऐसा न हो गुनाह की दलदल में जा फँसूँ
ऐ मेरी आरजू मुझे ले चल सँभाल के
पिछले जनम की गाढ़ी कमाई है ज़िन्दगी
सौदा जो करना, करना बहुत देखभाल के
अब क्या है अर्थहीन–सी पुस्तक है ज़िन्दगी
जीवन से ले गया वो कई दिन निकाल के

यूँ ज़िन्दगी से कटता रहा, जुड़ता भी रहा
बच्चा खिलाये जैसे कोई माँ उछाल के।''[6]

नूर साहब के उक्त शेरों में उस शब्दावली का प्रयोग किया गया है, जिसे आम आदमी बोलता, लिखता और समझता है। अब कुछ शेर दुष्यन्त कुमार के प्रस्तुत हैं, जिनमें जनभाषा का प्रयोग किया गया है–

''कहीं पे धूप की चादर बिछा के बैठ गये
कहीं पे शाम सिरहाने लगाके बैठ गये
जले जो रेत में तलुवे तो हमने ये देखा
बहुत से लोग वहीं छटपटा के बैठ गये
खड़े हुए थे अलावों की आँच लेने को
सब अपनी–अपनी हथेली जला के बैठ गये
दुकानदार तो मेले में लूट गये यारो
तमाशबीन दुकानें लगाके बैठ गये
लहूलुहान नज़ारों का जिक्र आया तो
शरीफ़ लोग उठे, दूर जाके बैठ गये।''[7]

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि जहाँ तक छन्दोविधान का प्रश्न है, तो उर्दू ग़ज़ल और हिन्दी ग़ज़ल के छन्दोविधान में पर्याप्त साम्य है। जबकि भाषा के स्तर पर हिन्दी ग़ज़ल आम आदमी के अधिक निकट है; क्योंकि उसमें किसी भी भाषा के भारी–भरकम शब्दों का प्रयोग न करके आम बोलचाल की भाषा इस्तेमाल की जा रही है। यही वज़ह है कि हिन्दी ग़ज़ल जनमानस को उद्वेलित कर रही है तथा बहुत तेजी के साथ विकास की ओर अग्रसर है।

(ख) कथ्यात्मक वैशिष्ट्य :

हम देखते हैं कि उर्दू ग़ज़ल साहित्य का अधिकांश महबूब के इर्द–गिर्द चक्कर काटता हुआ नजर आता है। इसके अलावा कहीं साकी का जिक्र है, तो कहीं मयखाने का, कहीं रुखसार का वर्णन है तो कहीं जुल्फों का, कहीं फूल है तो कहीं तितली, कहीं शमा है तो कहीं परवाना। गरज यह कि उसका आधार विलासितापूर्ण है। जबकि हिन्दी ग़ज़ल सामाजिक सरोकारों का बोझ सर पर उठाये अपनी मंजिल की तरफ अग्रसर है। हिन्दी ग़ज़ल में सर्वहारा वर्ग की पीड़ा, उसके दुख–दर्द, उसकी जीवन–शैली आदि का वर्णन प्रमुखता से मिलता है। ऐसा नहीं कि हिन्दी ग़ज़ल से प्रेम और सौन्दर्य की विषय–वस्तु अछूती हो, इसमें भी प्रिय से शिकवे–शिकायतें की गयी हैं, लेकिन ऐसे शेरों की संख्या कम ही मिलेगी। हिन्दी ग़ज़ल वास्तविकता के ठोस धरातल पर पाँव पसार रही है। उर्दू ग़ज़ल की भावभूमि रूमानी है, जबकि हिन्दी ग़ज़ल की वैचारिक। सर्वहारा वर्ग में चेतना के स्वर भरते हुए दुष्यन्त कुमार कहते हैं–

''आज सड़कों पर लिखे हैं सैकड़ों नारे न देख
घर अँधेरा देख तू, आकाश के तारे न देख
एक दरिया है यहाँ पर दूर तक फैला हुआ
आज अपने बाजुओं को देख, पतवारें न देख
वे सहारे भी नहीं अब, जंग लड़नी है तुझे
कट चुके जो हाथ, उन हाथों में तलवारें न देख
ये धुँधलका है नज़र का, तू महज़ मायूस है
रोज़नों को देख, दीवारों में दीवारें न देख
राख, कितनी राख है चारों तरफ़ बिखरी हुई
राख में चिनगारियाँ ही देख, अंगारे न देख।''[8]

डॉ. कुँअर बेचैन ने अव्यवस्थाओं का सुंदर चित्रण अपने इन शेरों में किया है–

''दोनों ही पक्ष आये हैं तयैारियों के साथ
हम गर्दनों के साथ हैं, वे आरियों के साथ
बोया न कुछ भी, फ़स्ल मगर ढूँढ़ते हैं लोग
कैसा मज़ाक चल रहा है क्यारियों के साथ।''[9]

चर्चित समालोचक और हिन्दी ग़ज़लकार ज्ञानप्रकाश विवेक समाज में फैली अविश्वसनीयता की स्थिति को इस प्रकार चित्रित करते हैं–

''मुझे तो दोस्तो! इस बात ने डराया है
कि अपने आप से हर आदमी पराया है
ये राज़ मैंने बताया हर एक पत्थर को
कि मैने अपना मक़ाँ काँच का बनाया है।''[10]

बचपन की यादें किसे उद्वेलित नहीं करतीं। बचपन याद आते ही इंसान की दृष्टि में सैकड़ों मंजर घूमने लगते हैं। कभी संगी–साथी, कभी स्कूल, कभी खेल का मैदान। अश्वघोष भी तख्ती–बस्ता और मदरसा के माध्यम से अपने बचपन को याद करते हैं–

''तख़्ती–बस्ता अब तक मुझमें
एक मदरसा अब तक मुझमें
बहने को आतुर रहता है
सूखा दरिया अब तक मुझमें
बनते–बनते रह जाता है
घर का नक्शा अब तक मुझमें।''[11]

कृष्णबिहारी 'नूर' की ग़ज़लों ने काव्य–साहित्य को अध्यात्म की रोशनी से जगमग किया है। सभी जानते हैं कि शरीर पंच–तत्त्वों से मिलकर बना है। अनेक कवियों ने अपने– अपने ढंग से इस तथ्य को काव्यात्मक रूप दिया है। नूरसाहब ने भी इसे बड़ी सुन्दरता के साथ शेर में ढाला है–

''आग है, पानी है, मिट्टी है, हवा है मुझमें
और फिर मानना पड़ता है खुदा है मुझमें
मेरा ये हाल, उघड़ती हुई परतें जैसे
वो बड़ी देर से कुछ ढूँढ़ रहा है मुझमें
आईना ये तो बताता है, मैं क्या हूँ लेकिन
आईना इस पे है ख़ामोश कि क्या है मुझमें।''[12]

विज्ञानव्रत ने छोटी बहरों में बहुत–सी ग़ज़लें कही हैं। इनके शेरों में कहीं गाँव की मिट्टी की सौंधी सुगन्ध मिलती है, तो कहीं आधुनिकता की दौड़ में शामिल ऐसे लोगों का चेहरा दिखायी देता है, जो अपने संस्कार और सस्कृति बहुत पीछे छोड़ आये हैं। इनके कुछ शेर प्रस्तुत हैं–

''मुझमें मेरा गाँव पुराना
ढूँढ़े अपना ठौर ठिकाना
मैं तो कच्चा घर हूँ, मुझको
क्या बनवाना, क्या तुड़वाना
———
एक ज़रा–सी दुनिया घर की
लेकिन चीजें दुनिया भर की
फिर वो ही बारिश का मौसम
ख़स्ता हालत फिर छप्पर की।''[13]

आधुनिकता की चकाचौंध ने देखने–परखने की क्षमता और अपने–पराये को पहचानने की शक्ति छीन ली है। एक माँ–बाप कई बच्चों की परवरिश कर उन्हें योग्य बनाते हैं, लेकिन वे कई बच्चे हारे–थके माँ–बाप की जिन्दगी के आखिरी क्षणों में भरण–पोषण नहीं कर पाते। इस टीस को ट्रेन के माध्यम से सुरेन्द्र चतुर्वेदी ने बड़े खूबसूरत अन्दाज में प्रस्तुत किया है–

''दूर किया यूँ भी उलझन को
बख़्श दिया अपने दुश्मन को
बूढ़ी उम्र खड़ी पटरी पर
छोड़ गये डिब्बे इंजन को।''[14]

उक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी ग़ज़ल के वर्ण्य–विषय में विविधता है। हिन्दी ग़ज़ल जहाँ सामाजिक सरोकारों के रूबरू हुई है, वहीं उसने स्वार्थ लोलपु राजनीति और राजनीतिज्ञों को निशाना बनाया है। उसने प्रेम की भावनात्मक ऊँचाइयों को भी छुआ है और आध्यात्मिक विस्तार को भी रेखांकित किया है। हिन्दी ग़ज़ल ने अगर महलों की बात की है, तो फुटपाथ को भी नजरअंदाज नहीं किया है। हिन्दी ग़ज़ल में जहाँ शहर की लगातार भागती–दौड़ती जिन्दगी का वर्णन है, तो गाँवों के ठहराव को भी उसने स्वयं में समाया है। अर्थात् हिन्दी ग़ज़ल का यह वैविध्य ही उसकी पहचान है और उसके विकास का आधार भी।

(ग) कल्पनागत वैशिष्ट्य :

प्रत्येक भाषा की अपनी प्रकृति है और अपने संस्कार हैं। भाषाओं के साथ ही उनका कल्पना–संसार भी अलग–अलग होता है, दृष्टिकोण भी अलग होते हैं और प्रतीक एवं बिम्ब भी। भाषाओं को धर्म का चोंगा पहनाये जाने के बाद ये विभिन्नताएँ और भी बढ़ गयी हैं। उर्दू में फूल के रूप में गुलाब को अधिक महत्त्व दिया जाता है, जबकि हिन्दी में कमल को। हिन्दू संस्कृति में जल को ईश्वर का रूप माना जाता है। यही कारण है कि सभी धार्मिक रीति–रिवाजों और अनुष्ठानों में जल का प्रयोग किसी न किसी रूप में अवश्य किया जाता है। जल से ही कमल उत्पन्न हुआ है, इसलिए इसे सृष्टि का प्रतीक माना गया है। उर्दू में शमा रोशन की जाती है, तो हिन्दी में दीप प्रज्वलन किया जाता है। उर्दू साहित्य में सात आसमानों की बात कही गयी है, तो हिन्दी साहित्य में केवल एक आकाश माना गया है। इस्लाम में चूँकि पुनर्जन्म नहीं माना जाता, इसलिए पुनर्जन्म सम्बन्धी कोई कल्पना भी मुस्लिम साहित्यकारों द्वारा नहीं की गयी है, जबकि हिन्दूधर्म की पुनर्जन्म में आस्था है, इसलिए हिन्दू रचनाकारों द्वारा प्रमुखता से इसका वर्णन साहित्य में किया गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि कोई भी भाषा हो, वह या तो अनायास ही किसी न किसी धर्म से जुड़ जाती है या फिर जोड़ ली जाती है। इसलिए भाषा में धार्मिक संस्कार भी सम्मिलित हो जाते हैं। यही कारण है कि मुस्लिमों का धार्मिक साहित्य अरबी, फारसी और उर्दू में मिलता है, जबकि हिन्दुओं का धार्मिक साहित्य संस्कृत, अवधि, ब्रजभाषा और हिन्दी भाषा में। यहाँ इस बात का उल्लेख करना भी आवश्यक हो जाता है कि उर्दू में साहित्य सर्जन करनेवाले अनेक हिन्दू साहित्यकारों द्वारा
अपनी रचनाओं में इस्लाम धर्म विषयक अनेक प्रसंगों का उल्लेख किया गया है। उन्होंने इस्लाम धर्म के महापुरुषों को श्रद्धा के साथ स्मरण भी किया है और नमन भी। यहाँ तक कि अरबी– फारसी में रचित धार्मिक पुस्तकों का हिन्दी भाषा में अनुवाद भी किया गया है। वहीं हिन्दी भाषा में साहित्य सर्जन करनेवाले अनेक मुस्लिम साहित्यकारों ने हिन्दू देवी–देवताओं को श्रद्धा के पुष्प अर्पित किये हैं। गीता और रामायण जैसे महान ग्रन्थों का अरबी–फारसी–उर्दू में अनुवाद किया गया है। साहित्यकारों ने जाति और धर्म के बाहरी आवरणों को उतार फेंककर मानव को मानव से जोड़ने का यत्न किया है। यहाँ इस विषय को हम हिन्दी ग़ज़ल तक ही सीमित रखना चाहते हैं। हिन्दी ग़ज़ल का कल्पना–संसार बहुत विस्तृत है।

कृष्णबिहारी 'नूर' के साहित्य की विशेषता है कि उनके शृंगार में भी अध्यात्म के दर्शन होते हैं। उनके निम्नांकित शेर को महबूब से भी जोड़ा जा सकता है और ईश्वर से भी। वह इस जन्म में ईश्वर को पहचानने की स्वीकारोक्ति तो करते हैं, लेकिन उसको पाने के लिए अगला जन्म लेने की इच्छा भी रखते हैं–

''तुझको पहचान लिया है, तुझे पा भी लूँगा
इक जनम और मिले ग़र इसी जीवन की तरह।''[15]

कहा जाता है कि भवसागर पार करने के बाद पुनर्जन्म नहीं होता, लेकिन वे बिरले महापुरुष हैं, जो भवसागर पार कर लेते हैं। इसी बात को नूरसाहब ने बड़ी खूबसूरती के साथ कहा है–

''आवागमन की क़ैद से क्या छूटता कभी
वो तेरा प्यार था, जो छुड़ा ले गया मुझे।''[16]

आज मानव तो दिखायी दे रहा है, लेकिन उसमें मानवता नजर नहीं आ रही है। इंसानियत को 'बुढ़िया' प्रतीक के माध्यम से दर्शाते हुए मंगल नसीम ने सुंदर शेर कहा है–

''इंसानियत हूँ, जाती हूँ, ढूँढोगे एक दिन
बस इतना कहके फिर न वो बुढ़िया दिखायी दी।''[17]

हिन्दी ग़ज़ल का कल्पना–संसार उधार का नहीं, उसका निजी है। शरीर को बिल्डिंग की संज्ञा देते हुए सुरेन्द्र चतुर्वेदी ने अच्छा शेर कहा है–

''चाहत से ऊँची हो गयीं जिस्मों की बिल्डिंगें
रूहों ने अपने नाप का कमरा बदल लिया।''[18]

सपनों का संसार भी बड़ा अजब होता है, और खुली आँखों के सपने तो अक्सर जख्मी होकर दम तोड़ बैठते हैं। ऐसे ही दिन के सपनों को सम्बोधित कर रहे हैं निश्तर खानकाही–

''मुझसे मिलकर आज फिर हलक़ान होने आये हो
दिन के सपनों क्यों मेरी आँखें भिगोने आये हो
पाम के लम्बे जटाधारी से वृक्षों के निकट
किसलिए बीते दिनों की राख ढोने आये हो
कामना मन में नहीं है, स्वप्न आँखों में नहीं
तुम कहाँ सूखी नदी में हाथ धोने आये हो।''[19]

शिवओम अम्बर की ग़ज़लों में जहाँ संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दावली होती है, वहीं उनके बिम्ब, प्रतीक और कल्पना भी मौलिक होती है। इनके कुछ शेर प्रस्तुत है–

''वेशभूषा पहन पुजारी की
शख्सियत किसकी है?भिखारी की
होंठों पे मंगला ऋचा उनके
हाथ में मूठ है कटारी की
इन दिनों है बबूल के वन में
पाटली नायिका बिहारी की।''[20]

हिन्दी ग़ज़ल के लिए कल्पनाओं का असीमित आकाश है, जिसमें वह निरन्तर उड़ान भर रही है। इस परिप्रेक्ष्य में विभिन्न ग़ज़लकारों के कुछ शेर और प्रस्तुत हैं–

''आपको यदि दूर से कुछ रोशनी मालूम दे
तो समझिये हम दिखायी दे रहे हैं दूर से।[21]

———

क्या फिर कोई मकान अँधेरों से भर गया
शमशान में है चारों तरफ रोशनी बहुत।[22]

———

अपनी इच्छाओं को सीमाओं में बाँधे रखिये
वरना ये शौक़ गुनाहों में बदल जायेंगे।[23]

———
रिश्तेदारी है टेलीफोन मशीन
सिक्का डालो तो बात होती है।[24]
———
जिसे तुमने लिखा था एक पल में
उसे पढ़ते जमाना हो गया है।[25]
———
धड़कनें चुप हैं, अधर मौन, निगाहें खामोश
ज़िन्दगी और तुझे कैसे पुकारा जाये।[26]
———
एक हरकत पर अँधेरा काँप जायेगा जरूर
आप माचिस की कोई तीली जलाकर देखिये।[27]
———
मन्दिर के दीप तक तो मेरा एक रूप था
ये दरपनों के बीच कहाँ रख दिया मुझे।[28]
———
परिन्दों का बसेरा और छतों पर
तो क्या पेड़ों ने कोई शर्त रख दी।[29]
———
सियासत कर रहा है जो लहू की
उसी के हाथ में खंजर नहीं है।[30]
———
मुझको तमाम उम्र का रस्ता दिखा दिया
घर की ज़रूरतों ने मुसाफ़िर बना दिया
बैशाखियों को छोड़ के खुद ही संभल गए
जिनको मुसीबतों ने संभलना सिखा दि या।[31]
———
मेरा छोटा–सा घर है बेबसी का
चरण रखकर इसे तू धाम कर दे।[32]
———
नई तहज़ीब को अपना सभी कुछ मान लेता है
कि बेटा बाप पर ही आज मुट्ठी तान लेता है।[33]
———
जहाँ शरीर से लेकर ज़मीर तक बिक जाय
नई हवाओं ने छोड़ा वहाँ पे ले जाकर।[34]
———
जलो तो यूँ कि हर इक सिम्त रोशनी हो जाय
बुझो तो यूँ कि न बाक़ी रहे निशानी भी।[35]

संदर्भ–

1. डा. अनन्तराम मिश्र : दोहा सन्दर्भ, सम्पा. कृष्णस्वरूप शर्मा मैथिलेन्द्र व डा. महेश दिवाकर, पृ. 45.
2. शमशेर बहादुर सिंह : हिन्दी ग़ज़ल की विकास यात्रा, ज्ञानप्रकाश विवेक, पृ. 66 से उद्धृत
3. दुष्यन्त कुमार : साये में धूप, पृ. 29.
4. दुष्यन्त कुमार : साये में धूप, पृ. 41.
5. शिवओम अम्बर : हिन्दी की चर्चित ग़ज़लें, सम्पा. राजगोपाल सिंह, पृ. 87.
6. कृष्णबि हारी 'नूर' : समन्दर मेरी तलाश में है, पृ. 65–66.
7. दुष्यन्त कुमार : साये में धूप, पृ. 23.
8. दुष्यन्त कुमार : साये में धूप, पृ. 31.
9. डा. कुँअर बेचैन : हिन्दुस्तानी ग़ज़लें, सम्पा. कमलेश्वर, पृ 101.
10. ज्ञानप्रकाश विवेक : हिन्दुस्तानी ग़ज़लें, सम्पा. कमलेश्वर, पृ 101.
11. अश्वघोष : हिन्दुस्तानी ग़ज़लें, सम्पा. कमलेश्वर, पृ 144.
12. कृष्णबिहारी 'नूर' : समन्दर मेरी तलाश में है, पृ 79–80.
13. विज्ञानव्रत : हिन्दी की चर्चित ग़ज़लें, सम्पा. राजगोपाल सिंह, पृ 101–102.
14. सुरेन्द्र चतुर्वेदी : कोई कच्चा मकान हूँ जैसे, पृ 70.
15. कृष्णबिहारी 'नूर' : समन्दर मेरी तलाश में है, पृ 13.
16. कृष्णबिहारी 'नूर' : समन्दर मेरी तलाश में है, पृ 22.
17. मंगल नसीम : हिन्दी की चर्चित ग़ज़लें, सम्पा. राजगोपाल सिंह, पृ 56.
18. सुरेन्द्र चतुर्वेदी : कोई कच्चा मकान हूँ जैसे, पृ 24.
19. निश्तर खानकाही : हिन्दी की चर्चित ग़ज़लें, सम्पा. राजगोपाल सिंह, पृ 65.
20. शिवओम अम्बर : हिन्दी ग़ज़ल यात्रा–2, सम्पा. डा. गिरिराज शरण अग्रवाल, पृ 156.
21. कृष्णमन : रोशनी पाँच सौ चिरागों की, सम्पा. कल्पना सक्सेना, पृ 3.
22. दर्ष सुदर्शन : रोशनी पाँच सौ चिरागों की, सम्पा. कल्पना सक्सेना, पृ 4.
23. राकेश विद्रोही : रोशनी पाँच सौ चिरागों की, सम्पा. कल्पना सक्सेना, पृ 6.
24. विनय सरगम : रोशनी पाँच सौ चिरागों की, सम्पा. कल्पना सक्सेना, पृ 7.
25. शरत रंजन यादव : रोशनी पाँच सौ चिरागों की, सम्पा. कल्पना सक्सेना, पृ 7.
26. डा. कुँअर बेचैन : रोशनी पाँच सौ चिरागों की, सम्पा. कल्पना सक्सेना, पृ 9.
27. माहेश्वर तिवारी : रोशनी पाँच सौ चिरागों की, सम्पा. कल्पना सक्सेना, पृ 12.
28. नूतन कपूर : रोशनी पाँच सौ चिरागों की, सम्पा. कल्पना सक्सेना, पृ 19.
29. दीपक जैन : रोशनी पाँच सौ चिरागों की, सम्पा. कल्पना सक्सेना, पृ 47.
30. अनिरुद्ध सिन्हा : काव्यगोष्ठी में प्रस्तुति के आधार पर
31. अनिरुद्ध सिन्हा : अग्रिमान (प्रधान संपादक डा. मनोहर अभय) अंक जुलाई–सितंबर–2022, पृ 19
32. अनिरुद्ध सिन्हा : अग्रिमान (प्रधान संपादक डा. मनोहर अभय) अंक जुलाई–सितंबर–2022, पृ 19
33. डा. कृष्णकुमार 'नाज', उगा है फिर नया सुरज, पृ 59.
34. डा. कृष्णकुमार 'नाज', नई हवाएँ, पृ 117.
35. डा. कृष्णकुमार 'नाज', नई हवाएँ, पृ 116.

9/3 लक्ष्मीविहार, हिमगिरि कालोनी, कांठ रोड, मुरादाबाद–244105 (उ.प्र.) मो. 99273–76877

आलेख

समाज में दिन–ब–दिन फैलती नफरत के खिलाफ ग़ज़ल की चिन्ता

के. पी. अनमोल
अनमोल प्रतीक्षा, सोलानीपुरम,
रुड़की (उत्तराखण्ड)
मो. 8006623499

जिस तरह भाईचारा और अपनापन हमारे भारतीय समाज में सदियों से मौजूद रहे हैं, उसी तरह वैमनस्य और आपसी झगड़े भी लम्बे समय से हमारे बीच बने हुए हैं। चूँकि मनुष्य भी एक जानवर से ही है, इसलिए लड़ना–झगड़ना इसका शगल रहा है। 'सभ्यता' शब्द के गढ़े जानेके हजारों–लाखों वर्षों बाद भी मनुष्य ने अपने इस दुर्गण को छोड़ा नहीं है। हम आये दिन देश में, दुनिया में किसी–न–किसी झगड़े की चर्चा सुनते ही रहते हैं। इन लड़ाई–झगड़ों की हजारों वजहें हैं हमारे पास और इन हजारों वजहों में एक वजह हमने मजहब अथवा धर्म को भी बना रखा है। वह मजहब, जिसकी उत्पत्ति मनुष्य को नियंत्रण में रखने के लिए हुई थी, उसे सभ्य बनाने के लिए हुई थी, उसी मजहब के कारण इंसान असभ्य हुआ जाता है।

पिछले कुछ सालों में क्या, लगभग हर दौर में हमें धर्म को लेकर सिर–फुटौव्वल मिलती है। दुर्भाग्य से आज के समय में भी मनुष्य जितना शिक्षित होता जा रहा है, जितना तकनीकी रूप से सक्षम होता जा रहा है, उतना संकीर्ण मानसिकता में उलझता जा रहा है। आज के समय में हमारे भारतीय समाज में जो धार्मिक उन्माद देखा जा रहा है, उससे चिंता पैदा होना लाजिमी है। इसीलिए यह चिन्ता हमें इस समय की सभी कलाओं में दबी–खुली लगभग सभी जगह अभिव्यक्त होती मिलती है। साहित्य भी इस चिन्ता से अछूता नहीं है। आज आप हमारे हिन्दी साहित्य की किसी भी विधा का लेखन उठाकर देख लें तो वर्तमान भयावह परिस्थितियाँ हमें मुँह बाये खड़ी मिलती हैं। ऐसे में ग़ज़ल, आज की सर्वाधिक लोकप्रिय विधाओं में शामिल ग़ज़ल में ये स्थितियाँ, ये चिन्ताएँ प्रतिबिम्बित न हों, यह कैसे संभव है!

समकालीन ग़ज़ल में जहाँ आज के दौर की हर स्थिति–परिस्थिति पर शेर कहे जा रहे हैं, वहीं आपसी वैमनस्य, धार्मिक उन्माद और अलगाव की इन विषम परिस्थितियों को देखकर अनेक ग़ज़लकार चिंतित दिखाई देते हैं। ग़ज़ल एक ऐसी विधा मानी जाती रही है, जो सिर्फ मुहब्बत की जुबान जानती है। ऐसे में इसका चारों तरफ व्याप्त नफरत को देखकर दुःखी होना लाजिमी है। आज हमारे आसपास के साहित्य में अनेक ग़ज़लकार ऐसे दिखाई देते हैं, जो इन सामाजिक अलगाव की परिस्थितियों पर खुलकर अपनी चिंता व्यक्त करते दिखते हैं। वर्तमान में जिस तरह गाँव–गाँव और शहर–शहर में धार्मिक उन्माद देखा जा रहा है, वह दुखद है, लेकिन उससे ज्यादा दुखद यह है कि इस उन्माद में सबसे ज्यादा भागीदारी युवाओं की है। वे ही युवा, जिन्हें किसी भी देश का कर्णधार समझा जाता है। इन युवाओं की अजीब मानसिक स्थिति को देखकर हिन्दी ग़ज़ल के सशक्त युवा हस्ताक्षर 'अभिषेक सिंह' अपने एक शेर में लगभग आवेश में आकर कहते हैं कि–

''ये नफरत मार न डाले इन्हें ही
कोई समझाए वहशी छोकरों को।''

इसी धार्मिक उन्मादित हाथों में अपने–अपने धर्म का झंडा थामे हुए, अपने–अपने धर्म को श्रेष्ठ बताते हुए और नारे लगाते हुए उन्मादी यह भी भूल जाते हैं कि वे सभी एक ही झण्डे तिरंगे के साये में रहनेवाले लोग हैं। उन्हें इस तिरंगे झण्डे को अपने उद्यम से श्रेष्ठता की ओर ले जाना था, लेकिन नहीं, यह पगलायी हुई भीड़ यह नहीं समझ पाती कि वे किस तरह अपना और अपने देश, समाज का नुकसान किये जा रही है। ऐसे नादान लोगों के हुजूम पर उर्दू ग़ज़ल के ताजादम नाम 'सुभाष पाठक 'जिया' एक चित्र खींचते हैं, यह चित्र कितना मार्मिक बन पड़ा है, देखिए–

''दिखाई दे रहे हैं सबके हाथों में अलग परचम
ये मंज़र देखकर आँखें तिरंगे की हुई हैं नम।''

आखिर ऐसा क्या है कि हमारा समाज निरन्तर संवेदनहीनता की ओर जा रहा है! कौन से वे कारण हैं कि जो हम सुकून पसंद लोगों के बीच बेचैनी घोल के रख देना चाहते हैं! कोई तो चीज है, जो हँसती–खेलती और अपने मेहनत के पसीने से अपनी खुशहाली लिखती हमारी बस्तियों को आग के हवाले कर देना चाहती है। अनेक–अनेक लोग अपने–अपने तरीके से इस स्थिति को समझने में लगे हैं। हमारे समकाल के ग़ज़लकार भी कुछ इसी तरह की कोशिशों में रत हैं। वे निरंतर चिंतनशील हैं कि किस तरह इन तत्वों की पहचान हो और किस तरह तमाम मासूम लोगों को इन सबके संबंध में आगाह किया जाए, उन्हें रोका जाए, समझाया जाए।

इसी चिंतन में उर्दू के एक बेहतरीन युवा ग़ज़लकार 'फानी जोधपूरी' अपने आसपास के परिवेश से कुछ शब्दों के
घटते प्रभाव को लेकर अपने इस शेर में अपनी बेचैनी उतारते हैं। शब्दों का यह कम होता प्रभाव केवल प्रभाव नहीं, खुशहाल जिंदगी की रगों का सुकून है, जो धीरे–धीरे हमसे छिनता जा रहा है–

''प्यार, चाहत, दोस्ती, शफ़्क़त, मुहब्बत और लिहाज़
फ़ानी इन अल्फ़ाज़ की तासीर आधी रह गयी।''

जाहिर है कि शेर के पहले मिस्रे में जितने भी शब्द गिनाये गये हैं, उनके कम होते प्रभाव के कारण ही गाहे–ब–गाहे
हमारे गली–मोहल्लों में टकराव की स्थितियाँ पैदा होती हैं। इन्हीं शब्दों की तासीर कम होने से हमारे आपसी रिश्तों की पावनता खोती जा रही है। याद कीजिए, कहाँ है वह पहले के दिनों जैसी मुहब्बत और समझदारी, जो एक–दूसरे के रिश्तों के बीच इतना यकीन रख देती थी कि लाख कोशिशों के बावजूद मन में खटास पैदा न होने पाती थी। ये मुहब्बत, ये समझदारी, ये यकीन कहाँ हैं कि अब हम अपने हमसायों पर संदेह किये बैठे हैं! कुछ इसी तरह की चिन्ता से दो–चार होता ग़ज़लकार 'दिलीप सिंह 'दीपक' का यह शेर देखिए–

''कहाँ अब खो गयी है वो सहज रिश्तों की पावनता
न जाने हो रहा है रोज क्यों टकराव बस्ती में।''

हमें यह सोचना होगा कि हमारा यह आपसी टकराव हमारे समाज को, हमारे देश को किस ओर लेकर जाएगा। किसी भी समाज को, देश को बेहतर बनाने में सबसे पहला योगदान उसके साधारण नागरिकों का होता है।

हमें जानना होगा कि हम सभी नागरिक किस तरह ऐसे तत्वों से बचें, जो हमारे देश को नुकसान पहुँचानेवाले हैं। हमें यह समझना होगा कि वे कौन लोग हैं, जो हमारी प्यारी–सी दुनिया में जहर घोलना चाहते हैं। हमें अपनी तरक्की के रास्तों से भटकाना चाहते हैं। ग़ज़लकार 'ख्याल खन्ना' की तरह हमें अपने आपसे यह पूछना होगा कि फसादों, दहशतों का रंग भर के ये किसने मुल्क का नक्शा बनाया कितनी हैरानी की बात है कि जिस मजहब का काम लोगों के दिलों में एक–दूसरे के लिए प्रेम और सम्मान पैदा करना था, उसी मजहब को दिलों में बीच दीवारें खड़ी करने के लिए इस्तेमाल किया जा रहा है। हिन्दी ग़ज़ल के
वरिष्ठ रचनाकार कमलेश भट्ट 'कमल' अपनी हैरानी इन शब्दों में प्रकट करते हैं–

''कहीं मज़हब, कहीं पर जात की पाबदियाँ लिख दीं
ये किसने बंदिशें इतनी दिलों के दरमियाँ लिख दीं।''

कहाँ, किसने, क्यों से घिरे कितने ही ऐसे प्रश्न हैं, जिन पर अनेक दूसरे क्षेत्रों की तरह ग़ज़ल में भी मंथन लगातार जारी है। यह मंथन हमारी आज की ग़ज़ल और उसके रचनाकारों के सजग होने का प्रमाण तो है ही, इस बात का भी द्योतक है कि एक छटपटाहट यहाँ भी जारी है कि किस तरह अपने देश, अपने लोगों को इस आग में झुलसने से बचाया जाए। आशंका है कि नफरत की यह आग कहीं इंसानियत का गला न घोंट दे। ग़ज़लकार 'चाँद शेरी' कहते हैं–

''रह गयी इंसानियत दम घोंट कर
लोग नफरत के पुजारी हो गये।''

आशा है नफरत के इस भयावह दौर के बीच ग़ज़ल तथा अन्य साहित्यिक विधाओं के जरिए ऐसी तमाम कोशिशें लगातार जारी रहेंगी, जो आपसी मुहब्बत और भाईचारे को जिन्दा रखने का हौसला पैदा करती हैं। फिलहाल तो चारो तरफ के हालात देखकर मुँह से बरबस यही निकलता है, यह मेरा ही शेर है–

''यह आग जो लगी है खुदा तेरे नाम पर
इस आग में तमाम खुदाई न जल पड़े।''

ग़ज़लें

अनिरुद्ध सिंह
गुलज़ार पोखर, मुंगेर
मो.–7488542351

1.
ज़ालिमों के जुल्म का ज़वाब हम हुए
आपकी नज़र में जो खराब हम हुए
दर्ज़ हैं जहाँ सभी सबूत दर्द के
इस सदी की आज वो किताब हम हुए
बागवाँ ने जिस चमन से फेर ली नज़र
उस चमन का खुशनुमा गुलाब हम हुए
आँकड़ों के खेल में हरेक मर्तबा
सच का हाँफता हुआ हिसाब हम हुए
तोड़ भी नहीं सके जो रात का गुरूर
उस अँधेरी रात का वो ख़्वाब हम हुए।

2.
सच पूछो तो ममता की ज़ंजीर चुरा ली है
माँ की हमने माँ की ही तस्वीर चुरा ली है
कुछ बिखरी उम्मीदों की जागीर चुरा ली है
जैसे राँझा से दुनिया ने हीर चुरा ली है
उसको ही सोचा है हमने उसको ही चाहा
जिसने धड़कन की अपनी जागीर चुरा ली है
कैसी ममता का आँचल है माँ के सीने पर
जिसमें उसने पूरे घर की पीर चुरा ली है
अपनी तन्हाई से वो पूछ सके तो पूछे
किसने उसकी उल्फ़त की जागीर चुरा ली है।

3.
अपने हिस्से का सफ़र वो उम्र भर समझा नहीं
और समझाने से भी कुछ रास्ता निकला नहीं
मुख़्तसर–सी रात थी और ख़्वाब का मंज़र तवील
चाँद चलता ही रहा कुछ देर वो ठहरा नहीं
आख़री क़तरा हूँ शबनम का मैं तू पहली किरण
ओस की बूँदों से होता धूप का रिश्ता नहीं
इस तरफ तो इश्क़ के दरिया से मैं महरूम हूँ
उस तरफ चर्चा यही है मैं अभी प्यासा नहीं
हम उन्हीं को दे चुके हैं ज़िंदगी की भूमिका
आज तक संवाद पढ़ना भी जिन्हें आया नहीं।

4.
घर में रहकर घर के जैसा होना पड़ता है
दर्द मुहब्बत से कांधे पर ढोना पड़ता है
बदली–बदली इस दुनिया में अपने हिस्से का
समझौते का बीज नज़र में बोना पड़ता है
साथ नया साथी मिल जाए मुश्किल राहों में
कदम–कदम पर चैन दिलों का खोना पड़ता है
बेमतलब की चालाकी से फर्ज़ निभाने तक
चुपके–चुपके दिल ही दिल में रोना पड़ता है
याद हमें आती हैं चाँद सितारों वाली रात
भरकर आँसू आँखों में जब सोना पड़ता है।

5.
तेरी आँखों का ये मंज़र हसीं है
कहीं शोला तो चिंगारी कहीं है
अभी बैठा है सूरज सर के ऊपर
मेरा साया भी अब अपना नहीं है
मुझे काँधों की कल होगी ज़रूरत
मुझे हर हाल में रहना यहीं है
जहाँ से मैं चला था इस सफ़र में
मुझे फिर लौटकर जाना वहीं है
हवा कैसे बिखेरे खुशबुओं को
धुआँ है धुंध है रोती जमीं है।

आलेख

हिन्दी ग़ज़ल के विभिन्न आयाम

डॉ. रमा राहुल दूधमांडे
विभागाध्यक्ष
डॉ. (सौ.) इं. भा. पाठक महिला कला महाविद्यालय
छत्रपति संभाजीनगर (महाराष्ट्र)
मो. 08975032435

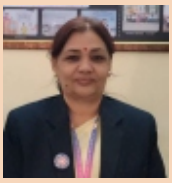

हिंदी ग़ज़ल काव्य की ही एक लोकप्रिय विधा है। आज हम देख रहे हैं, ग़ज़ल काव्य की सक्षम धारा की भाँति ही प्रवाहमान है। हिंदी ग़ज़लकारों ने उसे नए प्रतीक, नए प्रयोग के कारण एक विशिष्टता प्रदान की है। साहित्य एवं संगीत का बड़ा पुराना रिश्ता है। संगीत सामवेद से आया है। सामवेद की ऋचाएँ तीन स्वरों के साथ कही जाने लगी, तभी से संगीत एवं साहित्य का रिश्ता बन गया है। अभिजात संगीत के साथ लोक संगीत, ललित संगीत पनपने लगा। इन विधाओं को जब हम देखते हैं, ग़ज़ल विधा की लोकप्रियता के चरमोत्कर्ष में अमीर खुसरों के जमाने को देखते हैं। आज भी ग़ज़ल लोकप्रियता के चरम उत्कर्ष पर पहुँची है।

ग़ज़ल की लोकप्रियता की एक ख़ास वजह है, उसका साहित्यिक मूल्य। ग़ज़ल के शेर भावपूर्ण, अर्थपूर्ण एवं चमत्कृत पूर्ण होते हैं। कल्पनाओं की ऊँची उड़ान शेरों में पायी जाती है। शेरों के दूसरे मिसरे में कल्पना को भावपूर्ण एवं चमत्कृतपूर्ण मोड़ मिलता है। हर ग़ज़लकार की क़ाबिलियत एवं प्रगल्भता के कारण शेर में मौलिकता आ जाती है।

भारतीय साहित्य और संगीत की परपराओं में ग़ज़ल गायकी का भी उल्लेखनीय स्थान है। ग़ज़ल के विकास और उत्कर्ष की पृष्ठभूमि में भारत का महत्त्वपूर्ण योगदान के रहा है।

यह संगीतात्मक काव्य विधा अत्यंत लोकप्रिय रही है और इसने जन–जीवन में लोकप्रियता बनाई है। इसका प्रमुख कारण इसकी विषय–वस्तु हैं, जहाँ इन्सानी छोटे–छोटे दुख–दर्दों और छोटी–छोटी खुशियों को अपने में समेटे रहती है, काव्य की लोकप्रिय विधा ग़ज़ल का जीवन से भी घनिष्ठ संबंध है। संगीत भी जीवन की एक विधा है। काव्य और संगीत का बड़ा गहरा सम्बन्ध है। ग़ज़ल और संगीत में आश्रय भाव अधिक है। ग़ज़ल का जन्म संगीत के संस्कार के साथ हुआ है। ग़ज़ल संगीत पर आश्रित है।

भारतीय संगीत जगत में ग़ज़ल फारसी संगीत की देन है। भारत पर मुसलमानों का आधिपत्य हो गया, जब वे भारत आये, तब अपने साथ–साथ लाए अपनी संस्कृति को भी लेते आये, यहाँ की भाषा, वेशभूषा, रीति–रिवाज आदि में क्रान्तिकारी परिवर्तन आया।

वास्तव में ग़ज़ल को प्रसारित करने में सूफी सन्तों का विशेष सहयोग रहा है। ग़ज़ल के माध्यम से इन्होंने विभिन्न धर्मों के बीच समन्वय स्थापित करने का प्रयास भी किया है। भारतीय संस्कृति ने फारसी की ग़ज़ल शैली को अपनाया और उसे भारतीय रागों एवं तालों में समाविष्ट किया। आम लोगों तक ग़ज़ल को पहुँचाना, लोकाप्रिय करना, सूफी सन्तों का बड़ा योगदान रहा है।

ग़ज़ल और ग़ज़ल गायकी पुराने जमाने से ग़ज़ल गाने का प्रचलन रहा है। गायकों ने आज महफ़िलों से निकाल कर जन सामान्य तक पहुँचा दिया है। भारत में ग़ज़ल के प्रवर्तन का श्रेय 13वीं ई. में प्रसिद्ध सूफी संत मुईनुद्दीन चिश्ती को है। परंतु ग़ज़ल को प्रतिष्ठित करने में खिलजी और तुगलक समाज के राजकवि अमीर खुसरों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा हैं।

ग़ज़ल का बुनियादी मिज़ाज शृंगारी है। ग़ज़ल में शब्दों का चयन भी बड़ी सावधानी से करना पड़ता है, जिनमें कोमलता हो, विभिन्न तालों एवं रागों में ग़ज़लें गायी जा सकती है। ग़ज़ल अभी हर भाषा में छन्दोबद्ध काव्य विद्या के रूप में ही प्रस्तुत की गयी है और छन्द की अनिवार्य शर्त इसकी गेयता होती है।

ग़ज़ल का संगीत से बड़ा ही सहज सम्बन्ध रहा है। कोई ग़ज़लकार जब तरन्नुम से ग़ज़ल को प्रस्तुत करता है, तो उसका बड़ा गहरा असर होता है। ग़ज़ल चाहे किसी भी भाषा में कहीं गयी हो, संगीत के साथ भी उसका सहज संबंध होता है। हिन्दी के ग़ज़लकारों ने अपनी ग़ज़लों में 'बहरों' का खास ध्यान रखा है। लयात्मकता और छन्दात्मकता का भी ध्यान रखा है।

हिन्दी की ग़ज़लें संगीत का साथ लेकर निखरने लगी है। हिन्दी की ग़ज़लें विभिन्न तालों एवं रागों में गायी जाती हैं। हिन्दी ग़ज़ल और संगीत का भी अटूट रिश्ता है। बिना संगीत ग़ज़ल नहीं। वास्तव में ग़ज़ल परिपूर्ण शैली है। अल्प अवधि में अधिक आनंद देने की इसमें सामर्थ्य है। अमीर खुसरो के जमाने में ग़ज़ल गायकी बेहद लोकप्रिय थी। आगे चलकर बेगम अख़्तर ने ग़ज़ल गायकी का प्रभाव बरकरार रखा। उत्तर हिन्दुस्तान में खासतौर से लखनऊ और बनारस दिल्ली में ग़ज़ल की परंपरा बनी रही।

ग़ज़ल में गाए जानेवाले राग ख़माज, पोलू, काफ़िया आदि है। इसकी गायन पद्धति अत्यन्त सरल होती है। गाने के
बीच बीच में थोड़ा–सा आलाप ताल और स्वर विस्तार के साथ इसकी समाप्ति बड़ी अच्छी लगती है। फिल्म संगीत का भी ग़ज़ल गायकी पर प्रभाव पड़ा है। छोटी–छोटी भावपूर्ण मुकरियों, मीडों से सजाया जाता है। संवेदनशीलता के साथ गायी जाती है। मेंहदी हसन और निर्मला देवी की गायकी इसका प्रमाण है
गुलाम अली, पंकज उधास, जगजीत सिंह, राजकुमार रिजवी, राजेन्द्र

मेहता, मनहर उधास, तलत अजीज, अनूप जलोटा, हरिहरन आदि ये वो गायक हैं, जो बड़ी खूबसूरती से ग़ज़लों को गाकर श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर देते हैं।

भारत में ग़ज़ल–शैली को प्रसारित करने का श्रेय मुख्यतः धार्मिक केन्द्रों को दिया जा सकता है। गीतों के माध्यम से इन सन्तो ने विभिन्न धर्मों तथा पंथों के बीच ऐक्य स्थापित करने का प्रयास किया। ग़ज़ल में मानवीय प्रेम तथा ऐन्द्रिय प्रेम के स्थान पर ईश्वर–विषयक दिव्य तथा अतीन्द्रिय प्रेम को उन्होंने स्थान दिया। संगीतमय सूफी तत्त्वज्ञान भारतीयों का सहज पसन्द आया। सूफियों द्वारा संगीत को आराधना के रूप में अपनाना भारतीय संस्कृति की महान विजय थी। उन्होंने अपने प्रार्थना–संगीत के लिए फारसी की ग़ज़ल शैली को अपनाया तथा भारतीय रागों एवं तालों में ढालकर उसको प्रस्तुत किया। इस शैली का प्रसार एवं लोकप्रियता इन्हीं सूफी केन्द्रों के माध्यम से हुई।

ग़ज़ल की दूसरी खासियत है–उसकी लयात्मकता। ग़ज़ल पढ़ने एवं गाने का अपना एक अन्दाज होता है।

डॉ.कुँअर 'बेचैन' लिखते हैं–गहरे से गहरे अनुभव तथा विस्तृत व व्यापक विचार को कम–से–कम शब्दों में सम्पूर्ण कलात्मक गरिमा प्रदान करते हुए प्रभावशाली ढंग और लयों के साथ सहज रूप में प्रस्तुत करने के गुण के कारण यह श्रोताओं और पाठकों के बीच अधिक लोकप्रिय भी हुई है। यह सच है कि ग़ज़ल में लयबद्धता को विशेष ध्यान रखना पड़ता है।इसी लयबध्यता के कारण उसकी लोकप्रियता बढ़ी है।

कथ्य की दृष्टि से हिन्दी की ग़ज़लें उर्दू की ग़ज़लों से अलग जान पड़ती है। हिन्दी की ग़ज़लें सामाजिक परिवेश से जुड़ी रहने के कारण उसमें वैचारिकता अधिक आ पायी है। संगीतात्मकता थोड़ी कम। हिन्दी ग़ज़लकारों ने ग़ज़ल को एक छन्द विशेष के रूप में अपनाया है। हिन्दी के तमाम ग़ज़लकारों ने संगीतात्मकता की ओर ध्यान देकर अपनी ग़ज़लें प्रस्तुत की हैं। इनमें लयबद्धता, उद्बद्धता और गेयता भी है। ग़ज़ल में बहर का विशेष ध्यान रखना पड़ता है।बहरों के कारण ही ग़ज़ल में संगीतात्मकता आ जाती है। बहर में वर्ण, मात्रा, लय, गति, यति का ध्यान रखा जाता है। 'बहर' एक नियमित लय है और लय स्वयं में एक संयत व्यवस्था है, जिसका जन्म स्वरों के आरोह–अवरोह से होता है।

ग़ज़ल गीत की तरह हिंदी में अपने तरन्नुम के कारण लोकप्रिय हो चुकी है। ग़ज़ल और संगीत दोनों आपस में इतने घुल–मिल गए हैं कि उन्हें अलग कर पाना बड़ा मुश्किल है। संगीत ग़ज़ल की जान है। अगर ग़ज़ल से संगीत हट जाता है, तो वह ग़ज़ल बेजान हो जाती है।मूल रूप से गीतितत्त्व ग़ज़ल की प्राणवायु है। जहाँ संगीत ने ग़ज़ल को लोकप्रिय बनाया है, वहाँ ग़ज़ल ने भी संगीत को सरस श्रवणीयता प्रदान की है। ग़ज़ल गायकी तीन प्रकार की होती है।परम्परागत गायकी जो गिने–चुने रागों पर आधारित है; जैसे खमाज, पीकू, झिंझोटी, देस आदि। फिल्मी ग़ज़ल गायकी जबसे सिनेमा संगीत आया, फिल्मी गीतों के साथ फिल्में ग़ज़ल भी आनी शुरू हुई। के. एल. सहगल ने एक ढंग निकाला, जिनमें पंकज मलिक भी है। फिर बाद में फिल्मी ग़ज़लों का एक ढंग बन गया, जिसमें आर्केस्टा काफी योगदान होने लगा। आजकल शास्त्रीय रागों पर आधारित ग़ज़ल गाने का प्रचलन है।मेहदी हसन, गुलाम अली जैसे लोगों की ग़ज़लें रागों पर ही आधारित हैं।

बनारसी ग़ज़ल गायकी यह बड़ी शानदार होती है और खासतौर से दीवानखाने में गायी जाती है। मरहूम बेगम अख़्तर की ग़ज़लें बनारसी ढंग की ग़ज़लें है।पर आगे चलकर उनमें लखनवी ढंग मिल गया।

दिल्ली ग़ज़ल गायकी अमीर खुसरों के दरबार से आयी है। इस गायकी के साथ कत्थक नृत्य भी प्रस्तुत किया जाता।इस ग़ज़ल के विस्तार में कल्पनाशीलता का प्रयोग भी किया जा सकता है।ढोलक के प्रयोग से यह ग़ज़ल थोड़ी कव्वाली की ओर झुक जाती है

लखनवी ग़ज़ल गायकी इस तरह की ग़ज़लें कन्नौज एवं मथुरा में गाई जाती है।यह ग़ज़ल पूर्वी ढंग की ग़ज़ल भी
कहा जाता है। इस तरह की ग़ज़लें द्रुत लय में गायी जाती है। यह गायकी दिल्ली एवं बनारसी ग़ज़ल गायकी के बीच समन्वय स्थापित करती है। इसमें पंजाबी ढंग अथवा टप्पा अंग की हरकतें बड़ी मात्रा में पायी जाती हैं।

ग़ज़ल गायकों में सबसे पहले नाम आता है अफ़जल हुसैन नगीना का।उनकी ग़ज़ल गायकी रागदारी पर आधारित
थी, उन्हीं दिनों पंजाब में बरकत अली खाँ ने भी शास्त्रीय गायकी के साथ–साथ ग़ज़ल गायन शुरू किया। इनके साथ अफ़जल हुसैन जयपुर वाले और लखनऊ के मुजाहिद निवासी के नाम किये जाते हैं। इन्होंने भी शास्त्रीय संगीत पर विशेष बल दिया।

बेगम अख़्तर ने बनारसी एवं लखनवी गायकी को मिलाकर खुद का एक मौक्तिका लहाजा पैदा किया। ग़ज़ल गायकी शब्दप्रधान है। इसालिए साहित्य एवं संगीत का अनोखा समन्वय बेगम अख़्तर की ग़ज़लों में पाया जाता है।

मलिका पुखराज, गोहरजान कोलकातेवाली, मलकजान, बड़ी मोतीबाई, जद्दनबाई–ये सभी लोकप्रिय गायिकाएँ थीं। ग़ज़ल गायकी को नये लहजे में प्रस्तुत करने का सारा श्रेय स्व.कुदनलाल सहगल ग़ज़लकार को दिया जाता है।उनकी तमाम ग़ज़लें लोगों के दिल–दिमाग पर छा गयी। 1924 के आसपास तलत महमूद ने अपनी गायकी से सबका मन मोह लिया।फिर मेंहदी हसन का भी अपना एक लहजा सामने आया।अर्थानुरूप तर्ज संगीत का इस्तेमाल और सुरीली आवाज ये सारी उनकी खासियतें हैं।

हिन्दी ग़ज़ल की कुछ शेर प्रस्तुत हैं, जिनका मात्रा ताल, राग, सम और यति की दृष्टि से अध्ययन किया गया है।निराला की ग़ज़लों में भी हमें संगीत दिखाई देता है। निराला संगीत के जानकार रह चुके हैं। उनकी यह ग़ज़ल जिसमें एक लय है–

''उनके बाग में बहार देखता चला गया
कैसा फूलों का उभार देखता चला गया
प्रेम का विकास वह आँखें चार हो गयीं
पड़ा रश्मियाँ का हार देखता चला गया
मैंने उन्हें दिल दिया, उनका दिल मिला मुझे
दोनों दिलों का सिंगार देखता चला गया
असर ऐसा कि शिला पानी–पानी हो गई
जवानी का पानीदार देखता चला गया
अमृत के घूँट वे दुनिया ने जो पिये
टूटा भेद की दीवार देखता चला गया।''

(इसमें ताल–झपताल, सम+राग बागेश्री, मात्राएँ– दस, यति 0)
दुष्यंत कुमार की ग़ज़लों में भी संगीत है –
''कहीं पे धूप की चादर बिछा के बैठ गए
कहीं पे शाम सिरहाने लगा के बैठ गए
जले जो रेत में तलुवे तो हमने ये देखा
बहुत–से लोग वहीं छटपटा के बैठ गये
खड़े हुए थे अलावों की आँच लेने को
सब अपनी–अपनी हथेली जला के बैठ गये
लहूलुहान नज़ारों का जिक्र आया तो
शरीफ लोग उठे, दूर जा के बैठ गए
ये सोचकर कि दरस्तों में छाँव होती है
यहाँ बबूल के साये में आ के बैठ गये।''
(सुम + राग भैरखी, ताल–रूपक, मात्राएँ – सात, यति 0)

लोकप्रिय गीतकार एवं कवि नीरज की इस ग़ज़ल में भी गेयता एवं लयात्मकता है–
''गीत जब मर जायेंगे फिर क्या, यहाँ रह जायेगा
इक सिसकता आँसुओं का क़ारवाँ रह जायेगा
प्यार की धरती अगर बंदूक से बाँटी गई
एक मुर्दा शहर अपने दरमियां रह जायेगा
आग लेकर हाथ में पगले जलाता है किसे
जब न यह बस्ती रहेगी, तू कहाँ रह जायेगा।''
(ताल – रूपक, मात्राएँ – सात, राग – ललाट, साम+यति 0)

इस प्रकार चंद्रसेन 'विराट' की ग़ज़लों में संगीत है। डॉ. कुँवर 'बेचैन' की ग़ज़लों में संगीत है। जहीर कुरेशी, हनुमंत नायडू की ग़ज़लों में संगीत है। नीतिश्वर शर्मा 'नीरज' की ग़ज़लों में भी संगीत है।

दुष्यन्त कुमार ने हिन्दी ग़ज़ल को एक नयी दिशा एवं नई भावभूमि प्रदान की। फारसी, उर्दू के प्रभाव को ग्रहण करने के बावजूद उन्होंने हिन्दी ग़ज़ल को लालित्य तो प्रदान किया ही, एक नया मोड़ भी दिया, जिससे हिन्दी ग़ज़ल की लोकप्रियता बढ़ी। उनकी ग़ज़लों में अभिव्यक्ति दर्द स्वानुभूत है।

ग़ज़ल गायकी पर अन्य गायन शैलियों का प्रभाव पड़ा है। जैसे समय गुजरता है, हर कला विकास ओर अग्रसर होती है। ग़ज़ल गायन शैली हिंदुस्तानी संगीत की शैलियों से जैसे ध्रुवपद, धमार, ख्याल, ठुमरी, टप्पा, दादरा, कव्वाली आदि से अपने स्वरूपगत विभिन्न पक्षों में भिन्न–भिन्न रीति से समानता लिये प्रकट होता है। अतः कहा जा सकता है कि ग़ज़ल गायकी अन्य गायन शैलियों से प्रभावित रही है।

विद्वानों ने हिन्दी ग़ज़ल साहित्य के इतिहास को कालों में विभक्त किया है। एक पूर्व दुष्यन्त काल दूसरा उत्तर दुष्यंत काल। भारतेन्दु युगीन अन्य कवियों ने भी हिन्दी ग़ज़ल परंपरा को अपनाया। द्विवेदी युग में अनेक कवियों ने हिन्दी ग़ज़ल क्षेत्र में कार्य किया है। छायावादी कवियों में निराला और प्रसाद ने भी ग़ज़लें लिखी हैं। आज हिन्दी ग़ज़ल की अपनी एक पहचान बन चुकी है।

निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि ग़ज़ल और संगीत का बड़ा गहरा रिश्ता है। पद और संगीत का जो रिश्ता है, वही ग़ज़ल और संगीत का रिश्ता है। ग़ज़ल शैली के द्वारा सूफियों ने भावात्मक एकता को बढ़ावा दिया। वास्तव में ग़ज़ल फारस की विधा है, पर उसे भारतीय रागों एवं तालों में निबद्ध किया गया है।

मूलतः ग़ज़ल एक गेय काव्य है। संगीत एवं तरन्नुम का साथ पाकर उसकी सुंदरता और निखरती है। ग़ज़ल अगर
साधारण ढंग से प्रस्तुत की जाती है, तो उसका प्रभाव विशेष रूप से नहीं पड़ता है।

नवाबों एवं बादशाहों की महफ़िलों में गायिकाएँ ग़ज़लों को संगीत के सहारे अदा से पेश करती थी कि सुननेवाले मंत्रमुग्ध हो जाया करते थे। ग़ज़ल गीतिकाव्य होने से गीतिकाव्य की सारी विशेषताएँ ग़ज़लों में देखने को मिलती हैं। हिन्दी ग़ज़ल उर्दू ग़ज़ल का ही विस्तार है। इसीलिए उसका संगीत से अटूट नाता रहा है।

ग़ज़ल एक गेय काव्य होने के कारण ग़ज़ल गीत की तरह हिन्दी में अपने तरन्नुम के कारण लोकप्रिय हो चुकी है। ग़ज़ल और संगीत–दोनों आपस में इतने घुल–मिल गये हैं कि उन्हें अलग कर पाना बड़ा मुश्किल काम है। संगीत ग़ज़ल की जान है। अगर ग़ज़ल से संगीत हट जाता है, तो वह ग़ज़ल बेज़ान हो जाती है। गालिब, मीर, जिगर, शकील, बदायूँनी मजरुह सुलतानपुरी, निदा, फ़ाज़ली, बशीर बद्र की ग़ज़लों में संगीतात्मकता ही भरी पड़ी है।

आधार ग्रंथ –
1. हिन्दी ग़ज़ल के विविध आयाम सरदार मुज़ावर
२. भारतीय, काव्यशास्त्र में हिन्दी ग़ज़ल की संकल्पना दुर्गेश नन्दिनी
3. हिंदुस्तानी संगीत में ग़ज़ल गायकी डॉ. प्रेम भंडारी
4. हिंदी ग़ज़ल के प्रमुख हस्ताक्षर प्रो. मधु खराटे।

समीक्षा

समकालीन जीवन दृष्टि और सपनों की उष्मा से समृद्ध
'ज़िन्दगी आने को है'

डॉ. सारिका मुकेश
प्रो. अंग्रेजी विभाग
वीआईपी यूनिवर्सिटी वेल्लौर (तमिलनाडु),
मो.–8124163491

पंछी, नदियाँ, पवन के झोंके, कोई सरहद इन्हें न रोके... के साथ ही साहित्य, सभ्यता, कला और संस्कृति भी सदियों से एक देश से दूसरे देश का सफर निर्बाध रूप से करती रही है। हिन्दी साहित्य ने भी न जाने कितनी अन्य भाषा की विधाओं को अपने में समाविष्ट किया है। उनमें से एक महत्त्वपूर्ण और अत्यंत चर्चित विधा है–ग़ज़ल। फारसी से उर्दू के रास्ते हिन्दी साहित्य में प्रवेश कर ग़ज़ल खूब पोषित/पल्लवित और पुष्पित हुई है और आज यह हिन्दी साहित्य में अच्छी तरह से रच–बस गई है। बानगी के तौर पर आप कोई भी हिन्दी साहित्य की पत्रिका/पत्र उठा लें या सोशल मीडिया के प्लेटफॉर्म फेसबुक आदि को देख लें, ग़ज़ल अपनी उपस्थिति दर्ज कराती अवश्य मिलेगी।

यह सच है कि सोशल मीडिया द्वारा हर किसी को अभिव्यक्ति के लिए पर्याप्त स्थान मिला हुआ है और लोग दिन–रात लिखने में लगे हैं। लेखक होना अब स्टेटस सिम्बल बनता जा रहा है। इसी दौड़ में ग़ज़ल के नाम पर आज बहुत कुछ ऐसाभी लिखा जा रहा है, जो उसे संदेह के घेरे में खड़ा करता है; लेकिन दूसरी तरफ बहुत सारे लोग ऐसे भी हैं, जो शोर–शराबे से दूर कहीं एकांक में बैठे हुए गंभीरता से उत्कृष्ट सृजन में लगे हुए हैं। हिन्दी साहित्य में ग़ज़ल को यहाँ तक लाने में अनेक महत्त्वपूर्ण और बड़े–बड़े नाम शामिल हैं, उनमें एक समादृत नाम है–डॉ. विनय मिश्र। हिन्दी ग़ज़ल के लिए उनका योगदान अभिनंदनीय और स्मरणीय है। हिन्दी ग़ज़ल के वर्तमान स्वरूप और भविष्य को लेकर वह आश्वस्त दिखते हुए कहते हैं– आज ग़ज़ल अपने समय की त्रासदियों को दर्ज कर रही है। उसे पता है कि अमानवीय परिस्थितियों से लड़ने के लिए मानवीय प्रतिबद्धता से बढ़कर दूसरी कोई चीज नहीं हो सकती। हिन्दी ग़ज़ल इसी जनधर्मी और यथार्थ बोध की उपज है।

आज हम आपको डॉ. विनय मिश्र के ग़ज़ल संग्रह 'जिन्दगी आने को है' से जनाब तुराज के इस शेर के साथ रूबरू कराना चाहते हैं–''किस्सा बयाने गम का तबस्सुम में करेंगे, हम आज जिक्र तेरा तरन्नुम में करेंगे।''

मैथ्यु अर्नोल्ड ने कहा था–पोएट्री इज द क्रिटिसिज्म ऑफ लाइफ अर्थात् कविता जीवन की आलोचना है। एक प्राचीन यूनानी संगीतकार और कवि साइमनाइड्स ऑफ सिओस का मत है कि पेंटिंग इज द साइलेंट पोएट्री एंड पोएट्री पेंटिंग दैट स्पीक्स अर्थात् पेंटिंग मूक कविता है और कविता पेंटिंग जो बोलती है। लेकिन डॉ. विनय मिश्र के लिए–

''कितने अक्षर पानी में घुल जाते हैं/ जब भी हम कोई तस्वीर बनाते हैं/ जीना इक लय का विस्तार नहीं लगता/ कहता हूँ तो कितने स्वर सकुचाते हैं।'' जी हाँ गीतकार/कवि हो या शायर दोनों ही औरों के दर्द को गाने वाले होते हैं–''खंजर चले किसी पे तड़पते हैं हम अमीर/ सारे जहाँ का दर्द हमारे ज़िगर में है।'' डॉ. कुँअर बेचैन भी कहते हैं–''हादिसे चाहे जहाँ किसी भी पर भी हो/ खुद तो सो जाते हैं शायद को जगा देते हैं।'' मिश्रजी खुद कहते हैं–''जीने की पीड़ाओं में ही इतना हूँ/ मुझको सुख में जीने का अनुमान नहीं। अब वो करें भी क्या –सुख का आना कैसे याद रहे अब तो/ दुःख ही अनुभव में ज्यादातर आते हैं। वो भी इन दुःखों का छिपा नहीं पाते; क्योंकि दुःख से भरा प्याला लाख न चाहने के बावजूद भी छलक ही पड़ता है–

''लाख रोका फिर भी आँसू आ गये/ दुःख में जाने कितनी गहराई रही।'' लेकिन दुखों के इस लिबास को पहन वो मुश्किलों में भी यूँ खुश है–''आ गई है दुख छुपाने की कला जबसे उसे। अब कभी रोता नहीं है मुस्कुराता आदमी।''

रॉबटे फ्रॉस्ट ने कहा है–पोएट्री इज व्हेन इमोशन हैज फाउंड एंड द थॉट्स हैज फाउंड वर्ड्स अर्थात् कविता तब होती है, जब किसी भावना ने अपने विचार को पा लिया हो और विचार को शब्द मिल गये हों। तो विलियम वर्ड्सवर्थ कहते हैं– पोएट्री इज द स्पॉटेनियस ओवरफ्लो ऑफ पावरफुल फिलिंग्स, इट टेक्स इट्स ऑरिजिन फ्रॉम इमोशन रिकलेक्टेड इन ट्रैक्वेलिटी अर्थात् कविता शक्तिशाली भावनाओं का स्वतः स्फूर्त अतिप्रवाह है, इसकी उत्पत्ति शांति में याद की गई भावना से होती है।

विनय मिश्र का मत है कि कविता में होना एक अनवरत साधना में होना है–('ग़ज़ल ही ओढ़ता बिछाता हूँ'–दुष्यन्त)...एक समय भावचेतना और एक सचेत संघर्ष का गठजोड़ है कविता; क्योंकि वह मनुष्य के सोए हुए अंतर्बोध को जगाने की एक सनातन कला है और जहाँ तक खुद उनकी बात है, तो वो लिखते हैं–'ऐसी फ़ितरत है कि जबरन बोलता है/ मैं न बोलूँ पर मेरा मन बोलता है, उम्र जबतक धड़कनों में बज रही है/ मेरे कानों में ये जीवन बोलता है।'

इस असार संसार के खुरदरे अनुभव ही आदमी को जड़ बना देते हैं– ''कुछ टूटा भी कुछ बिखरा भी कुछ मुर्दा भी हूँ ज़िन्दा भी। इन आँखों में दुख का पानी/ इस दुख में शामिल कविता भी। कोहरे में लिपटा है कबसे/ यह मौसम थोड़ा खुलता भी।''

कवि जीवन के यथार्थ से भलीभाँति परिचित होकर लिखते हैं–''बगैर अश्कों के भी रोया बहुत हूँ/ मैं हँसता हूँ मग़र टूटा बहुत हूँ। मेरी आवाज़ तू अब तक कहाँ थी/ मैं तेरी ख़ोज में भटका बहुत हूँ।''

यही नहीं, मंदिर शिवालयों में भी उनका एक अलग अनुभव रहा–''इक शिवाले में किसी उम्मीद से/ रोज़ जाता है चढ़ाने जल कोई।' एक चिड़िया की तरह उड़ने लगी, आज मन की कामना कोमल कोई।''

इस सदी में हमने जितनी प्रगति की है, उससे अधिक भयावह बदलाव भी हुए हैं। उन्हें रेखांकित करते हुए ये अशआर देखिए–''जितनी मीठी है सियासत की जुबान/ उतना ही मीठा ज़हर दिल में रहा। मुर्दनी थी मुर्दनी है हर तरफ/ फिर भी इक ज़िन्दा शहर दिल में रहा।''

बाज़ारवाद के इस दौर में आज तो आलम यह है– ''घर को कहता था जो स्वर्ग जैसा/ जाके परदेस में बस गया है। ऐसा लालच का बाज़ार है ये/

जिसने दुनिया को केवल ठगा है।''मग़र जीवन प्यार और भाईचारे से चलता है और कवि यही सोचता है–''जो हमारे सामने का वक़्त है/ आज इसपर सोचने का वक़्त है।एक मीठी धूप की चादर बिछा/ पास तेरे बैठने का वक़्त है।''

धीरे–धीरे अपनी विरासत ख़त्म होने के कगार पर आ पहुँची है और उसके दुष्परिणामों की तस्वीर कवि को सामने दिखने लगी है, जिससे तो सबको आगाह करते हुए लिखता है–''इक नए मौसम का मंज़र देखता हूँ मैं ज़िधर भी आँख भरकर देखता हूँ।रंग जिन चीज़ों का बदला है मैं उसमें/ आदमी को सबसे ऊपर देखता हूँ।मत बताओ एलबम मुझको ख़ुशी के/ मैं इन्हीं तस्वीरों में डर देखता हूँ।एक छोटी नौकरी पर भी संकट/ मैं कभी बाहर कभी घर देखता हूँ।''

किसानों के आंदोलन को रेखांकित करती हुई उनकी वेदना इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है–

''दुनिया में जिसकी पहचान सड़क पर है/ अबके वो ही हिन्दुस्तान सड़क पर हैं जिसके कंधे पर अबतक केवल हल था/ उसके प्रश्नों का अभियान सड़क पर है/ अब लड़कर पाना है जो भी पाना है/ संघर्षों का इक प्रतिमान सड़क पर है/ एक जरूरी चिट्ठी ले आया मौसम/ पढ़कर जिसको आज किसान सड़क पर है।''

आजकल चुनौती मौसम–सा चल रहा है और जिधर भी नज़र डालिये, उधर ही–''वो रंगत आ गई बाज़ार में है/ शहर जैसे किसी त्यौहार में है।''

वर्तमान राजनीति पर मिश्रजी ने बहुत निर्ममता से कटाक्ष किया है–''हर चाहत इक कुर्सी पर आसीन लगी/ सपनों की दुनिया सबको रंगीन लगी।उनको यह देख दुख होता है– एक सपेरे ने हाथों में ये दुनिया/ आहत इच्छाओं की बजता बीन लगी ... है बिछी गहरी उदासी रेत की/ एक सूरज कितने दरिया खा गया/ कौन है जो सीढ़ियों की बात कर/ एक छत का रास्ता पकड़ा गया।''

उन्हें तो बस यह जानने की इच्छा है कि 'अँधेरों की यहाँ कब हार होगी/ यहाँ कब रौशनी साकार होगी।कहाँ जब घर बनाया तो पता था/ मेरे हिस्से में बस दीवार होगी।'

प्रजातंत्र का मंदिर कही जानेवाली संसद पर उनके ये अशआर द्रष्टव्य हैं–''बड़ा शातिर है मेरी बेबसी कुछ नहीं कहता/ कहेगा मौत पर वो ज़िन्दगी पर कुछ नहीं कहता।हमें सपने दिखाता है गई सदियों में ले जाकर/ मग़र इक्कीसवीं अपनी सदी पर कुछ नहीं कहता।''

राजनेताओं के दोहरे चरित्र को उजागर करते ये अशआर द्रष्टव्य हैं–''हमारी ज़िन्दगी है हाशिये पर/ हमारी मौत पर चर्चा बहुत है।ये धीरे–धीरे भर जाए तो जानो/ मिला है ज़ख़्म जो गहरा बहुत है। ....है नफ़रत का ही कारोबार जिनका/ वही कहते हैं दुनिया प्यार में है..झूठ जीते हैं फिर भी हैरत है/ उनको सच का गुमान रहता है... बचा है ज़िन्दगी में सच भी उतना/ उसे जितनी जगह अख़बार में है।''इसीलिए वो इन सबसे ख़ुद को अलहदा करते हुए लिखते हैं–''कैसे कह दूँ ख़ुद से है पहचान नहीं/ मैं अपनी ख़ामोशी से अनजान नहीं।अपनी नींदों से भी लड़ना पड़ता है/ सूरज का रस्ता इतना आसान नहीं।''

आज के परिवेश में वो यह देख आश्चर्यचकित है– ''सभा में चुप्पियों के सर हैं केवल/ ये किसका डर भरे दरबार में है।'' ....''आदमी आके बाज़ार में/ आजकल क्या से क्या बन गया' ....'इस ख़ामोशी में जाने क्या जादू है/ आवाज़ों के पंख कतरते जाते हैं" (दुनिया ने मुश्किलों के किया मुझको यूँ हवाले/ मुझे आसमान देकर मेरे पंख नोच डाले–गीतकार राजेन्द्र राजन) ''तेरे दिल में जो ईमान है/ झूठ की फिर वकालत न कर।''

इसीलिए वो जब यह सब याद करते हैं, तो यही महसूस होता है–''सुंदरता का पानी भी है और सुलगती भाषा भी/ जीवन के सुख–दुख में शामिल यह मेरी ख़ामोशी है।''

आशा–प्रत्याशा के बीच झूलते वर्तमान में इस जीवन का व्यथा चित्र देखिए–''फड़फड़ाते हैं पिंज़रे में उड़ते नहीं/ हॉसले इन परिन्दों के टूटे नहीं। जितना है शोरगुल जितनी चर्चाएँ हैं/ ज़िन्दगी उतनी क्यों मेरे हिस्से नहीं।''

लेकिन ...''ये आँखों में जो हल्की सी चमक है/ यही उम्मीद की कोई सड़क है... जो बादल मुझ पर बरसा है/ वह मेरी प्यास से जन्मा है, जो झिलमिल झिलमिल झिलमिल है/ वो दुख आँखों का तारा है।''

''मेरे सपनों–सा ही जो दहका लगा/ जब भी देखा गुलमोहर अच्छा लगा।'' उनका यह शेर पढ़कर दुष्यंत याद आ गये, ''जिएँ तो अपने बगीचे में गुलमोहर के तले/ मरें तो गैर की गलियों में गुलमोहर के लिए'' (दुष्यंत)। अपने विषय में वो एक जगह लिखते हैं–''मुझसे होकर इक नदी बहती रही/ ज़िन्दगी की बात ही ऐसी रही/ जागने का सिलसिला होता रहा/ रात थी औ रतजगा होता रहा...।''

नतीजन इन तमाम विसंगतियों के बावजूद एक मोसम पतझड़ों के बीच में/ मेरे सीने में हरा होता रहा।शायद यह उसी के प्रेम की कशिश है, जो जीवन से लड़ने का अदम्य साहस देती है। उसी को याद कर वो लिखते हैं–''दिल में इक आसमान रहता है/ जब तलक तेरा ध्यान रहता है/ इक परिन्दा हौंसले का जो/ ले के अपनी उड़ान में रहता है।'' हमारी यह कामना है कि यह परिन्दा स्वस्थ और प्रसन्न होकर यूँ ही ऊँची–ऊँची उड़ान भरता है।

कुल मिलाकर मिश्र जी के इस वक्तव्य से अब आप सहज ही सहमत होंगे कि हिन्दी काव्यालोचना में पसरे अँधेरे को दूर करने के लिए अब जहाँ भी ईमानदार दृष्टि होगी, वहाँ ग़ज़ल की रौशनी जरूर होगी। हिन्दी ग़ज़ल की निरंतर गतिशील यात्रा इस बात की सूचक है कि उसकी यथार्थदर्शी दृष्टि और उसकी प्रासंगिकता, प्राणवायु बनकर हिन्दी कविता को समृद्ध कर रही है..आजकल उसकी अभिव्यक्ति की मुद्रा ही नहीं बदल रही है, बल्कि उसका व्यक्तित्व भी नया आकार ले रहा है।

समय और स्थान की सीमा को ध्यान में रख विश्राम लेने से पूर्व हम यही कहेंगे कि विनय–मिश्र जी की इस संग्रह की ग़ज़लें निश्चित रूप से उनके मिज़ाज़ से रूबरू कराने में सफल होगी और यह कृति न केवल पठनीय, बल्कि संग्रहणीय सिद्ध होगी। उन्हीं की इन पंक्तियों के साथ, उनको सादर हार्दिक बधाई और शंभकामनाएँ देते हुए अब हम आपसे विदा लेते हैं–

''मन को ये मौसम बरस जाने को है
ये सुना है ज़िन्दगी आने को है
वक़्त ही ऐसा पड़ा है सामने
हौसला ही राह दिखलाने को है
मेरी भीतर की दुनिया आजकल
चाहता है पंख फैलाने को है
वो न आये याद कैसे आज फिर
आज मेरा मन उसो गाने को है।''

ग़ज़लें

ईश्वर दत्त 'अंजुम'
मोती नगर,
नई दिल्ली–15

जानेवाले कोई अनमोल निशानी दे जा
बीते लम्हों की कोई याद पुरानी दे जा
ताज़गी दिल में रहे तेरी मुलाक़ातों की
कोई पैगाम निगाहों की ज़बानी दे जा
मेरी आँखों की तपिश इससे हो कुछ कम शायद
इन सुलगती हुई आँखों को तू पानी दे जा
आख़िरी साँस तलक जिसको भुला भी न सकूँ
ना–मुकम्मल ही सही ऐसी कहानी दे जा
तेरा अहसान न भूलेगा ये तेरा 'अंजुम'
इसके ठहरे हुए अश्क़ों की रवानी दे जा।

रात ग़म की बसर नहीं होती
ऐ खुदा क्यूँ सहर नहीं होती
ज़िन्दगी को सजा के रख दिल में
ज़िन्दगी बे–हुनर नहीं होती
दिल ही रोता है आँख के बदले
आँख अब अपनी तर नहीं होती
वे भी रातें गुज़र ही जाती हैं
जिनकी कोई सहर नहीं होती
रास्ते भी भटक गये 'अंजुम'
राह भी अहसफ़र नहीं होती।

दिल में तुम्हारा नक़्श उतारा कभी–कभी
घबरा के ग़म से तुमको पुकारा कभी–कभी
तड़पा हूँ इस क़दर कि मेरा दिल भी रो दिया
देखा है आँसुओं का नज़ारा कभी–कभी
फूलों से भी मिली है मसर्रत कभी मुझे
काँटों में भी किया है गुज़ारा कभी–कभी
अपने न काम आएँ कभी जिस मक़ाम पर
ग़ैरों का भी लिया है सहारा कभी–कभी
मैं मात खानेवाला तो 'अंजुम' न था मगर
कुदरत की मार ने मुझे मारा कभी–कभी।

शब अँधेरी है रौशनी लाओ
उसके जल्वों की चाँदनी लाओ
ऐ हवाओ वो खो गया है कहीं
उसकी खुशबू ही तुम कभी लाओ
जो तरसते हैं मुस्कराने को
ऐसे होठों पे नग़्मगी लाओ
दूर माहौल की हो बे–रंगी
उनकी आँखों से दिलकशी लाओ
उसकी रहमत हो मेहरबाँ 'अंजुम'
अपनी आँखों में कुछ नमी लाओ।

बशीर अमहद 'मयूख'
विज्ञाननगर,
कोटा, राजस्थान

आया कोई ख़याल तो क्या–क्या न कर गया
पल में अनन्त–अनादि की तस्वीर देख ली
गर्दन उठा के यार का दीदार कर गया
जन्मान्तर की शृंखला अबतक अभंग है
आवागमन की सीढ़ियाँ चढ़कर उतर गया
मैं सिलसिला हयात का गन्तव्य तो नहीं
आया कोई पड़ाव तो पलभर ठहर गया
ज़र्रे में जलवा 'तूर' का देखा 'मयूख' ने
फिर बुतकदे की राह से होकर गुजर गया।

लोग पत्थर तलाशने निकले
हम तेरा उर तलाशने निकले
बंद अलमारियों के पोथों में
लोग रहबर तलाशने निकले
हम तो दानिशवरों की दुनिया में
सरफिरे सर तलाशने निकले
हम तो दो गज़ ज़मीन के भीतर
अपना बिस्तर तलाशने निकले
ये धरा तो 'मयूख– छोटी थी
लोग अम्बर तलाशने निकले

वक़्त की गर्दन पे इतनी तेज़ तलवारें न तान
क़त्ल हो जाएग 'माजी' चीखता है वर्तमान
इस तरह से मिट रहे जैसे पेड़ हों रेत पर
युग पुरुष–पैगम्बरों के पैर के पवन निशान
अब न चिनगारी इबादत की जगाती रूह में
मंदिरों में आरती हो या कि मस्जिद की अज़ान
विश्व का सर्जक–नियंता एक अकेला ब्रह्म है
उपनिषद् का सार ये ही घोषणा करता कुरान
सैकड़ों सदियों चले हैं हम सफर में एक साथ
एक साझे कारवाँ का नाम है हिन्दोस्तान।

जन्म से मरण तक जो, कर्म गोपियाँ नचाता है
नाची है सारी दुनिया, महारास वो रचाता है
आदमी ज़माने में कोई ऐसा आता है
वक़्त की शिलाओं पर नाम लिख जाता है
दूर के सितारे तो रोशनी नहीं देते
पास का अँधेरा ही रास्ता बताता है
आहटें मिली होंगी पिफर कहीं उजालों की
रात का जो सन्नाटा चौंक–चौंक जाता है
रोशनी बिखेरी है सैकड़ों 'मयूखों' ने
पीढ़ियों का अँधियारा लौट–लौट आता है।

राजेन्द्रनाथ 'रहबर'
सराय मुहल्ला
पठानकोट 145001

1

आइना सामने रक्खोगे तो याद आऊँगा
अपनी जुल्फों को सँवारोगे तो याद आऊँगा
भूल जाना मुझे आसान नहीं है इतना
जब मुझे भूलना चाहोगे तो याद आऊँगा
ध्यान जाएगा बहरहाल मिरी ही जानिब
तुम जो पूजा में भी बैठोगे तो याद आऊँगा
चाँदनी रात में, फूलों की सुहानी रुत में
जब कभी सैर को निकलोगे तो याद आऊँगा
शमा की लौ पे सरे–शाम सुलगते, जलते
किसी परवाने को देखोगे तो याद आऊँगा।

2

क्या आज उनसे अपनी मुलाक़ात हो गई
सहरा पे जैसे टूट के बरसात हो गई
वीरान बस्तियों में मिरा दिन हुआ तमाम
सुनसान जंगलों में मुझे रात हो गई
करती है यूँ भी बात मुहब्बत कभी–कभी
नज़रें मिलीं न होंठ हिले बात हो गई
हमको मिटा सकें ये अँधेरों में दम कहाँ
जब चाँदनी से अपनी मुलाक़ात हो गई
बाज़ार जाना आज सफल हो गया मिरा
मुद्दत के बाद उनसे मुलाक़ात हो गई।

3

दिल को जहान भर के मुहब्बत के ग़म मिले
कमबख़्त फिर भी सोच रहा है कि कम मिले
कुछ वक़्त ने भी साथ हमारा नहीं दिया
कुछ आपकी नज़र के सहारे भी कम मिले
बे–इख़्तियार आँखों से आँसू छलक पड़े
कल रात अपने आपसे जिस वक़्त हम मिले
खोया हुआ है आज भी पस्ती में आदमी
मिलने को इसके चाँद पे नक़्शेक़दम मिले
'रहबर' हम इस जनम में जिसे पा नहीं सके
शायद कि वो सनम हमें अगले जनम मिले।

4

क्या करे ऐतिवार अब कोई
रूठ जाए न जाने कब कोई
वो तो खुशबू का एक झोंका था
उसको लाए कहाँ से अब कोई
क्यों उसे हम इधर उधर ढूँढ़ें
दिल ही में बस रहा है जब कोई
आज दिन क़हक़हों में गुज़रा है
रो के काटेगा आज शब कोई
उससे क्या अपनी दोस्ती 'रहबर'
वो समझता है खुद को रब कोई।

1

मन में तो चाहें अनंत हैं
सपने के फैले दिगन्त हैं
बाहर कुत्ते भालू चीते
घर बैठे जो यही संत हैं
पतझर ने हर ली हरियाली
दुनिया में फिर भी वसन्त है
दिख जाता टुक सुख का मुखड़ा
साथ लगे पर दुःख अनन्त हैं
गोरे तन का काला धन्धा
ये भावी नेता उदन्त है।

2

राह में राही ने पत्थर नहीं देखा
चाह ने नदिया या समन्दर नहीं देखा
नाभि में कस्तूरी लिये भटका फिरा है
चाह के मृग ने कभी अंदर नहीं देखा
आँख रही देखती उस रूप का जलवा
माशुक़ ने पर कभी मुड़कर नहीं देखा
हाथ न छू पाए आकाश की सीमा को
आपने धरती पे उतरकर नहीं देखा
आह रहे भरते बस अपने दर्द पर
आँख उठा अपने से बाहर नहीं देखा

3

इधर उठ रहे हैं नगर धीरे–धीरे
बड़े गाँव उजड़े उधर धीरे–धीरे
इधर कारें दौड़ी नए मॉडलों की
चली बैलगाड़ी उधर धीरे–धीरे
तुम्हारे महल पहले आकाश छू ले
बनेंगे हमारे भी घर धीरे–धीरे
तुम्हें होगी जल्दी कि चोटी पै पहुँचो
चलेगा ये मेरा सफ़र धीरे–धीरे
रथों पर चढ़े तुम चलो राजपथ पर
मिलेगी मुझे भी डगर धीरे–धीरे।

4

कहनी जो तुमसे बात अकेले में
मुझसे होगी वह बात न मेले में
यह लाखों का मौसम है यौवन का
कैसे इसको तौलूँ मैं धेले में
दुनिया बाज़ार हुई सच है फिर भी
अब प्यार कहाँ बिकता है ठेले में
दीवारों के भी कान हुआ करते
होगी आँखों से बात अकेले में
बड़े–बड़े सिंहों को देख लिया है
हर पूँछ उठाकर शामिल रेले में।

सुधेश
न्यू इंडिया अपार्टमेंट रोहिणी,
सेक्टर 9, नई दिल्ली–8

मीरा हिंगोरानी
मोतीनगर
नई दिल्ली

ऐसा है या वैसा है
जैसा भी है अपना है
रहता अपने में गुमसुम
बस मन ही मन धुलता है
मुस्काए सपने में वो
सपना अभी अधूरा है
प्यार बँटा दीवारों में
हर आँगन छल पलता है
लफ़्ज़ों की पीड़ा गहरी
जुमला अभी अधूरा है।

टूटा दर्पण मेरे आँगन
बिखरन बिखरन मेरे आँगन
जड़ से इन उखड़े पौधों की
सिसकन सिसकन मेरे आँगन
सागर से लौटी हूँ रीती
तड़पन–तड़पन मेरे आँगन
गुम हूँ मैं अपनी ही धुन में
उलझन उलझन मेरे आँगन
इतनी भीग गई है 'मीरा'
फिसलन फिसलन मेरे आँगन।

आई यादें भीगा मौसम
तुझ बिन कितना फीका मौसम
मन चाहे रिश्तों का बंधन
तन्हा तन्हा बीता मौसम
झील–सी तेरी इन आँखों में
फागुन जैसा निखरा मौसम
लाया है सैलाव ग़मों का
खट्टा मीठा तीखा मौसम
खुश्क हुई जबसे मन–बगिया
झर–झर बहता रहता मौसम।

धीरे–धीरे बदल रही हूँ
तेरे साँचे में ढल रही हूँ
जबसे तेरा दामन छूटा
सबसे बचकर निकल रही हूँ
सीख गई हूँ दुनियादारी
मैं भी तेवर बदल रही हूँ
भीतर लावा उबल रहा है
रफ़्ता रफ़्ता पिघल रही हूँ
टकरा कर साहिल से 'मीरा'
टूट गई थी, सँभल रही हूँ।

हितेश कुमार शर्मा
सिविल लाईन,
बिजनौर, उ.प्र.

नैन में नीर है
अनकही पीर है
बात ही बात में
फिर चुभा तीर है
आईने में छिपी
कल की तस्वीर है
जो छुपा गर्भ में
वो ही तक़दीर है
जो घटित हो चुका
सिर्फ़ तबबीर है।

रहगुज़र बेख़बर निहारेगा
वो यूँ ही ज़िन्दगी गुज़ारेगा
जो हवाओं के रुख़ बदलता है
जब भी हारेगा खुद से हारेगा
जब कभी वो सफ़र से लौटेगा
सिर्फ़ तन्हाइयों सँवारेगा
दुश्मनों से फ़िज़ूल डरना है
गरचे मारा तो दोस्त मारेगा
तू सफ़र पर निकल पड़ा तो 'हितेश'
कौन पलकों से पथ बुहारेगा।

वक्त पर चाल चल गया यानी
ज़िन्दगी के बदल गये मानी
बोल–बतियाते सो गया कोई
सारी दुनिया बता गया पानी
दोस्ती के लिवास में अक्सर
रूह पाई गई है शैतानी
अक्ल इन्सान को सभी आई
जब भी सर से उतर गया पानी
आदमी फ़ितरती है फ़ितरत से
तौबा करता है करके नादानी।

सारी दुनिया उदास लगती है
दूर से कितनी पास लगती है
देखिए फिर से खा गई धोखा
खोए होशो–हवाश लगती है
लौट आएगी हर खुशी यानी
कितनी अच्छी ये आस लगती है
भूल कोई ज़रूर कर बैठी
वरना वो क्या बिन्दास लगती है
उसको तोहमत 'हितेश' मत देना
वह स्वयं ही निराश लगती है।

ज़हूर अहमद खां
पीली हवेली, शहीदपुरा
शिवपुरी, म.प्र.

बाँधा गया रिश्तों में ऐसा ज़मीन पर
आया नहीं था जैसे अकेला ज़मीन पर
काबा ज़मीन पर है कलीसा ज़मीन पर
लेकिन नहीं है कोई मसीहा ज़मीन पर
हमको ज़मीं ने रिज़्क दिया आसरा दिया
हमने बहाया खून का दरिया ज़मीन पर
उनको गुमान है कि फ़क़त इन्तिक़ाम से
होता है रोज़ रोज़ सवेरा ज़मीन पर
फ़िरक़ापरस्त आज भी इस जुस्तजू में हैं
उनका अलग 'जहूर' हो नक़्शा ज़मीन पर।

इश्क़ में हर तरह आज़माया गया
खाल खींची गई सर कटाया गया
उनके जुल्म–ओ–सितम भी गवारा हुए
मेरी आहों पे तूफ़ाँ उठाया गया
रेत का घर बनाने से क्या फ़ायदा
फिर भी इनसां की फ़ितरत में पाया गया
चाँद पर तो गया आदमी क्या गया
रोशनी के लिए घर जलाया गया
खूबरू–खुशनुमा थे 'जहूर' हम मगर
वो ज़माना भी आया, तो आया गया।

जो परख है ज़रूरी है रतन के लिए
उम्र इक चाहिए ऐसे फ़न के लिए
ये ज़रूरी बहुत है ज़रूरी बहुत
सोचिए चाहिए क्या वतन के लिए
क्यूँ वो हक़दार दो गज़ ज़मीं का नहीं
ख़ून जिसने दिया है वतन के लिए
आज का दौर ऐसा है के आदमी
बेच देता है ईमान धन के लिए
हर्फ़ आया अगर अज़मत–ए–हिन्द पर
जान देंगे 'जहूर' वतन के लिए।

मुस्कुराने का हक़ उसको यानी नहीं
ज़िन्दगानी का यह कोई मानी नहीं
चीख़कर भी कहा उसने मासूम हूँ
क़ातिलों ने मगर एक मानी नहीं
रास्ते साफ़ हैं सब खुदा तक मगर
आग का खेल है आग पानी नहीं
सिर्फ़ एहसास दैर–ओ–हरम पे ही क्यूँ
कौन–सी शय खुदा की निशानी नहीं
ज़िन्दगी तो दिये की तरह है 'जहूर'
लौ दिए के लिए जाबिदानी नहीं।

1.
तोड़कर संवाद सबसे भागता क्यों जा रहा है
आदमी दो पल भी देने में बहुत कतरा रहा है
दायरे अपने सुखों के इस तरह बढ़ते गये हैं
दोस्त भी ग़ैरों के जैसा ही नज़र अब आ रहा है
सो रहे हो तुम लिहाफ़ों में तो ये भी सोच लेना
शीत का मौसम कहीं चादर में कटता जा रहा है
अजनबी बन रह गयी ये ज़िन्दगी सबके लिए ही
क्या कहेगी कब किसे कोई समझ ना पा रहा है
छीन लेता जो झपटकर ज़िन्दगी सबकी वही तो
अंगरक्षक साथ भी लेकर बहुत घबरा रहा है।

2.
वे थोड़ी उम्मीद लगाए बैठे हैं
आँखों में कुछ स्वप्न सजाए बैठे हैं
वह तो दौड़ रहा है अपने पैरों से
कुछ बंदे क्यों मुँह लटकाए बैठे हैं
टूटी झुग्गी–झोंपडियाँ के मलबे पर
सहमे–सहमे वे घबराए बैठे हैं
उसने ना मिलने की ठानी लेकिन हम
सौ प्रतिशत विश्वास जगाए बैठे हैं
गैरज़रूरी इक सामान बने दादा
अपनों में वे एक पराए बैठे हैं।

3.
कहीं भी मैं चली जाऊँ तू मेरे साथ होता है
हवा में तेरी खुशबू है यही अहसास होता है
कहाँ साया भी देता साथ तम में छोड़ देता है
अँधेरे में सदा थामे तू मेरा हाथ होता है
सताता ही रहता मौसम ख़िजा आई चली आँधी
जिस कुर्बत मिली तेरी कहाँ बर्बाद होता है
किसी भी बात में मेरी हमेशा ही रहा शामिल
नसीबों से तेरे जैसा कोई हमराज़ होता है
अगर तू दूर जो होता तूझे आवाज़ भी देती
पुकारूँ क्या जो छाया से भी ज्यादा पास होता है।

4.
सबके घरों को जोड़ने में बीतती जिसकी उमर
वो कर रहा टूटे घरों में ज़िन्दगी अपनी बसर
इस वक़्त के आगे सभी ही सिर झुकाए हैं खड़े
बेकार सुख–साधन हुए खबरों पे है सबकी नज़र
ऐसा नहीं कुछ जो न बदले ज़िन्दगी रुकती नहीं
मुड़के नहीं है देखना जीवन समंदर की लहर
जिसके उगाए अन्न से है पल रहा सारा जहाँ
उसपर ही आख़िर भूख क्यों ढाती ही रहती है कहर
तस्वीर बन लटका हुआ मन में हमारा गाँव है
अब हैं न बूढ़े पेड़, न पोखर, नहीं वैसी डगर।

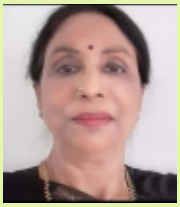

अंजना वर्मा
भोगनहल्ली बेंगलुरू
मो. 9572991995

5.
उसे रोक लेना बहुत है ज़रूरी
कभी सच भी कहना बहुत है ज़रूरी
बचा ही नहीं प्यार सच्चा ज़मीं पर
अगर है परखना बहुत है ज़रूरी
सताते रहे ईश की सर्जना को
उसे अब मनाना बहुत है ज़रूरी
रहे देखते जो सदा दूसरों को
तो शीशा दिखाना बहुत है ज़रूरी
अँधेरों में डूबी हुई सूरते हैं
दीया एक जलाना बहुत है ज़रूरी।

शशि आनंद 'अलबेला'
ग्राम+पो.–पड़िया,
बरियारपुर, मुंगेर
मो.–7463858017

1.
रौनकें हर–सू रहे,हर–सू फिज़ा गुलफाम हो
वक्त के हाथों समा के नाम ये पैगाम हो
कालिखें धुलती रहे, काली घनेरी रात की
धूप की चादर में लिपटी हर सुबह हर शाम हो
ज़िन्दगी का फ़लसफ़ा है ज़िन्दगी का मान हो
ऊँचे महलों की इबादत, झोंपड़ी के नाम हो
इल्म के हाथों से नकली सज गई हैं बस्तियाँ
झूठ की दीवार का कोई नया आयाम हो
बात ऊँची बोलकर जो झूठ ही बोता रहे
आईना उनको दिखाना, चाहे जो इल्ज़ाम हो।

2
ये फितरत है नहीं अच्छी कि यूँ मगरूर हो जाना
किसी के दिल में रहना औ किसी से दूर हो जाना
इबादत पर भरोसा हो खुदा की रहमतें जानो
बुरा तो है बहुत ये हौसले का चूर हो जाना
समाँ भी आप हैं धरती, धरा आकाश भी हैं खुद
मगर अच्छा नहीं, खुद मुँह मियाँ मशहूर हो जाना
कई किस्से सुने हैं आपके, काबिल अदाओं की
भयावह है के झूठे हर्फ़ का दस्तूर हो जाना
ये चेहरा इस क़दर से अब नया गढ़ने लगे हैं वो
जरूरी है बहुत, बेबस नजर का नूर हो जाना।

3
कोई टूटे हुए तारों से अक्सर बात करता है
वो खुद पर देखिए खुद ही सदा आघात करता है
जमाने भर की आहों को निगाहों में समेटा है
गजब का है हुनर उसका वो यूँ ही रात करता है
नदी के चाँद को सपनों के तारों से सजाकर वह
ख्यालों के मुहानों पर खड़ी बारात करता है
कभी ताली बजाता है, कभी वह गुनगुनाता है
कभी तो अनवरत, नैनों से यूँ बरसात करता है
तमन्ना की हिलोरों में अजी उम्मीद को पाले
वो हरपल बेखुदी जैसी, अज़ब हालात करता है।

4
झिलमिलाती रौशनी में ज़िन्दगी खो जाएगी
गाँव की सौंधी महक संज़ीदगी खो जाएगी
जब चले थे गाँव से अरमान की गठरी लिए
क्या खबर थी इस नगर में बंदगी खो जाएगी
खेल–सर्कस औ तमाशा देखकर हैरान हूँ
था नहीं यह ज्ञात, मेरी सादगी खो जाएगी
क्रूर इतनी हो गई है ये सियासत दोस्तो
इसके पेचोख़म में अब तो नगमगी खो जाएगी
है कहाँ वैसी हवाएँ, गाँव हो या शहर में
रफ़्ता–रफ़्ता देखना आवारगी खो जाएगी
धूप में निकले हैं तो आगे भी चलकर देखिए
क्या पता किस मोड़ पर लाचारगी खो जाएगी
पड़ रही कितनी दरारें आज रिश्तों में यहाँ
प्यार की चादर में लिपटी दिल्लगी खो जाएगी।

हरेराम समीप
फरीदाबाद–121006
मो.–9871691313

या खुदा! अब देख भी ले प्यार से
थक गए तेरी मुसलसल मार से
और क्या बलिदान तुझको चाहिए
क्या चले जाएँ तेरे संसार से
जाने क्यों वह आजकल ख़ामोश है
जग हिला देता था जो हुंकार से
यातना की आग से जो तप्त है
बच के रहना ऐसे नंगे तार से
जरा विस्तार से परिचय कराओ
तुम्हें भूले ज़माना हो गया है
मैं जाने की इजाज़त चाहता हूँ
यहाँ का काम पूरा हो गया है।

2.
कौन बतलाए हमें वो अच्छे दिन कब आएँगे
ख़्वाब के पंछी कभी क्या घोंसले पा जाएँगे
खुद सड़क पर यूँ चलो कि तुमपे छींटे ना पड़े
कार में तो लोग फर्राटे से जाते जाएँगे
मत पड़ोसी से कहें कम कीजिये डीजे का शोर
बंद कर लें कान खुद की वर्ना फिर पिट जाएँगे
झूठ के गोदाम पर गोदाम बनते हों जहाँ
तो वहाँ का माल चूहे और दीमक खाएँगे
आजकल मिलती नहीं है रोटियाँ और काम तब
ये हमारे नौजवाँ सल्फास ही तो खाएँगे
क्या हुआ जो आईना सद्भाव का धुंधला गया
जाएँगे बाजार कल वे दूसरा ले आएँगे
जिनके हाथों में मशालें होनी थीं वे हैं उदास
उम्र भर वो किस तरह चुपचाप यूँ रह पाएँगे।

3.
अपने हालात से सौ बार वो हारा होगा
मौत की इलाज में तब खुद को उतारा होगा
अजनबी शहर यहाँ कौन हमारा होगा
एक हमनाम ही को उसने पुकारा होगा
मौत सीने से लगा खुद से बगावत करके
दिल के जख़्मों का भी कर्ज़ उसने उतारा होगा
ज़िन्दगी रोती रहे और हवस हँसती रहे
ऐसे माहौल में अब कैसे गुज़ारा होगा
दस्तकें दे रहा है कोई बहुत शिद्दत से
खोलो दरवाज़ा वहाँ कोई हमारा होगा
तेरी खुदगर्ज़ी ने विकलांग कर दिया तुझको
किस तरह तू कभी औरों का सहारा होगा
हौसले की अभी पतवार चलाते रहना
गम के सागर का कहीं दूर किनारा होगा।

4.
दर्द के खाते मिलेंगे अश्क भी पीते मिलेंगे
लोग बदहाली में अनगिन आजकल जीते मिलेंगे
ये नये जंगल हैं इसमें तुम जरा चौकस रहो ना
अब हिरन के भेष में तुमको कई चीते मिलेंगे
लपलपाती लू के मंसूबे जरा पहचान लेना
प्यार के सागर नहीं तो फिर तुम्हें रीते मिलेंगे
दिल की चादर को मुहब्बत की सुई से तुम सिलो अब
दूसरे वरना इसे तलवार से सीते मिलेंगे
गर जो अपने आपको अब और निर्वासन मिला तो
शहर के सारे मुहल्ले कैम्प में जीते मिलेंगे
आत्महत्याओं की ख़बरों से भरा है गाँव अपना
अन्नदाता क्या हमारे ज़हर ही पीते मिलेंगे
ऐ 'समीप' अब जिस तरह भी हो सके तुम साथ रहना
गर्दिशे हालात आगे फिर गए–बीते मिलेंगे।

वसन्त
अग्रवाल निकेतन,
मुरलीगंज, मधेपुरा (बिहार)

स्वर्ण–सेज पर ओढ़ हमारे ग़म की चादर क्या करता
निकल गया जो हाथों से उस तोते के पर क्या करता
एक इलाका चन्द रोज में सर्कस में तब्दील हुआ
राजा इतने बड़े मुल्क का होकर जोकर क्या करता
उसकी चाहत उसकी वहशत खून भरा उसका नेज़ा
क़त्ल कई करने थे तो वह दामन धोकर क्या करता
वापस किए मुझे ख़त मेरे और रेशमी वह अलबम
नए सफ़र में तू विस्फोटक बोझा ढोकर क्या करता
छोटा–सा आकाश न कम था चाँद–सितारे रोशन थे
क्या जाने वह अहमक लेकर सारा अम्बर क्या करता।

डूबकर आकंठ जल में कहीं भीगा न था
यह अचम्भा उम्र भर हमने कभी देखा न था
उसने अर्से से कभी देखा नहीं था आईना
इसलिए वाक़िफ़ वो अपने आप से गोया न था
यह हमारी मित्रता का आख़िरी परिणाम था
एक दूजे से किसी को और कुछ कहना न था
मति भ्रमित था एक राजा महाभारत के समय
आँख का अंधा मगर वह कान का बहरा न था
एक ही रंगत के जो सारे खिलौने ढल गए
क्या तुम्हारे पास कोई दूसरा साँचा न था।

चाह थी जल–स्रोत की अंधे कुओं तक आ गए
हम भटककर घोर मरूथल टापुओं तक आ गए
जंगलों से तो चले थे सभ्यता की खोज में
रहबरो हम फिर कहाँ इन भेड़ियों तक आ गए
आदमी के वास्ते घातक ये हैं पहचान लो
आस्तीनों से निकल अब बाजुओं तक आ गए
लौटकर कुछ लोग यह सौग़ात लाए शहर से
आपकी तहज़ीब के छल बस्तियों तक आ गए।

कृपाशंकर 'अचूक'
विजयनगर, ए. करतारपुरा,
जयपुर (राजस्थान)

मैं वक़्त के माथे पे शिकन देख रहा हूँ
उजड़ा हुआ सा अपना चमन देख रहा हूँ
भड़की है आग आजकल क्यों मेरे शहर में
जिस ओर नज़र डालूँ क़फ़न देख रहा हूँ
इस मुल्क़ से ग़ायब है अमन चैन की खुशबू
बदला हुआ लोगों का चलन देख रहा हूँ
सीलन भरे कमरे हैं, हवेली औ खिड़कियाँ
बे–ख़ौफ होके बैठी घुटन देख रहा हूँ
कहता 'अचूक' आज बुलन्दी की बात जो
आँखों में फ़क़त उसकी सपन देख रहा हूँ।

यूँ तो तुम्हारा नाम, लिया है कभी–कभी
हाठों के पास जाम, किया है कभी–कभी
नज़रों में मैंने जिसको सजाया है रात–दिन
अपनों ने ही बदनाम, किया है कभी–कभी
कश्ती जो मेरे साथ थी, जब–जब जुदा हुई
तूफ़ाँ ने गिरते थाम, लिया है कभी–कभी
पीने की बात आजकल हर शख़्स कर रहा
विष को भी सबहो–शाम पिया है कभी–कभी
सुख–चैन अब 'अचूक' नहीं इस जहान में
ग़ज़लों मं कुछ आराम दिया है कभी–कभी

रगों में अपनी लहू को उबाल कर देखो
अगर है देखना खुद को सँभाल कर देखो
वो कबसे सच के सहारे पे जा रहा चलता
उसी के नक्शे क़दम खुद को ढाल कर देखो
क़रीब अपने जो होते हैं दूर हो जाते
समय की चाल को समझो न टालकर देखो
ये कोई खेल नहीं ज़िन्दगी के जीने का
लगी है शर्त तो सिक्का उछाल कर देखो
जो भी अंजाम हो 'अचूक' देखा जाएगा
वफ़ा का रास्ता कोई निकालकर देखो।

आप जब तो ज़रा मुस्करा दीजिए
ज़िन्दगी के चमन को हरा कीजिए
अपनी आदत से हम बाज कब आएँगे
इस तरह आज कुछ मशवरा कीजिए
जख़्म दिल में तुम्हारे बिना है कई
पास आकर इन्हें तुम भरा कीजिए
देख दर्पण में खुद वो खुदा हो रहे
इस तरह खुद पे खुद मत मरा कीजिए
वक़्त का यह तक़ाज़ा चुकाना पड़े
एक दूजे की ख़ातिर दुआ कीजिए।

कालजयी 'घनश्याम'
नई दिल्ली

शक्की मिज़ाज के हैं सब कच्चे कान वाले
शुभ बोलते नहीं हैं काली जुबान वाले
ताज़िर हैं नफ़रतों के तीखी जुबान वाले
अपने कहाँ हैं लेकिन ये आन–बान वाले
बेआशियाना हैं जो बेसुध बिलख रहे हैं
खुश हैं मगर बहुत ही कुछ सायबान वाले
लाइन पढ़े लिखों की है ब्रह्म ज्ञान ख़ातिर
ज्ञानी को ज्ञान देते हैं अर्थ ज्ञान वाले
हो कंस या कि रावण सबका ही वध हुआ है
हमने है देखा मिटते जो थे गुमान वाले
पकवान बेचते हैं फ़ीके सँवार के सब
तिकड़म है उनकी जो हैं ऊँची दुकान वाले
'घनश्याम' अब उड़ो मत मग़रूर हो के इतना
ख़तरे में रहते हरदम ऊँची उड़ान वाले।
(ताज़ीर = व्यवसायी)

चांद मुगेरी
बोकारो स्टील सिटी, बोकारो झारखंड
मो. 9204093040

1
दर्द का पुतला बना इंसान है
है अभी ज़िन्दा, यही पहचान है
मुश्किलें हैं लाख सीने में दफ़न
फिर भी होंठों पे खिली मुस्कान है
जंगलों की सनसनाहट कह रही
अब फिज़ा बदलेगी यह इमकान है
आ गिरे हम पर सितारे टूटकर
दुश्मनों का इक, यही अरमान है
आदमी ने उड़ दिखाया अर्श तक
लख, परिन्दा भी बहुत हैरान हैं
दोष मज़हब का मुसलसल दें रहे
यह सियासत इसके बिना बेज़ान है
'चांद' अपने दर्द से घबरा न तू
हर खुशी का दर्द ही उन्वान है।

2
वक्त है तुम उछलते रहो
ज़हर ऐसे उगलते रहो
इस ज़मीं पर, बरस भूलकर
बादलों में टहलते रहो
तुम दिखा के सलोना सपन
आदमी को यूँ छलते रहो
बारहा हक़ ही बोलूँगा मैं
जीभ मेरी कुचलते रहो
अब झुकाने को ये आसमां
बांध, मुट्ठी मचलते रहो
मत गुलामी समझ ज़िन्दगी
काट बन्धन, निकलते रहो।

3
क्या बताऊँ ज़माने की मैं बानगी
बढ़ रही है मुसलसल यहाँ तीरगी
जो लुटाने मुहब्बत, हुई थी रवां
रास्ते में, कहीं खो गई, वो नदी
बात मन की कभी क्या मुकम्मल हुई
बीच में आ गई यह 'सदा' अब नहीं
नाग जंगल में जाकर तलाशो नहीं
देख लो जाके कुर्सी कभी, बज़्म की
फेंक 'मुस्कान' वादा गिनाते रहे
लोग करते रहें हारकर खुदकुशी
'चांद' की बात माना, ज़रा तल्ख़ है
पर दिलों को लुभाती तो है चांदनी।

4
दूर हों घर के मसअले कैसे
और टूटे ये सिलसिले कैसे
चल रहे थे ले हाथ हाथों में
आ गए हममें फ़ासले कैसे
याद जो तेरी, इक अमानत है
बेच दूँ मैं ये हाफ़िज़े कैसे
खुशमिजाज़ी से थे सफर में हम
रुक गए अपने काफ़िले कैसे
जबकि जंगल में गुम हुई ग़ज़लें
'चांद' पाओगे तब्सिरे कैसे।

अशोक मिज़ाज 'बद्र'
सागर (मध्यप्रदेश)

1
तुम्हारे पास तो राशन है उम्र भर के लिए
हमारे पास है मुश्किल से इस पहर के लिए
सवेरा होते ही चल देंगे फिर सफ़र के लिए
हम अपने घर में हैं मेहमान रात भर के लिए
ये सब्ज़बाग किसी और को दिखाएँ हुजूर
हमारे हाथ हैं काफी गुज़र बसर के लिए
किसी से माँग के बीड़ी भी हम नहीं पीते
बचा के रखते हैं इतनी अना तो सर के लिए
कोई न आया अभी तक मिजाज़ पूछने को
ख़बर नवीस तो आते रहे ख़बर के लिए
कोई तो बात यक़ीनन है इसकी वादी में
हजारों मरते हैं घाटी में गुलमुहर के लिए।

2 'कचहरी की दुपहरी'
नींद क़ानून के रखवालों की गहरी देखी
दोपहर बाद तो मुंसिफ़ ने कचहरी देखी
आज भी सामने आता है गुलामी का असर
कोट पहने हुए गर्मी की दुपहरी देखी
जितने मुज़रिम थे सभी मस्त थे क़द्दावर थे
देह सच्चाई की गाँधी सी इकहरी देखी
सबको आता नहीं कानून से लड़ने का हुनर
आस मजबूर की इंसाफ़ पे ठहरी देखी
जाने किस बात पे दोनों में हुआ था झगड़ा
पेड़ से गिरती हुई एक गिलहरी देखी
लौट के आया कचहरी से तो महसूस हुआ
मुद्दतों बाद कोई शाम सुनहरी देखी
अब तो मैं सबसे यही पूछता रहता हूँ मिजाज़
क्या कभी तुम ने कचहरी की दुपहरी देखी?

3
न गालिब है न कोई मीर है ये
गुज़रते वक्त की तहरीर है ये
किसी एक्शन थ्रिलर मूवी की तरहा
इसे भी देखिए कश्मीर है ये
इसे तुम इतनी हैरत से न देखो
हमारे मुल्क़ की तस्वीर है ये।
सियासत ने इसे उलझा रखा है
खुद अपने पाँव की जंज़ीर है ये
सभी पहचानते हैं तू है क़ातिल
तेरे तरकश से निकला तीर है ये
लगा था जिनकी आँखों पे वो चश्मा
उन्हीं के ख़्वाब की ताबीर है ये
विरासत में मिली है ये जो हमको
बुजुर्गों की वही ज़ागीर है ये
इबारत अब जो लिखी जा रही है
वो अगले वक्त की तक़दीर है ये
खुद अपने दिल में ही चुभने लगी है
क़लम है या कोई शमशीर है ये
हमारे दर्द से है किसको मतलब,
सुनें वो क्यूँ पराई पीर है ये।

4. हैप्पी सीनियर सिटिजन डे
कभी तन्हाई के पन्ने पलटकर देख लेता हूँ
फिर उसके बाद मैं ताजा कलेंडर देख लेता हूँ
बुढ़ापा आ गया फिर भी नज़र अब भी है पहले सी
कि मैं बारीक से बारीक अक्षर देख लेता हूँ
वही गालियाँ कि जिन गलियों में गुज़रा था मेरा बचपन
वहाँ से जब गुज़रता हूँ, ठहरकर देख लेता हूँ
टहलने के लिए अब मैं निकलकर जा नहीं सकता
यहीं से झाँककर खिड़की से बाहर देख लेता हूँ
मैं आखें मूंदकर दिल में उतर जाता हूँ चुपके से
मैं जब चाहूँ मोहब्बत का समन्दर देख लेता हूँ
खुदा का शुक्र है मेरी मोहब्बत अब भी क़ायम है
मैं अपने आईने को मुस्कुरा कर देख लेता हूँ।

डॉ. राजेंद्र प्रसाद मोदी
सुलतानगंज, जिला– भागलपुर (बिहार)
मो0–9931241558

1
फिर भगीरथ को यहाँ मैं अब बुलाना चाहता हूँ
है जहाँ सहरा वहाँ गंगा बहाना चाहता हूँ
पास कितनी है हिमाक़त आज़माना चाहता हूँ
दुश्मनों को सीख देकर फिर बताना चाहता हूँ
जानता हूँ आँधियों की ख़्वाहिशें अच्छी नहीं हैं
है जहाँ काबिज़ तिमिर दीपक जलाना चाहता हूँ
ढो रहा है ज़िंदगी को एक कायर की तरह जो
उसकी कुंठित चेतना को ही जगाना चाहता हूँ
हो गया है दूर कितना आदमी से आदमी अब
फिर मुहब्बत से सभी को पास लाना चाहता हूँ
जिसके रुख पर है शिकन और ज़िंदगी वीरान है
उसके जीवन में ख़ुशी का गुल खिलाना चाहता हूँ
जुल्म पर ख़ामोश बेकस की ज़ुबाँ जो बन गई है
है वही मेरी ग़ज़ल जिसको सुनाना चाहता हूँ।

2
आज पतझड़ देखकर विश्वास अब होने लगा
आ रहा मधुमास है अहसास अब होने लगा
कल तलक जो ज़िंदगी आती थी वीराना नजर
आज खिलते गुल का उसमें वास अब होने लगा
चूसते हैं खून जो इंसान का हैवान बन
अन्त उनका आ गया आभास अब होने लगा
ढो रहे हैं ज़िन्दगी का बोझ जो रोते हुए
कायरों का तो बहुत उपहास अब होने लगा
मुफ़लिसों को हक दिलाने अब नहीं लड़ता कोई
क्रांति का बढ़ता कदम इतिहास अब होने लगा
हर मुसीबत में कभी 'मोदी' न खोता हौसला
पास ही मंजिल रही अहसास अब होने लगा

3
बेगुनाहों पर सितमगर जुल्म ढाना है बुरा
जुल्म सहकर जालिमों को सर चढ़ाना है बुरा
हो गई है शोषितों की जिंदगी वीरान–सी
शोषकों का ऐश का जीवन बिताना है बुरा
चीथड़े भी जब मय्यसर अब गरीबों को नहीं
बादशाही वेश में खुद को सजाना है बुरा
जो बहुत ही तिकड़में करके बड़े पद पा गए
भ्रष्ट होकर देश को यूँ लूट खाना है बुरा
जब करोड़ों लोग बेघर हैं हमारे देश में
महफिलें फिर शीशमहलों में सजाना है बुरा
जो वफा की राह में गिरकर सँभलते हैं सदा
उन जनों की राह में काँटे बिछाना है बुरा
रंग गिरगिट की तरह नेता बदलते आजकल
उनसे 'मोदी' अब तो उम्मीदें लगाना है बुरा।
ये न समझें मुफ़लिसों की ज़िंदगी ख़तरे में है
अब तो भ्रष्टाचारियों से देश भी ख़तरे में है
जो इबादतग़ाह में जाते इबादत के लिए
नेक़नीयत जब नहीं तो बन्दगी ख़तरे में है
ख़ुद को क़ाबिल मान लेने की अदा अच्छी नहीं
तुम नहीं उतरे ख़रे तो शान भी ख़तरे में है
होश में आओ ज़वानो! जुल्म को अब दो मिटा
वरना अगली ही नहीं ये भी सदी ख़तरे में है
बेवफ़ाई की डगर 'मोदी' कभी चलना नहीं
चल दिए जो भूल से तो आशिकी ख़तरे में है।

कैलाश पचोरी
शारदा भवन, बैरसिया
भोपाल (म.प्र.) 463106

1
चंद किश्तों में बँट गई गोया
उम्र आँखों में कट गई गोया
हाशिये पर लिखे गये ऐसे
सदी हिस्सों में छँट गई गोया
वक़्त के शिकंजे कसते ही गए
ज़ीस्त फाँसी पे चढ़ गई गोया
थकान आँच में पकी ऐसे
चिनगी चिनगी चटक गई गोया
आप और आपका ये शीश महल
रूह प्यासी निकल गई गोया।

2
अंधेरे का परकटे शायद
ये घना कुहरा छटे शायद
आप चाकू से तने बैठे
आपका रुतबा घटे शायद
भूख आँतों में उतर आई
रात आँखों में कटे शायद
हादसे के पार हैं चीख़ें
हादसा दम घोट दे शायद
कबूतर ने फड़फड़ाए पर
ये कबूतर अब उड़े शायद

3
सुर्ख आँखों में रत जग होंगे
फिर साज़िशों मे पर उगे होंगे
जिस्म को भूख का तोहफ़ा देकर
वो पशेमान तो हुए होंगे
रेत के ढीह पे ये शीश महल
आख़िरी वक़्त पर गिरे होंगे
भूख और मुफ़लिसी तौबा–तौबा
कुछ दरिन्दे वहाँ रहे होंगे
चाँद और जिस्म ये तन्हाई का
चंद यादों के तर्जुमे होंगे।

4
तुम आए शुक्ल पक्ष आ गया
गीत गोविन्द कोई गा गया
कोमल गाँधार हुए रिक्त क्षण
भीतर जाने क्या कुलबुला गया
रितुओं का जादूगर चुपके से
रंगों के कलश ढुलका गया
कंगन सा खनकता पलास बन गया
आदिम आग कोई सुलगा गया
इत्रफ़रोश हो गया मौसम
संयम की नदी पिघला गया।

परवीन कुमार 'अश्क'
टी-4/161, शाहपुरकांडी,
टी/शिप नियर पठानकोट
(पंजाब) 145029,
मोबाइल - 09814814052

(1)
वो पेशरी है मगर रास्ता नहीं देता
बुज़ुर्ग हो के भी देखो दुआ नहीं देता
मुझे ये कैसा समुन्दर सदाएँ देता है
जो मुझको डूबने का हौसला नहीं देता
किसी किसी को थमाता है चाबियाँ घर की
ख़ुदा हर एक को अपना पता नहीं देता
जदीद कपड़े उसे क्या जवानियाँ देंगे
जो बूढ़ी सोच को चेहरा नया नहीं देता
दिखाई देगा हमें कैसे 'अश्क' ईद का चाँद
हमारी आँखों को जब तक बुझा नहीं देता।

(2)
सफ़र में मुझसे वो लड़ता रहा था
बिछड़ते वक़्त फिर क्यों रो पड़ा था
समुन्दर चीखता उस वक़्त पहुँचा
मकाँ पूरी तरह जब जल चुका था
वो मेरे घर में आकर छुप गई थी
मैं जिस लड़की का पीछा कर रहा था
न पकड़ी काफ़िले की जिसने उँगली
वो बच्चा सबसे आगे चल रहा था
हवा आरी चलाती जा रही थी
शजर से 'अश्क' मैं लिपटा हुआ था।

(3)
कुछ दुआ का ख़याल रखा करो
दिल की मस्ज़िद उज़ाल रखा करो
ख़ुश लिबासों की सोहबतों में मियाँ
अपनी चादर सँभाल रखा करो
कितने भारी हैं बस्ते बच्चों के
इन में कुछ फूल डाल रखा करो
या ग़ज़ल मत उतारो काग़ज़ पर
या कलेजा निकाल रखा करो
'अश्क' दिल के उदास जंगल में
इश्क़ के मोर पाल रखा करो।

(4)
मौसम सूखे पेड़ गिराने वाला था
किसी किसी में फूल भी आने वाला था
पार के मंज़र ने मौक़े पर आँखें दीं
मैं अन्धा दीवार उठाने वाला था
तुमने क्यों बारूद बिछा दी धरती पर
मैं तो दुआ का शहर बसाने वाला था
उसने भी आँखों में आँसू रोक लिए
मैं भी अपने ज़ख़्म छुपाने वाला था
बच्चे 'अश्क' को पागल कहकर भाग गए
वो परियों की कथा सुनाने वाला था।

1
लिखी ख़ूँ–पसीने की इसमें कहानी
नहीं है मेरी शायरी आसमानी
यहाँ आँसुओं में व्यथा बह रही है
क़लम कह रही फावड़ों की ज़बानी
नहीं हुस्न की है रुदादे–ग़ज़ल अब
नहीं कोई राजा, नहीं कोई रानी
लिये डिग्रियाँ हाथ ख़ाली बहुत–से
हताशा में दम तोड़ती ज़िन्दगानी
शहर–गाँव हर ओर फैले लुटेरे
दिनों दिन रही पीर होती सयानी
नहीं आचरण में सदाचार दिखता
हैं बस गीत–संगीत संतों की बानी
जुटाते हैं दिन–रात क्योंकर वे दौलत
बताते हैं जो सारी दुनिया है फ़ानी
किसी दिन बगावत पे उतरेंगे सपने
बहुत दिन नहीं चुप रहेगी जवानी।

2.
खुद्दारी के दीवाने जा बैठे हैं बाज़ारों में
अग्नि ऋचा लिखनेवाले नतमस्तक हैं दरबारों में
नाम लिखे हैं अब भी जिनके थानों की दीवारों पर
बड़ी–बड़ी तस्वीरें उनकी छपती हैं अखबारों में
राजा जी के हर भाषण में जगमग चाँद–सितारे हैं,
प्रगति कर रहा देश हमारा, विज्ञापन में, नारों में
पुलिस प्रशासन, कोर्ट कचहरी, सब उनके ही चाकर हैं,
जिनका बहुत बड़ा ओहदा था, चम्बल के सरदारों में
सच का छूटा साथ, अर्थ धुँधलाये सारे शब्दों के
चौथे पाये के रखवाले, बिके चंद उपहारों में।

प्रो. वशिष्ठ अनूप द्विवेदी
राजेन्द्र अपार्टमेंट,
रोहितनगर (नरिया) वाराणसी
मो 941589581

3
यहाँ–वहाँ से, कहाँ–कहाँ से तिनके लाती है
कई दिनों से एक बया घोंसला बनाती है
उसके मन की पीड़ाओं को कौन समझता है
दुनिया कहती कोयल कितना मीठा गाती है
चपुके–चपुके माँ, बेटी के भीतर उतर गई
माँ जैसा ही, बेटी को, बेटी समझाती है
बचपन के दिन, धीरे–धीरे पीछेछूट रहे
वह खुद से बातें करती, खुद से शरमाती है
पेट अधम है, चाहे जैसे करम करा ले यह
वर्ना ज़िल्लत की रोटी कब किसको भाती है
उसे पता है, वह अपनी पहचान गँवा देगी
फिर भी नदियाँ सागर से क्यों मिलनेजाती है!

4
तुलसी से मुझे प्यार है और इश्क मीर से
कायम है सदा से मेरा रिश्ता कबीर से
प्रति पक्ष में हरदम हुई अन्याय के खड़ी
वाबस्तगी क़लम की हमेशा है पीर से
मुझको कभी लुभा नहीं पाई बुलंदियाँ
शुरुआत मैं करता हूँ हमेशा अखीर से
रोये हैं फूट–फूटकर धरती व आसमाँ
मारा गया है जब कोई निर्दोष तीर से
बढ़ती है ख़ुशी बाँटने से और ज़ियादा
ये बात सुनी थी कि सी पहुँचे फ़क़ीर से
संन्यासियों की बात तो मुझको नहीं पता
मैं प्यार को अलगा नहीं पाया शरीर से।

शुचि 'भवि',
स्मृति नगर, भिलाई नगर
मो.–9826803394

1
याद हमको वो जब भी आते हैं
ख़ुश्क आँसू भी भीग जाते हैं
कोई उनसे ज़रा सा ये पूछे
कौन सा रिश्ता वो निभाते हैं
है तमन्ना भी हमसे मिलने की
और हमसे ही दूर जाते हैं
अश्क़ कहने लगे मेरे मुझसे
कितना तुझको सजन रुलाते हैं
ख़ुश्क मौसम है और भीगे हम
वो ये बारिश कहाँ से लाते हैं
मिलना जिनसे हुआ है नाममुकिन
क्यों वो ख़्वाबों में 'भवि' के आते हैं।

2
आप अपने रंग का चोला हमें पहना गये
आप ही बस आप मन के बादलों पे छा गये
दिल में पसरा था अँधेरा ज़िंदगी की रात थी
आप अपने इश्क़ की अब रौशनी फैला गये
बात भी करने की उनको अब नहीं फ़ुरसत कोई
उनकी फ़ुरसत, लेके रिश्वत, क्या ये लम्हे खा गये
टूटने से फूल के टूटी बहुत थी डाल भी
ये ग़नीमत है कि भँवरे उसका जी बहला गये
सौंधी मिट्टी की वही ख़ुशबू है महकी आज फिर
मुद्दतों के बाद लो 'भवि' आज आँसू आ गये।

3
हम कहीं जाएँ तेरी सच में कमी रहती है
तू रहे साथ तभी तक ही ख़ुशी रहती है
गफ़्तगू क्या ही करे तुझ से भला कोई अब
दिल के आईने पे तो गर्द जमी रहती है
जिसने खुद से न कभी प्यार जताया मुझसे
उसकी उल्फ़त मेरे इस दिल में दबी रहती है
सर्द मौसम में हवा ख़ुश्क ये कहती ही रही
किसकी उम्मीद तुझे अब यूँ बनी रहती है
बह गया आँख का काजल भी थकी आँखों से
झठे वादों से तेरे 'भवि' तो बँधी रहती है

4
आईना लगता है चेहरा तेरा ये झूठ कहा
दिल में तेरे बना अक्स है मेरा ये झूठ कहा
सोचकर कब हुआ है इश्क़ जरा ये तो कहो
प्यार का मिलता हो हरसू घेरा ये झूठ कहा
रात औ दिन सपने देखे किसी ने तरे
जान कर उनपे पानी है फेरा ये झूठ कहा
अब नहीं लौटना दोबारा उन्हीं गलियों में
छोड़ सकते हैं तेरा हम डेरा ये झूठ कहा
बात थम सकती है साँसें कैसे थामेगी 'भवि'
साँस पर मेरी है हक़ अब तेरा ये झूठ कहा।

श्लेष चन्द्राकर,
खैराबाड़ा, गड्डुरु पारा,
मुकाम व पोस्ट– महासुमुन्द (छत्तीसगढ़)
मो. 9926744445

1
वजूद उसका बिखरने के लिए था
शजर पे बर्ग झरने के लिए था
नशा था जो बिखरने के लिए था
मुझे बर्बाद करने के लिए था
तेरा जीवन निखरने के लिए था
खुशी के रंग भरने के लिए था
नदारद हो गया आँखों से फिर क्यों
अगर सपना सँवरने के लिए था
समझ पाए न हम तो तेरी नीयत
तेरा वादा मुकरने के लिए था
उसे मनमानियाँ करनी थीं अपनी
कहाँ बंदा सधुरने के लिए था
नहीं वो चाहता था अर्श छू लूँ
परों को जो कतरने के लिए था

2
अकेला होता हूँ तो सारे मंतर भूल जाता हूँ
अगर हो साथ मेरे कोई तो डर भूल जाता हूँ
मुझे बाज़ार में लगती हैं जब भी सब्जियाँ महँगी
तो घर लाने को मैं धनिया टमाटर भूल जाता हूँ
सियासी रंग मुझ पे भी है शायद अब लगा चढ़ने
तभी तो मैं भी अपनी बात कहकर भूल जाता हूँ
नगर में आ बसा हूँ सुध नहीं खेती किसानी की
पिताजी गाँव के हैं एक हलधर भूल जाता हूँ
सुधरना चाहता हूँ मैं नहीं लगता है ऐसा ही
जमाने से मिली ठोकर को अक्सर भूल जाता हूँ
मुझे बेकार की बातें बहुत–सी याद रहती हैं
मगर अपने ही मोबाइल का नंबर भूल जाता हूँ
जिसे अपना अभी तक मानता मैं आ रहा हूँ 'श्लेष'
उसी ने पीठ पर घोंपा था खंजर भूल जाता हूँ।

3
ध्यान उनका अस्ल मुद्दों से हटाने के लिए
इक बहाना चाहिए हल्ला मचाने के लिए
चाहिए हिम्मत ज़रा–सी सिर उठाने के लिए
सोचते हम क्यों नहीं हैं डर भगाने के लिए
सभ्य होते हम गये तो बढ़ गई पाबंदियाँ
चंद मौके मिलते हैं अब खिलखिलाने के लिए
मुश्किलों से मिलता है पीने का पानी शहर में
सोचना पड़ता है अब जी–भर नहाने के लिए
हर जगह इंसान ने कब्जा जमाया है यहाँ
ढूँढती चिड़िया ठिकाना चहचहाने के लिए
सर से लेकर पाँव तक डूबे जो भ्रष्टाचार में
लोग हैं उनको तुले नायक बनाने के लिए
आपका जीवन सफल हो जायेगा सच में यहाँ
चार काँधे गर मिले अर्थी उठाने के लिए।

4
चढ़ता अना का नश्शा देख
लाँघ रहा वो सीमा देख
सोकर यूँ मत सपना देख
खोल के आँखें दुनिया देख
लाड़ से जिसको पाला है
माँग रहा वो हिस्सा देख
फँस मत दुनियादारी में
पहले अपनी कुटिया देख
घर के अंदर ही अब रोज
होता है हंगामा देख
उल्फ़त और अपनेपन का
टूट रहा है धागा देख
मीठी छुरी से तू ने जो
घाव दिया है गहरा देख।

के.पी अनमोल
अनमोल प्रतीक्षा, सलोनीपुरम
रुड़की (उत्तराखंड)
मो.–8006623499

1
नादानों की हाथों में जब आती है
अच्छी चीजें भी ख़तरा हो जाती है
जो सर्दी में जान बचाती हैं, वे ही
आग की लपटें जंगल भी सुलगाती हैं
ये भी सच है धूप की जायी छायाएँ
अक्सर धूप से बचने के काम आती हैं
जाने क्या–क्या पढ़ती है अखबारों में
वे आँखें जो अक्षर बाँच न पाती हैं
मन का चाहा कर लेने दो बच्चों को
आँखें ठोकर खाकर ही खुल पाती हैं
मुल्लाजी से माफ़ी, मस्जिद का सम्मान
पर मेरी सब दौड़ें तुम तक जाती हैं
कुछ चीजें 'अनमोल' तो होती हैं लेकिन
जान सकें हम तबतक वे खो जाती हैं।

2.
थी कहीं खुलकर, कहीं भीतर तलक छुपकर रही
हर किसी के मन में लेकिन लालसा जीभर रही
इस पुरुष से उस पुरुष के स्पर्श तक बरसों बरस
कोई बतलाए अहिल्या किसलिए पत्थर रही
हर कोई ताने कसेगा, दोष तो देगा मगर
कौन समझेगा ये धरती किसलिए बंजर रही
खुद से बोली–तू कहाँ नाजूक, कहाँ कमजोर है
और वह साइकिल के पहिये में हवा भरकर रही
पेड़ ने पहले बिठाये, डर दिखाया, सब किया
पर हवा खुशबू को अपनी गोद में लेकर रही
रास्ता चिन्ता का जाता है चिता के द्वार तक
एक बस ये ही नहीं रहनी थी मन में, पर रही
फिर उसे 'अनमोल' होने से कोई क्या रोकता
पाँव धरती पर थे जिसके आँख अंबर पर रही।

3.
इतने यत्नों बाद अबतक ये नहीं हारी मुई
बढ़ रही है घास की मानिंद बेकारी मुई
लड़ते–लड़ते बिक गये घर–बार, जेवर और दुकान
सैकड़ों जल्लादों से बढ़कर है बीमारी मुई
सच को सच और झूठ को हम झूठ कह पाते नहीं
ले ही बैठेगी हमें इक दिन तरफ़दारी मुई
डर के मारे जब सहमकर रो रहा होता है पेड़
टूट क्यों जाती नहीं है उस घड़ी आरी मुई
साथ मौसम का मिला तो भोली–भाली–सी हवा
हो गयी है कितने ही लोगों की हत्यारी मुई
ये मशालें चाहती हैं भोर तक लड़ना मगर
और भी गहरा रही है रात अँधियारी मुई
सादगी, संजीदगी, साहस सभी 'अनमोल' है
पर इन्हें भी मात दे देती है होशियारी मुई।

4.
हर दफ़ा, हर बार शब्दों ने दिया है
भावों को आकार शब्दों ने दिया है
चाहतों के पार शब्दों ने दिया है
आसमाँ का द्वार शब्दों ने दिया है
मुझसे नालायक को जीने का सलीका
प्रेम के दो–चार शब्दों ने दिया है
सोचते ही खिल उठी उसकी सूरत
वाह! क्या उपहार शब्दों ने दिया है
मान या मत मान लेकिन है यही सच
सोच को आधार शब्दों ने दिया है
मानती है बात ये सारी ही दुनिया
जो दिया दमदार शब्दों ने दिया है
शब्द है मेरे लिए 'अनमोल' मोती
मुझको अपरंपार शब्दों ने दिया है।

कविता विकास
लेखिका व शिक्षाविद्, कोयलानगर
जिला–धनबाद, 826005
मो.–9431320288

1
क्यूँ करता है नाले पगले
खुद में रो ले, गा ले पगले
धरती का तपना देखा तो
बादल छाये काले पगले
दम घुटता हो भीतर में तो
शीतल झोंके खा ले पगले
उनसे बचकर ही रहना जो
होते मन के काले पगले
डाल जरा सुनने की आदत
मुँह पे जड़ दे ताले पगले
जीवन को अनमोल समझकर
गीत खुशी के गा ले पगले
बंद नहीं रख दिल का कमरा
लग जाएँगे जाले पगले!

2.
सभी की मुझपे ही बस नज़र है
मुकाम ऊँचा भी पुरखतर है
उदास लम्हों में आ गया वह
खुशी की मुझमें उठी लहर है
कोई न दुखती–सी रग पकड़ ले
बना हुआ बस इसी का डर है
है इश्क़ करके ये हमने जाना
कहीं ये पानी कहीं शरर है
गहन अँधेरा भले हो दिल में
मगर उमीदों की इक़ सहर है
भरे हैं सुख के सभी तो साधन
मगर नहीं वो खुशी का घर है
तुम्हीं हो माता तुम्हीं पिता हो
कि दर तुम्हारा ही मेरा घर है।

3.
ज़िन्दगी यूँ भले मुख़्तसर दीजिए
हमको जीने का लेकिन हुनर दीजिए
आँख पथरा गयी आपकी दीद को
अपने आने की अब तो ख़बर दीजिए
मुझको धरती दिखाई दे, उतनी ही बस
क़ामयाबी का भगवन शिखर दीजिए
आपको ही मैं हर शै में देखूँ सदा
मन की आँखों में इतना असर दीजिए
शोखियाँ भी हों, सरगोशियाँ भी मगर
बदलियों से भरी भी नज़र दीजिए
रात चाहे हो कितनी भी लंबी मगर
जब सहर दीजिए, बस सहर दीजिए
औरतों को नहीं यंत्र समझे कोई
उनको आराम के दो पहर दीजिए।

4.
ग़म का कोहरा तेरे दिल पे जो पसर जाएगा
ऐन–मुमकिन है उजालों से तू डर जाएगा
महज़ अपने में रहेगा तो बिख़र जाएगा
देख ले रह के तू अपनों में, सँवर जाएगा
तेरे दर पर भी खुदाया नहीं आराम जिसे
फिर तो बतला दें कि बंदा ये किधर जाएगा
मेरे जीवन के हर इक रंग में शामिल हो तुम
साथ मेरे ही ये उल्फ़त का असर जाएगा
चाहती हूँ कि मेरा हाल न पूछे वे कभी
वरना 'अच्छी हूँ' ये कहना भी अख़र जाएगा
बात व्यवहार में तहज़ीबों अदब रखना है
वरना नज़रों से सभी की तू उतर जाएगा
वक़्त अपनों को भी देना है ज़रूरी 'कविता'
हो न संवाद तो संबंध भी मर जाएगा।

1
फ़ाइलातुन फ़ाइलुन फ़ेलुन
मेरी आँखों में आ गये आँसू
ग़म का क़िस्सा सुना गये आँसू
जबसे बेदख़ल है ख़ुशी उसकी
उसकी आँखों को भा गये आँसू
सामना ग़म से जब हुआ उसका
सुर्ख़ रुख को भिंगा गये आँसू
बैन जब अंजुमन हुआ कोई
साज़िशों को गला गए आँसू
बारिशों से ये काम हो न सका
आतिशे–दिल बुझा गये आँसू
उसकी ख़ुशियाँ की इंतिहा न रही
जब दुखी के मिटा गए आँसू
मीर का दर्द पीर मीरा की
चुटकियों में उड़ा गए आँसू
देखते ही व्यथा विसर्जन की
झील नदियों पे छा गए आँसू
द्रौपदी को 'कँवल' पता न चला
कृष्ण पर क्या न ढा गए आँसू

रमेश 'कंवल'

2.
फाइव जी की ही चल रही है हवा
तेज़ रौ धुन में ढल रही है हवा
बदला बदला है नक्शा गुलशन का
खारो–ख़स को मसल रही है हवा
मदरसों का निज़ाम और चलन
बाद मुद्दत बदल रही है हवा
सोचती थी बुझा के दम लेगी
दीप जले उड्डे जल रही है हवा
धूप का लुत्फ छत पे लेते हुए
रफ़्ता रफ़्ता टहल रही है हवा
उसके बाजू में शोला है कोई
बर्फ़ पहने मचल रही है हवा
लग न जाए बदन में आग 'कँवल'
दिल का मौसम बदल रही है हवा।

मुझे इस तरह वो सताने लगा है
सताकर वो मुझको जलाने लगा है
बड़ा जो मेरे सामने हो गया था
वो गलती मेरी अब बताने लगा है
हुआ था जो दुश्मन बुरे वक़्त में
वही दोस्ती अब जताने लगा है
मिला था जो कल रास्ते में मुझे
तो गुजरा समय याद आने लगा है
जो रहता था दिल में सदा 'वीर' मेरे
मेरा दिल वही अब दुखाने लगा है।

डॉ. शैलेश गुप्त 'वीर'
अध्यक्ष अन्वेषी संस्था
राधानगर फतेहपुर (उ.प्र.)
मो.–9839942005

2.
बात–बात में दंगा है
मौसम रंग–बिरंगा है
बेटे जबसे एक हुए
अम्मा का मन चंगा है
कूड़ा–करकट फेंक रहे
मोक्षदायिनी गंगा है
मत उसको समझाओ तुम
बिना वज़ह फिर पंगा है
मालिक को नज़रों में तो
रामू कीट–पतंगा है
युग बीते सदियाँ बीतीं
आदम अब भी नंगा है।

3.
कोस–कोस, सरकार को कोस
मँहगाई की मार को कोस
चुनकर नेता किसने भेजा
संसद की तकरार को कोस
लूट–डकैती, हत्या–चोरी
लोकतंत्र की धार को कोस
कहीं अयाशी कहीं गरीबी
जी भर पालनहार को कोस
नाव डुबो दी रामलाल ने
नाविक की पतवार को कोस
कंधे ढीले पहले से थे
उम्मीदों के भार को कोस।

1
ग़ाज़ अब गिरने लगी है धर्म और ईमान पर
जंग अब छिड़ने लगी है, गीता और कुरान पर
मंदिरों की शंख–ध्वनियाँ दबी–दबी क्यों लग रहीं
अंगुलियाँ उठने लगी हैं भक्त और भगवान पर
सच्चाई की राह में खतरे ही खतरे क्यों खड़े
सच बोलनेवालों की बन आयी है अब ज़ान पर
विनती से बात अब यहाँ बिल्कुल बनती नहीं
लोग उतर आए जब से बंदूकों की तान पर
नफ़रत की गहरी लकीरें चेहरे पर नक्श हैं
बन्दिशें हजार अब तो हरेक की मुस्कान पर
आदमी आता नहीं अब बिना मुखौटे के नज़र
बहस छिड़ गई अब तो हरेक की पहचान पर
हर चीज़ बिकाऊ यहाँ ख़रीददार भर ही चाहिए
बिकाऊ हैं नेता अब तो राजनीति की दुकान पर
भ्रष्ट हुआ हर 'तंत्र' यहाँ कष्ट में तो 'लोक' है
लूट के इल्ज़ाम है देश के साहेबान पर
काली रात है कालेधन की बात लगती खाली खाली
जनता मस्त झूमती है जुमले की हर तान पर
करें कैसे यक़ीं खुशहाली की बातों पर
मुसीबत के बादल जब छाये हों आसमान पर
'सत्यमेव जयते' उद्घोष का क्या हुआ बोलो ज़रा?
अब झूठ क्यों पहुँच जाती है ऊँचे–ऊँचे पायदान पर।

बसंत राघव
पंचवटी नगर, बोईरदादर, रायगढ़
(छतीसगढ़),
मो.–8319939396

2
अपनी उम्र हमें जी लेने दो यारों
हमें मौत के पहले ही न मारो
हो सके तो भावनाओं को स्वर दो
बेहतर दुनिया की तलाश करो यारों
इक नई रोशनी की चाह है हमें
अँधेरे में मत गुनाह करो यारों
क्यों दहशत से भर जाते हो हम शक्ल को देख
तुम्हारी ही बसाई गई दुनिया है यारों
एक घर तो ऐसा जरूर बनाया जावे
सबका जिसमें बसर हो सके यारों।

3.
हमें नहीं चाहिए ऐसी ऊँचाइयाँ
जहाँ साँसों में ज़हर घुला हो
विकास का हिमालय व्यर्थ है
जो तेज़ाबी बर्फ़ से ढका हो
हमें नहीं चाहिए ऐसा वरदान
जो अनीति के पलड़े में तुला हो
हमें नहीं चाहिए फ़ायदे का बाज़ार
जिसके पीछे शोषण का व्यापार हो
(बाज़ार नेमतों का नहीं चाहिए
जिसमें तबाही का इकरार खुला हो।)

4
रफ़्ता रफ़्ता आदमी हैवान होता जा रहा
लाश बिछाता, लाश ओढ़ता मशान होता जा रहा
लाशों का ढेर लगाकर ज़श्न मना लेता है
अपनी दरिन्दगी से अन्ज़ान होता जा रहा
क़त्लेआम मचा, चैन से सो जाता है
किस मिट्टी का बना ये पाषाण होता जा रहा
मौत का सौदागर, मौत का मुलाज़िम है यह
मौत पर फ़िदा हो, कुर्बान होता जा रहा।

रमेश वियोगी
कृष्ण विहार, तारागंज,
ग्वालियर (म.प्र.)

चार पैसे जो पास होते हैं
कितने लोग आसपास होते हैं
हो न पैसा तो दूर–दूर हैं वो
जिनके घर आस–पास होते हैं
जब सबेरे ही रूठ जाएँ तो
शेष दिन भी उदास होते हैं
चक्र जीवन के रुके उनके ही
साधनों के जो दास होते हैं
लाख सुख हों भले, 'वियोगी' पल
ये भी कितनों के पास होते हैं।

उन होठों से लफ़्ज़ों को कैसे उठा लें
तराने तुम्हारे जो हम गुनगुना लें
बुजुर्गों की नज़रों के हम नूर बनकर
ये बेहतर रहेगा कि उनकी दुआ लें
ज़माना सुनेगा कभी खुश न होगा
हम अपनी मोहब्बत को सबसे छुपा लें
शहर में लगी आग तब ही बुझेगी
जो सब अपने–अपने घरों की बुझा लें
हमें लूटने आएगा फिर दरोगा
चलो हम स्वयं ही दुकानें बढ़ा लें।

प्यार ही प्यार तुमने देखा है
जीना दुश्वार तुमने देखा है
पेट की आग फिर बनी शोले
आज अख़बार तुमने देखा
दुख समझता है हर परिन्दे का
कोई फ़नकार तुमने देखा है
ज़िन्दगी भी हैं दास्तानें भी
मेरे अशआर तुमने देखा है
दे के सब कुछ भी कुछ नहीं चाहा
ऐसा व्यापार तुमने देखा है

दिन, महीने, वर्ष, युग–अन्तर गया
आयु का आँचल था, उतना भर गया
सूर्य जो जन्मा था, प्रातः काल में
साँझ सागर में फिसलकर मर गया
दर्द उर में मुस्कराता मुख लिये
सब मिले मुझको, मैं जिनके घर गया
झोंपड़ी सहती रही, लेकिन नहीं
शीश महलों में कभी पत्थर गया
नित रहा एकाधिकारी ही भले
पर समय अनुबन्ध पूरे कर गया।

आसमां बेगम

आहटों पर तेरे आने का गुमां होता है
दिल की धड़कनों का दर्द जवां होता है
तू रहे ना रहे साथ मगर से हमदम
घर के हर कोने में तेरा ही निशां होता है
दर्द दिल का मेरे कुछ और भी बढ़ जाता है
रूठ के मुझसे कभी तू जो वहाँ होता है
रुसवा होके भी ना भूली हूँ तेरी उल्फत को
हाले जज़्बा मेरी आँखों से अयाँ होता है
ग़म की तासीर से आ जाते हैं आँसू 'असमां'
रहके ख़ामोश भी अफ़साना बयां होता है।

दिल लगाने की सज़ा क्या खूब पाई है
देख ले मेरे मौला तेरी दुहाई है
जिस जगह पर मिले हम दोनों कभी
आज भी उसी जगह आशनाई है
दास्तां किसको ये सुनाएँ बता दे
इसमें भी तो मेरी रुसवाई है
अब मुक़द्दर से क्या करें गिला
जब लिखा था तेरी जुदाई है
दोस्ती क्या है प्यार कुछ भी नहीं
अब तो बस रस्म ही निभाई है।

दर्द भी मुस्करा के छुपा लेते हैं
ज़िन्दगी इस तरह बिता लेते हैं
दूर रहना ही नहीं दूरी है सुन
प्यार हम दिल से निभा लेते हैं
डर के दुनिया में ना जीना कभी
डरनेवालों को ही लोग डरा लेते हैं
बेटियाँ फूल–सी नाजुक है चमन की
लोग फिर कैसे उन्हें जला लेते हैं
काँटे भी जो दामन से लगाए यहाँ
'आसमां' वो ही फूल खिला लेते हैं।

जब–जब हाथ बढ़ाते हैं
खाली ही रह जाते हैं
दूर से दरिया आए नज़र
प्यासे मगर रह जाते हैं
उनसे मिलने जाना है
सोचते ही रह जाते हैं
वो मेरा हमदर्द भी है
इसलिए ग़म सह जाते हैं
कौन है अपना कौन है ग़ैर
उलझन में रह जाते हैं।

सारिका त्यागी
ओल्ड रोशनपुरा,
नज़फगढ़, नई दिल्ली

कड़वा भी मीठा लगता है
रोग कोई दिल का लगता है
तुम जो तसव्वुर में आते हो
झूठा भी सच्चा लगता है
उससे क्या रिश्ता है मेरा
कैसे कह दूँ क्या लगता है
जब तुम छत पर आ जाते हो
चाँद बहुत फीका लगता है
तुम्हें सोचकर चाँद को देखूँ
माथे का टीका लगता है।

तेरे हर वार पर खरी उतरी
मेरी क़िस्मत मगर नहीं संवरी
बात उसने जो की सरे–महफ़िल
थी तो दिल कश मगर बहुत अखरी
आइना जब यक़ीन का टूटा
वो उधर और मैं इधर बिखरी
भीड़ के बावजूद तन्हा सी
ज़िन्दगी रेल की तरह गुज़री
जिसमें हर पल तेरा बसेरा था
दिल की बीरान है वही नगरी।

हाय सब दाव पर लगा बैठी
जो भी था पास वो गँवा बैठी
बोलियाँ हाट में थी उल्फ़त की
कितने सस्ते में आज़मा बैठी
देख अब किस तरह पिघलती हूँ
इश्क़ की आग मैं लगा बैठी
अब खरीददार की हुकूमत है
प्यार की सल्तनत लुटा बैठी
अब तो बेख़ौफ होके जीती हूँ
मैं नज़र मौत से मिली बैठी।

भरोसा कर लिया है किसी पर
ये अहसां कर दिया है ज़िन्दगी पर
शराबी हो गये ज़ज़्बात मेरे
नशा सा छा रहा है मौसिकी पर
ज़माना दरमियां था दो दिलों के
मगल इल्ज़ाम आया आशिक़ी पर
उन्हें फिर क्या गरज़ थी शोखियों से
निगाहें जा टिकीं जब सादगी पर
कोई तो बात है जो आदमी को
नहीं होता भरोसा आदमी पर।

इन्दिरा 'शबनम'
शिवाजीनगर,
मॉडल कॉलोनी,पुणे

ज़ख़्मों का एहसान जगाते रहते हैं
रिश्तों को हम लोग निभाते रहते हैं
ऐसे भी लोगों को हमने देखा है
रिश्तों में जो ज़हर मिलाते रहते हैं
सच्चा साबित करने झूठे रिश्तों को
प्यार की हरदम क़स्में खाते रहते हैं
उन रिश्तों के चेहरों को क्या पहचाने
जो चेहरे पे चेहरे लगाते रहते हैं
इसके सिवा हम कर भी क्या सकते हैं भला
'शबनम' ज़ख़्मों को सहलाते रहते हैं।

कुछ इस तरह से लिखूँ कि लिखा नया लगे
हर लफ़्ज़ हर ख़याल अनोखा नया लगे
दु:ख सहते–सहते गुज़री मेरी तमाम हस्ती
जितना मैं उसको सोचूँ वो उतना नया लगे
तुम दिल की धड़कनों में समाए हो इस तरह
जिस जाविए से देखूँ ये चेहरा नया लगे
'शबनम' मैं चलते–चलते कहाँ आ गयी हूँ आज
हर इक क़दम पे मुझको ये रस्ता नया लगे।

चलते चलते रहे वफ़ा से हट जाते हैं
हम भी क्यों आपस में यूँ ही कट जाते हैं
कौन–से मौसम का पड़ता है, वार भला सा
बढ़ते–बढ़ते रिश्ते क्यों वे घट जाते हैं
कौन–सी आग भड़क उठती है नफ़रत की
दिल अपने क्यों दूध की, तरह फट जाते हैं
जिन राहों पर चलते हैं, हम जैसे लोग
उन राहों से अक्सर लोग पलट जाते हैं
फूलों में भी मिलता नहीं जब अपनापन
'शबनम' हम भी अपने आप सिमट जाते हैं।

आईना सा रहने में भी डर लगता है
सच्ची बातें कहने में भी डर लगता है
जिस में चारों ओर बिछी हों बारूदें
ऐसे जग में रहने में भी डर लगता है
तेरा दामन हाथ न आया अपने तो
आँसू बनकर बहने में भी डर लगता है
लावा बनकर यार कहीं न फट जाए
ग़म का हर पल सहने में भी डर लगता है
'शबनम' उसने इतने दु:ख पहुँचाए हैं
दोस्त उसे अब कहने से भी डर लगता है।

प्रतिभा शुक्ल
गली गुलियान,
दिल्ली–6

आ गए हम जहाँ, लौट आना मना
घर बसाना मना, दिल लगाना मना
किस तरह से मनाए गए रूठ जो
मुस्कराना मना, अश्क लाना मना
है समुन्दर हमारे तो अंदर मगर
पार जाना मना, डूब जाना मना
गुफ़्तगू की तमन्ना भले दिल में हो
पेश आना मना, लब हिलाना मना
अब तो आओ सनम बचा लो मुझे
अपने प्यारों को ज़्यादा सताना मना।

मेरी चश्मे–नम है यहाँ बैठे–बैठे
न खुल जाए राज़े–निहाँ बैठे–बैठे
मेरी मुहब्बत में इतने कशिश है
बुला लूँगी उनको यहाँ बैठे–बैठे
जो हैं मुश्किलें दरमियाँ मेरे उनके
सुलझ जाएँगी सब यहाँ बैठे–बैठे
तलाशे–खुदा में गया कोई काबा
मैं देखा किया दिल में याँ बैठे–बैठे
लब उनके हिल भी न पाए अभी तक
ग़ज़ल कह मैंने ली यहाँ बैठे–बैठे।

उनकी हालत बयाँ नहीं होती
राज़दारी अयाँ नहीं होती
उनकी ज़िद है नहीं न छोड़ेंगे
देखें हम कैसे हाँ नहीं होती
बात उनकी बताइए हज़रत
कौन है ना जहाँ नहीं होती
कहने बैठे हैं आज जब सब कुछ
ख़त्म क्यूँ दास्ताँ नहीं होती
वाक़ई में वही हैं दीवाने
जिनके मुँह में ज़बाँ नहीं होती।

मुसीबत जो आई सही जा रही है
उन्हीं की मुहब्बत कही जा रही है
किनारे खड़े देखते रह गए हम
भँवर बीच कश्ती बही जा रही है
मेरे साकी आ दे तुझे तू वही मय
जो आँखों ही आँखों में पी जा रही है
वही मैं हूँ औ है वही जामो–मीना
तबीयत मेरी क्यों हटी जा रही है
मैं तेरी ही आशिक तेरी रहूँगी
क़सम मुझसे नाहक ही ली जा रही है।

सागर मिर्जापुरी
के.एन.आई.
सुल्तानपुर (उ.प्र.)

अश्क की क़ीमत फ़क़त आवे रवी
दिल मेरा उजड़ा हुआ इक आशियाँ
ये अदा की शोख़ियाँ ये मस्तियाँ
गेसुओं की हर घटा अबे जवाँ
इश्क़ के बीमारों का है ये नगर
इस नगर की हर गली कूए–मुग़ाँ
'वस्ल की यादें' दरख़्ते–ज़िन्दगी
वस्ल का अहसास है बर्गे–ख़ज़ाँ
हुस्न की महफ़िल में 'सागर' आ गए
गिर पड़ेगी आज तो बर्के तपाँ।

लीजिए दिल, खेलिए ठुकराइए
बेवफ़ाई बेसबब कर जाइए
मुझे तन्हा छोड़कर यूँ चल दिए
मख़्मसाते इश्क़ भी ले जाइए
शामें कितनी ढल गईं ढल जाएगी
आप मेरे ख़्वाब में ढल जाइए
किसकी ख़ातिर जी रहे हैं ज़िन्दगी
ज़िन्दगी को ज़िन्दादिल कर जाइए
ज़ख़्म दो या दर्द दो 'सागर' मुझे
वल्वलाए वस्ल या दे जाइए।

उदासी है शबे–गम है
अया दिल की नहीं कम है
क़सम खाने से क्या होगा
तेरी सुहबत में ही ख़म है
तेरी दो आँखों का पानी
यक़ीनन आबे ज़मज़म है
मुहब्बत की अदालत में
सफ़ाई का चलन कम है
सनम के प्यार का दामन
मेरे दामन से ही नम है।

उम्रभर सायों से मन बहलाओगे
खुद को ही खुद से जुदा कर जाओगे
इश्क़ की जानिब न जाओ दोस्तो
आग का दरिया है रे, जल जाओगे
ख़ाली ख़ाली लौट आती है सदा
कब तलक पत्थर पे सिर टकराओगे
मुझसे ही मुझको चुराए जाते हो
जानेमन! मुर्दे से तुम क्या पाओगे
आईना 'सागर' बना डालो मुझे
अक्स बन–बनकर उतरते जाओगे।

सुशील साहिल,
महागामा, गोड्डा, (झारखंड),
मो.–9955379103

1.
लब से मासूमों की मुस्कान चुरानेवाले
कितने बेदर्द हैं अरमान चुरानेवाले
इस तरफ़ राह से चुनते हैं ये बच्चे कचरे
उस तरफ़ बैठे हैं सामान चुरानेवाले
ये ख़बर आज ही गुज़री है कई कानों से
आये हैं शहर में कुछ कान चुरानेवाले
चौड़े रस्ते का जो देते हैं भरोसा तुमको
बस वही लोग हैं दालान चुरानेवाले
सब के सब गर्क़ हैं मोबाइल की ही चोरी में
अब कहाँ मिलते हैं दीवान चुरानेवाले
आजकल आपको पहचान दिलाने की जगह
आ गए आपसे पहचान चुरानेवाले।

2
किसी के वास्ते क्यों सारी दुनिया छोड़ देते हैं
ये कैसे लोग हैं जो डर के जीना छोड़ देते हैं
हमारी रोटियों पर हक़ परिन्दों का भी होता है
ख़याल आते ही हम थाली में लुकमा छोड़ देते हैं
सुने जाते नहीं हमसे बटाईदार के दुखड़े
जभी हम फ़स्ल का अपना भी हिस्सा छोड़ देते हैं
कभी सोचा भी है तुमने वो कैसे जी रहे होंगे
बुढ़ापे में जिन्हें बच्चे अकेला छोड़ देते हैं
जहाँ भी देख लेते हैं पड़ोसी की हरी फसलें
मवेशी को वहीं लाकर वो खुल्ला छोड़ देते हैं
निशाँ जिस राह पर पड़ जाते हैं जंगल के राजा की
हजारों जानवर डरकर वो रास्ता छोड़ देते हैं
जिन्हें है शोला–ए–नफ़रत से बेहद उन्सियत 'साहिल'
वही बारुद पर जलता पटाखा छोड़ देते हैं।

3
हम भी क्या बाहर निकल आये
चींटियों के पर निकल आए
इक कुएँ की रोकने को राह
सकैड़ों पत्थर निकल आए
धर्म की बदली है परिभाषा
जब से पगैम्बर निकल आए
बेच देना खुशबुओं के हाथ
गर ज़मीं बंजर निकल आए
वो अगर चाहे तो मुमकिन है
बूँद से सागर निकल आए
तेरे दिल के हाईवे पर ही
काश मेरा घर निकल आए
एक दिन शायद करोड़ों में
कोई बाजीगर निकल आए
फँस गया 'साहिल' बहस करके
लोग तो हँसकर निकल आए।

4
आलमे–रंजिश में जेवर तोड़कर
क्या मिलेगा तुमको गौहर तोड़कर
ख़ैरमकदम आईने का कीजिये
आज ही लौटा है पत्थर तोड़कर
हो के वो सीना–सिपर निकला तो है
क्या कभी लौटेगा खंज़र तोड़कर
नफ़रतों का घर गिराया कीजिये
क्या मिलेगा प्यार का घर तोड़कर
शहरे–भागलपुर गर जाएँ कभी
खूब खायें घी का घेवर तोड़कर
बिलयकी आएगी घर–घर में खुशी
फाड़कर आये या छप्पर तोड़कर
तेरी चाहत का अगर ये शर्त है
लाएगा 'साहिल' भी अम्बर तोड़कर

अशोक अंजुम
चंद्रविहार कॉलोनी
क्वारसी बायपास अलीगढ़
मो.–9258779744

1
मंच पर मुस्कान थी पर अश्क़ थे नेपथ्य में
क्या बताएँ ज़िन्दगी क्या–क्या सहे नेपथ्य में
तुमने मेरा हाथ क्या थामा क़यामत आ गई
कुछ जले प्रत्यक्ष में तो कुछ जले नेपथ्य में
आँख तक हमने कभी इक बूँद भी आने न दी
ज़िन्दगी भर यूँ बहुत दरिया बहे नेपथ्य में
देखकर खुश हो गए तुम कुछ कलाकारों का फ़न
पारखी है कौन जाकर दाद दे नेपथ्य में
आपने उनसे मेरी नजदीकियाँ तो देख लीं
पर कभी देखे नहीं थे फासले नेपथ्य में
कर सको तो अब उन्हें मेरे हवाले कर ही दो
उम्र–भर जो मेरी ख़ातिर ख़त लिखे नेपथ्य में।

2
जब देखो तब आनाकानी, हय रब्बा!
बरसे कंबल, भीगे पानी, हय रब्बा
इक दूजे की आस्तीन में रहते हैं
फिर भी दिल है हिन्दुस्तानी, हय रब्बा
रातों को गिद्धों के सपने आते हैं
जबसे बिटिया हुई सयानी, हय रब्बा
लोकतंत्र में लोक किनारे लगा दिया
तंत्र सदा करता मनमानी, हय रब्बा
फिर कचरे में कहीं कोई नवजात मिला
ख़त्म हुई फिर प्रेम–कहानी, हय रब्बा
हर इक घर में ईद मने, खुशियाँ आएँ
बकरों ने दे दी कुर्बानी, हय रब्बा
बाबर, ख़िलजी बारूदों के खेल रचें
मारे जायँ चचा रमज़ानी, हय रब्बा

3
मन जिस जगह लगा मैं उधर देर तक रहा
मुझ पर मुहब्बतों का असर देर तक रहा
मैं मैं नहीं रहूँगा मुझे खूब थी ख़बर
पहलू में तेरे फिर भी मगर देर तक रहा
फूलों की घाटियाँ तो बहुत बाद में मिलीं
हाँ, पत्थरों पे मेरा सफ़र देर तक रहा
लम्हात इंतज़ार के न ख़त्म हो सके
यूँ छत पे मिरी हुस्ने–क़मर देर तक रहा
तेज़ी से सारे शहर में फैलेगी आग–सी
अंजूम मैं तेरे घर में अगर देर तक रहा

4
लहरों पे उठी लहरें, पानी से डरा पानी
दरिया ने बगावत की, घर–घर में भरा पानी
किस ओर गया यारो, क्या हाल हुआ उसका
होता था कभी वह जो लोगों में ख़रा पानी
पानी क्यों नहीं दिखता पानी के कलर जैसा
है ताल के भीतर क्यों ये लाल–हरा पानी
साँसें ये नहीं साँसें जीना ये नहीं जीना
आँखों में नहीं सपने आँखों का मरा पानी
होते ही सुब्ह चिड़िया, फिरती है परेशां–सी
मिल जाते ज़रा दाने, मिल जाता ज़रा पानी
बादल मत उड़ जाना, तरसा के ज़माने को
दरके है ज़मीं देखो, माँगे है धरा पानी।

दिनेश 'तपन',
भागलपुर
मो. 9431090390

ज़ीवन की आपा–धापी में खुद भी एक कहानी लिख
गुरबत से लड़ना है तो फिर पहले दाना पानी लिख
एक से बढ़कर एक हैं किस्से वहशत और वबाओं के
लिख पाए तो 'कृष्णा' जैसी तू मित्रो मरज़ानी लिख
वक्त गुज़ारे जो खेतों में, उसको चैन मिले कैसे
अन्न उगाने वालों को पहले पटवन का पानी लिख
जान हथेली पर रखकर शरहद पर जो लड़ने जाते
ऐसों की हुब्बलवतनी को तू बेशक कुरबानी लिख
याद किसे है हिंदू–कुश की जिसमें लाखों लाख मरे
जो कुर्बान हुए, हिन्दू थे, उनको हिन्दुस्तानी लिख
कत्लोगारत से दुनिया की नींद उड़ाते जो अक्सर
सूरत उन नापाक दरिंदों की जानी पहचानी लिख
शिद्दत से वो गाँव बुलाए, फिर ममता की छाँव बुलाए
स्वर्ग 'तपन' है जिस धरती पर उसको चूनर धानी लिख।

2
ऐ ज़िंदगी तू मौत की ऐसी हवा न दे
मर मर के भी जीना पड़े ऐसी सज़ा न दे
गुमनामियों के दौर का अब तज़किराभी क्या
जो है सराबे ज़िंदगी उसको सदा न दे
अब दर्द की सारी हदों से मैं गुज़र चुका
रहने दे मेरे जख़्म को कोई दवा न दे
जारी है मेरी मुफ़लिसी का दौर अब तलक
ऐसे में मेरे यार कोई बददुआ न दे
जिसने नशेमन ख़ाक में मेरा मिला दिया
बरबादियों का ये सिला उसको खुदा न दे
तनहा तू मेरे हाल पे ही छोड़ दे 'तपन'
महबूब कोई पर मुझे वो बेबफ़ा न दे।

3
तिश्नगी जब थी बढ़ी, हालात का सौदा हुआ
एक दोशीज़ा से पहली रात का सौदा हुआ
नोचकर पाँखें ख़ला में जब उन्होंने फेंक दी
तब सितमगर से वहाँ हर बात का सौदा हुआ
आज़माने के लिये फूँका नशेमन आप ही
ज़िंदगी से फिर वहाँ जुल्मात का सौदा हुआ
हैं सियासत में अगरचे जुल्म की ही खेतियाँ
एक तन्हा के लिये इफ़रात का सौदा हुआ
थी तपिश इतनी कि धरती औ गगन जलते रहे
बे मुरौव्वत मौसमी बरसात का सौदा हुआ
वक्त की वो थी नज़ाकत अब समझ लीजै 'तपन'
एक डोली के लिये बारात का सौदा हुआ।

4
कहीं जुल्म की बादशाही न देना
कहर बरपा मंज़र इलाही न देना
बड़ा बेरहम होके लाशें बिछा दीं
गया कह के क़ातिल गवाही न देना
वो जुल्मो सितम का भी कैसा था आलम
खुदारा कभी ये तबाही न देना
रही मूक दर्शक बनी तब जो वर्दी
किसी क़ौम को ये सिपाही न देना
ये क़ातिल लुटेरे बने रहनुमा हैं
इन्हें बेवज़ह वाहवाही न देना
सफ़े पर जो उगकर लिखेगी कहानी
'तपन' कोई ऐसी सियाही न देना

1
काली रातों में सपनों की बरसात न कर
पागल ना बन जाऊँ ऐसी हालात न कर
झूठे ख़्वाब दिखाकर पीछे मुड़ मत जाना
आमावश में उजाला की ख़यालात न कर
उड़ने दो परिन्दों के जैसा आसमान में
मेरे मनसूबे पर तुम यूं हिमपात न कर
हरदम धोखा ही मिलता है अपनों से ही
अब तुम भी अपना बन कोई आघात न कर
जग ज़ाहिर है ये प्यार मुहब्बत की बातें
इसे छुपाने जैसी तुम कोई बात न कर
हमने ठोकर खाई है जीवन में हरदम
अब कोई जीने मरने की सवालात न कर
पतझड़ के बाद बसंत का आना तय है
झूठे ही 'अलका' दहशत में दिन रात न कर।

2
प्यार में संसार हुआ गुलज़ार जी
डूब जाओ तुम बसा संसार जी
बोल इक बोलो मुझे बस प्यार से
और मेरे दिल को न कुछ दरक़ार जी
बूंद बारिश की मुझे तड़पा रही
बन रहा दिल मेरा भी फ़नकार जी
संग साजन होते हैं घर मेरे जब
हम मनाते हैं बहुत त्योहार जी
आप दिल मेरे बसो दिलवर अगर
मुझ पे होगा यह बड़ा उपकार जी
देश हित की बात बढ़ बढ़के न कर
आओ मिलकर दे बदल सरकार जी।

डॉ. अलका वर्मा
त्रिवेणीगंज,सुपौल, बिहार
मो. 7631307900

मो. नसीम अख़्तर
मोगलपुरा, जग्गी–का–चौराहा,
पटना सि टी
मो. 9504604986

1
नदी से जहाँ थी बहुत दूरियाँ
लगी आग ऐसी जली बस्तियाँ
करे कोई कैसे बात इन्साफ की
उड़ी है अदालत की जब धज्जियाँ
भरी है फ़िज़ाओं में नफ़रत कुछ ऐसी
सहमने लगी शोख़ सब तितलियाँ
न आया कोई घर से बाहर यहाँ भी
बिछी थी गली में महज चुप्पियाँ
मिटा है नहीं कुछ भी क़िस्मत का लिखा
न 'अख़्तर' दिखा अपनी तू हस्तियाँ।

2
रहे जो हमेशा ही अपनी खुदी में
वो दुनिया बदलने चले दो घड़ी में
ये माना के उनको नहीं कुछ मिला है
मुझे तो बहुत कुछ मिला ज़िन्दगी में
घरों की यहाँ खिड़कियाँ बंद तक है
नहीं खेलता कोई बच्चा गली में
मुझे तो हमेशा किनारा मिला है
निकलते कभी हम भी शौके नदी में
कहाँ तो अँधेरे से वहशत है 'अख़्तर'
मगर नींद आती कहाँ रौशनी में।

3
जुस्तजू में किसकी यूँ रहते हैं तारे रात भर
दर ब दर फिरते हैं क्यूँ ये मारे–मारे रात भर
देखता था कनखियों से वो तुम्हारा कौन था
किस्से होते थे सरे महफ़िल इशारे रात भर
दिन को खा–खाकर कसम करते हो वादे सकैड़ों
क्यूँ बिगड़ जाते हैं फिर तेवर तुम्हारे रात भर
चाँदनी का लुत्फ़ घर में बैठकर मिलता नहीं
सैर को निकलें चलो दरिया किनारे रात भर
इश्क़ के रंग में लिखी 'अख्तर' ग़ज़ल है ये मेरी
नाम उसका ले रही थी मुस्कुरा कर रात भर।

4
घर में आने लगे जबसे क़ातिल बहुत
हो रहा है परेशां मेरा दिल बहुत
तुम तो ढाते रहे हो सितम दर सितम
हर सितम से रहे फिर भी गाफ़िल बहुत
यूँ हुई रोज़ पत्थर की बारिश यहाँ
सब के सब सर मिले हमको घायल बहुत
मौज मस्ती में हरदम जो खोए रहे
वो गमे ज़िंदगी से थे गाफ़िल बहुत
बाद में डँस गई उनको तन्हाइयाँ
जो सजाते रहे अपनी महफ़िल बहुत
घर से बाहर निकलने की कोशिश तो कर
राह में मिल ही जाएँगे बिस्मिल बहुत
तुम सफर में चले हो तो चलते रहो
दूर अब भी हैं 'अख़्तर' की मंजिल बहुत

डॉ. सीमा विजयवर्गीय
सपंर्क2/84, स्कीम दस–बी, अलवर
(राजस्थान),
मो. 70737–13013

1
आ रही हिचकियाँ मेरी माँ
क्या कहें चुप्पियाँ मेरी माँ
साथ अपने तू क्यों ले गई
प्यार की झप्पियाँ मेरी माँ
आज किससे गले मैं मिलूँ
हर तरफ दूरियाँ मेरी माँ
तेरे कमरे में ढूँढूँ तुझे
लाई हूँ राखियाँ मेरी माँ
फिर से सपनों में देखा तुझे
रो पड़ी बदलियाँ मेरी माँ
तेरे बिन तेरे कमरे की सब
बोलती खिड़कियाँ मेरी माँ
मेरे आसूँ तुझे लिख रहे
रो रही उँगलियाँ मेरी माँ
बाद तेरे तुझे ढूँढ़तीं
हर तरफ बेटियाँ मेरी माँ।

2
जाने कितनी सदियों का ये मंथन है
मानस का तो हर आखर भवमोचन है
गीता को मत समझो केवल इक पुस्तक
इसमें तो पूरा ही ज़ीवन–दर्शन है
इसकी प्रकृति समझो फिर व्यवहार करो
गौतम, नानक की ये धरती चंदन है
मत व्यवहार करो संसद में मनमाना
देख रहा तुम को पूरा जन–गण–मन है
कथा कहानी की गठरी बाँधे दादी
सोच रही, क्या पहले जैसा बचपन है
बचा सको तो आज बचा लो कोशिश कर
पानी की बूँदों में कल का ज़ीवन है
दिल की बात कही है मैंने ग़ज़लों में
मत आँको ये मेरा केवल लेखन है।

3
प्रेम की बारिश में अब खुद को भिंगोना चाहती हूँ
नफ़रतों में भी वफ़ा के बीज बोना चाहती हूँ
खून, हत्या, साज़िशों से हैं घिरी चारों दिशाएँ
पर इसी परिवेश में मैं बुद्ध होना चाहती हूँ
ओढ़कर जिसको न जाने कितने युग बीते हैं अब तक
प्रेम के जल से उसी चूनर को धोना चाहती हूँ
रात भर चलती रहे ये लेखनी यूँ अनवरत ही
और फिर भिनसार में चुपचाप सोना चाहती हूँ
उम्र अपनी छाप छोड़े जा रही है बिन रुके ही
ख़िलख़िलाता पर वही चेहरा सलोना चाहती हूँ
दिल के इक कोने में जिनको रख दिया सबसे छुपाकर
उन सभी भावों को ग़ज़लों में पिरोना चाहती हूँ
मेरी गुड़ियों को कभी माँ ने सहेजा था जहाँ पर
बाद माँ के आज भी अपना वो कोना चाहती हूँ।

4
सहमी–सहमी–सी रहती है बूढ़ी माँ
अपनी बात कहाँ कहती है बूढ़ी माँ
बेटे खूब सयाने निकले हैं उसके
क्या कहना चुप ही रहती है बूढ़ी माँ
अपने ही घर में अपनों के बीच यहाँ
एक परायापन सहती है बूढ़ी माँ
दूध–दही देती थी कल तक बच्चों को
आसूँ अब पीती रहती है बूढ़ी माँ
घर पर अब अधिकार है बेटे–बहुओं का
बेबस–सी बैठी रहती है बूढ़ी माँ
अपनों से झिड़की ताने सुनते–सुनते
अँखियों से पल–पल बहती है बूढ़ी माँ
दुर्बल काया में कितनी सी ज़ान मगर
दर्द पहाड़ों–सा सहती है बूढ़ी माँ
बोझ बनी है घर में फिर भी बच्चों को
रोज़ दुआ देती रहती है बूढ़ी माँ।

अभिनव 'अरुण'
निराला नगर,
शिवपुरवा महमुरगंज, वाराणसी
मो. 9415678748

1
न होंगे फिर कभी ये हादसे भी
संभल जाएँ अगर हम आज से भी
कभी सोने की चिड़िया मानते थे
कि या करते थे बातें नाज़ से भी
परिन्दा बच गया है आँधियों से
चलो इसको बचाएँ बाज़ से भी
जमूरा मर के फिर से जी उठा है
तो अब पर्दा उठाओ राज़ से भी
तेरा चेहरा तेरी चुगली करे है,
कहो झूठा मगर विश्वास से भी
मज़ा कठपुतलियाँ बनने में है पर
कभी पूछा है अपने आप से भी
रियाया ग़म के आँसू पी रही है
न बच पाओगे तुम अब शाप से भी
नचाती भूख मुझ को तुझसे ज्यादा
सपेरा कह रहा है नाग से भी
न अब नरभक्षियों को भेज इस ओर
ये दुनिया भर गयी है बाघ से भी
फटाफट फैसला और सरक़लम फिर
मुहब्बत अब डरे है ख़ाप से भी
रईसों का इरादा और है कुछ ,
न रोटी अब मिलेगी नाच से भी।

2
जो तू सांस दे तो दे ज़िन्दगी जो दे ज़िन्दगी तो निबाह दे
मुझे आँख दे तो दे रोशनी जो दे रोशनी तो निगाह दे
तेरी राह में मेरा हर क़दम तेरी चाह में मेरी हर दुआ,
तेरी नेमतों की है आरज़ू मुझे दौलतें न अथाह दे
मेरी फ़िक्र में रहें नेकियाँ न बदी से कोई हो वास्ता
तू ही पर्वतों को दे चोटियाँ तू समुंदरों को अथाह दे
तू ही मंदिरों की ध्वजा में है तू ही मस्ज़िदों की मीनार में
तू ही पीर है तू ही औलिया तू ही हर किसी को पनाह दे
न रहे यहाँ कहीं मुफ़लिसी न हो भूख प्यास न ही जुल्म हो
हो खुशी का हर कहीं आसरा न किसी जुबान पे आह दे
तू ही क़ायनात का बादशा तू जहाँ का आलाकमान है
तू सदी में है तू ही लम्हों में तू ही दिन बरस तू ही माह दे
दे हरेक घर में मसर्रतें दे सुकून शहर ओ समाज में
जो अमन की करते मुख़ालफ़त उन्हें ऐ खुदा तू तबाह दे
तू पिता की फ़िक्र में है खुदा तुझे देखा माँ की दुआओं में
मेरी इल्तिज़ा तुझ से यही मेरे हक़ में तू न गुनाह दे।

3
झूठी उम्मीद की पतवार थमानेवाले
मेरे अपने थे मुझे छोड़ के जानेवाले
उनके हर लुत्फ़ पे मुझको भी सुकूं मिलता है,
मैं जो रोता हूँ तो हँसते हैं ज़मानेवाले
ऊब जाता हूँ दिखावे की रवायत से मैं,
दिल मिलाते ही नहीं हाथ मिलानेवाले
अब तो खुशबू भी नहीं फूल को पहचाने हैं
एक वो दौर था मिलते थे निभानेवाले
दाग़ मुझ में जो दिखाते हैं वही अपने हैं
आईने चंद मेरा हाल बतानेवाले
उनकी दस्तक ने ये एहसास जगाया मुझमें
जैसे घर ढूँढते आये हैं ख़ज़ानेवाले
हम मलंगों में कई रूमी कई खुसरो हैं
हम फ़क़ीरों में भी हैं झूमके गानेवाले।

4
मुहब्बत में हमारे साथ भी अच्छा हुआ होता
कभी ऐसा हुआ होता कभी वैसा हुआ होता
मैं लिखता ख़त तुम्हारे नाम का चोरी से छुप छुपकर
सभी से बच बचाकर फिर तेरा पढ़ना हुआ होता
मेरे घर के हर एक कोने में तेरी गन्ध है लेकिन
तेरा होने का भी मुझको कभी धोखा हुआ होता
शहर के पार्क की झुरमुठ में मिलते पकड़े जाते हम
मोहल्लों में हमारे नाम का चर्चा हुआ होता
गले मिलतीं पतंगें आसमाँ से लौट धरती पर
वो जलती धूप में छत पर कभी मिलना हुआ होता
पढ़ा उसने कहा था जब तसल्ली से कभी मैंने
यही सोचा कि मेरा नाम भी लहना हुआ होता
अगरचे ज़ीस्त की ये नर्सरी कुछ और चटख होती
जो इसमें इश्क़ का भी इक हँसी पौधा हुआ होता
गमों से दूर जाने की भले सूरत नहीं होती
खुशी के पास जाने का कोई नक्शा हुआ होता
गुज़र जाते हमारे दिन हमारी रात कट जाती
हमारे पास तेरे ख़त का इक टुकड़ा हुआ होता।

डॉ. नलिनी विभा 'नाज़ली'
देशाशीष, नारायण नगर,
जिला– हमीरपुर (हिमाचलप्रदेश)
मो. 9418304634

1
हमारी ख़ाक ठिकाना कहीं तो पाएगी
कहाँ की मिट्टी न जाने इसे बुलाएगी
वो दर जहाँ से बदन में हुई थी ये दाख़िल
उसी ही दर से मिरी रूह लौट जाएगी
हरएक कब्र लिया देख, की न उफ हमने
ऐ ज़िन्दगी! तू हमें और क्या दिखाएगी
सुकून पाए मिरी रूह अब क़रार मिले
अजल! तू ही मुझे उस नींद में सुलाएगी
मलाल 'नाज़ली' क्यूँ हो कि रूह छोड़ चली
ये देखना नए चोले में फिर से आयेगी।

2
हमेशा खुश वो हुआ है रुला–रुला के मुझे
दिए हैं ज़ख़्म ही बदले में इल्तिजा के मुझे
मिरी समझ से तो बाहर हुआ सुलूक उसका
सजा वो देता है क्यूँ जाने बिन ख़ता के मुझे
मैं क्यूँ घुटन से न बाहर निकल, सुनूँ उनको
हवाएँ कब से बुलाती हैं गुनगुना के मुझे
मैं अपने ख़्वाब मुकम्मल करूँगी हर सूरत
वो हार जाएँगे हर तरह आज़मा के मुझे
बिख़र न जाऊँ कहीं 'नाज़ली' मैं ज़ुल्मों से
हो कोई ऐसा जो रख ले कहीं छुपा के मुझे।

3
चलो इस दिल को फिर बच्चा बनाकर देखते हैं
खिलौने अपनी दिलजोई को लाकर देखते हैं
चलें गुलशन की ज़ानिब तितलियों से खेलने को
हथेली पर उन्हें अपनी बिठाकर देखते हैं
समुन्दर के किनारे बैठकर लहरों को देखें
सुनें कुछ उनकी कुछ अपनी सुनाकर देखते हैं
चलें दालान में बैठें, करें कुछ गुफ़्तगू हम
मक़ाँ को आज अपने 'घर' बनाकर देखते हैं
उसे वो ग़म, इसे ये ग़म, सभी हैं ग़म के मारे
चलें सब अपने–अपने ग़म भुलाकर देखते हैं
न मोबाईल, न कम्प्यूटर, न देखें आज टीवी
किताबों से जरा नज़रें हटाकर देखते हैं
अकेले में करें कुछ बात दीवारों से दिल की
जरा तन्हाई में आँसू बहाकर देखते हैं
हमारी दास्ताँ क्यूँ 'नाज़ली' हो सब पे ज़ाहिर
हम अपने ज़ख़्म दुनिया से छुपाकर देखते हैं।

4
लहू के रंग से है सुर्ख़ ये नदी फिर से
हवा के लब पे सदाएँ हैं ग़म भरी फिर से
ये ज़ल्ज़लों से तब उजड़े थे और बाढ़ से अब
गले पे तीर: नसीबों के है छुरी फिर से
तबाह हो गई बस्ती कोई मुक़ाम नहीं
कफ़न को लाशें पड़ी हैं तरस रही फिर से
ये ग़म की बदलियाँ छट जाएँगी कोई दिन में
खिलेगी धूप, बिखर जाएगी खुशी फिर से
ज़िग़र के ख़ून से सींचो इसे वतन वालो
ये खुश्क शाख़ भी हो जाएगी हरी फिर से
अदावतों का ये विष, नफरतों का ये तूफ़ां
ज़मीं पे काश! हो वारिद कोई वली फिर से
तू कर गुज़र तुझे ऐ 'नाज़ली' जो करना है
है क्या पता न मिले तुझको ज़िन्दगी फिर से।

विज्ञान व्रत
सेक्टर 25, नोएडा
मो.–9810224571

1.
मुझसे मिलकर फ़रज़ाने
लौटे होकर दीवाने
शायद मुझको समझे हों
आये थे जो समझाने
एक ज़रा–सी ग़लती पर
दुनिया–भर के जुर्माने
चेहरा तुलसी–चन्दन–सा
आँखों में हैं मैख़ाने
रख अपने पैमानों को
मेरे अपने पैमाने।

2
कुछ नायाब ख़ज़ाने रख
ले मेरे अफ़साने रख
जिनका तू दीवाना हो
ऐसे कुछ दीवाने रख
आखिर अपने घर में तो
अपने ठौर–ठिकाने रख
मुझसे मिलने–जुलने को
अपने पास बहाने रख
वरना गुम हो जाएगा
खुद को ठीक–ठिकाने रख।

3
मुझ पर कर दो जादू–टोना
एक नज़र ऐसे देखो ना
इतने दिन में घर आये हो
घर जैसे कुछ देर रहो ना
बादल हो तुम या खुशबू हो
बरसो खुलकर या बिखरो ना
ढूँढ़ न पाया खुद को घर में
छान फिरा हूँ कोना–कोना
तुमसे खुद को वापस क्या लूँ
रक्खो अब तुम ही रख लो ना।

4.
ख़ामुशी मेरी ज़बाँ है
वो मगर सुनता कहाँ है
सामने हैं आप लेकिन
आप तक रस्ता कहाँ है
जानता हूँ दुश्मनों को
फिर मुझे ख़तरा कहाँ है
छोड़िए भी मुस्कुराना
दर्द चेहरे से अयाँ है
ढूँढ़ना क्या है तुझे अब
मैं जहाँ हूँ तू वहाँ है।

5.
मैं निशाना था कभी
इक ख़ज़ाना था कभी
आपका हिस्सा हूँ तो
हक़ जताना था कभी
जान लेंगे जान कर
यह न जाना था कभी
वो ज़माना अब कहाँ
जो ज़माना था कभी
आपका किरदार हूँ
तो बचाना था कभी।

6.
मैं खिड़की वो परदा है
देखो तो क्या रिश्ता है
उसने अक्सर खुद को भी
गैर–नज़र से देखा है
उसने अपना नाम–पता
औरों से ही पूछा है
अबकी बार निशाना भी
वो दानिस्ता चूका है
रोज़ बदल जाता है जो
किस दुनिया का नक्शा है।

7.
आप कब किसके नहीं हैं
हम पता रखते नहीं हैं
जो पता तुम जानते हो
हम वहाँ रहते नहीं हैं
जानते हैं आपको हम
हाँ मगर कहते नहीं हैं
जो तसव्वुर था हमारा
आप तो वैसे नहीं हैं
बात करते हैं हमारी
जो हमें समझे नहीं हैं।

कमलेश्वर साहू
कातुल रोड
एस एफ लाईन
दुर्ग (मध्यप्रदेश)

खेत में कहाँ से आए जानवर मत पूछना
पेड़ से बिछड़े हुए पंछी का पर मत पूछना
दर हक़ीक़त सर छुपाने के लिए छत ही नहीं
ख़्वाब में मिल जाता है रहने को घर, मत पूछना
इस क़दर थी भीड़ मिट्टी तेल लेने के लिए
लोग चुप थे फिर हुआ कैसे ग़दर मत पूछना
ट्रेन में बैठे हुए हैं खुश भी हैं ग़मगीन भी
हो न जाए उम्र से लम्बा सफ़र मत पूछना
सिर्फ़ मिट्टी है यहाँ लोगों के दर्शन के लिए
जोदड़ों की सभ्यता का है नगर, मत पूछना।

रात का पहला पहर है कुछ न कुछ हो जाएगा
बच के क़ातिल की नज़र है कुछ न कुछ हो जाएगा
जबसे बदले लोगों ने अंदाज़ जीने की यहाँ
तबसे ही सहमा शहर हे कुछ न कुछ हो जाएगा
दुश्मनी बेख़ौफ करने की हमें आदत रही
दोस्ती का ख़ौफ सर है कुछ न कुछ हो जाएगा
हर घड़ी बेख़ौफ होकर बोलनेवाला वो शख़्स
चुप भला क्यों इस क़दर है कुछ न कुछ हो जाएगा
बरसों से आदत रही है इस अंधेरे की हमें
ये उजाले का सफर है कुछ न कुछ हो जाएगा।

ड्राइंग रूप में सजा कमल है पत्थर ही तो है
जिसपर तुमने लिखी ग़ज़ल है पत्थर ही तो है
दुनिया भर के लोग देखने आते हैं जिसे शय को
कहने को तो ताजमहल हे पत्थर ही तो है
चाँदी से पैबस्त चूड़ियाँ सोने की नक्क़ाशी
जिसके पीछे तू पागल है पत्थर ही तो है
पथराई आँखों में आँसू बहते हमने देखा
छूने में कितना कोमल है पत्थर ही तो है
मूरत से मत माँगो कुछ भी नहीं मिलेगा
कहने को माँ का आँचल है पत्थर ही तो है।

एक चेहरा था वो जो भाता रहा
दिल के सीसे में नज़र आता रहा
फूल ने तितली से इक दिन ये कहा
इस चमन का रंग अब जाता रहा।
जो लड़ाई में था शामिल ही नहीं
जीत का परचम वो लहराता रहा
जिसके होठों पे अमन था ही नहीं
कामयाबी का सिला पाता रहा
मैंने देखा फिर कभी न आसमाँ
बोझ इतना मेरे सर आता रहा।

चन्द्रभान 'राही'
सर्वधर्म कॉलोनी कोलार रोड
भोपाल–42 (मध्यप्रदेश)

तुमने दिया जो फूल वो पत्थर लगा मुझे
लहजा तुम्हारे प्यार का ख़ंजर लगा मुझे
फुटपाथ पर जो लाश पड़ी है उसी की है
लड़ता हुआ जो भूख से अक्सर लगा मुझे
कल तक जो ज़िंदगी में था नाकाम नमुराद
वो शख़्स आज मील का पत्थर लगा मुझे
घर को जला के रौशनी करने लगे हैं लोग
इस शहर का अजीब सा मंज़र लगा मुझे
'राही' न दे रहा हो ये तूफ़ान की ख़बर
सहमा हुआ सा आज समुन्दर लगा मुझे।

दुश्मनी के हाथों से रौशनी को लाना था
शम्मे–आरजू हमको इस तरह जलाना था
आपकी मोहब्बत का ये भी एक करिश्मा है
उस तरफ़ चला आया जिस तरफ़ न जाना था
डगमगा गई आख़िर नाव मेरी काग़ज़ की
आग के समुन्दर को पार करके जाना था
उनके एक वादे पर जान मेरी जाती है
ये तो आज़माने का सिर्फ एक बहाना था
मौसमें–बहाराँ में कल जहाँ गिरी बिजली
उस मुकाम पर 'राही' मेरा आशियाना था।

अब तसकिरे हमारे फ़सानों में रह गए
यादों के कारवाँ जो मकानों में रह गए
मुन्सिफ के सामने न गवाही किसी ने दी
चर्चे मेरे लहू के ज़बानों में रह गए
सच बात कहके मैं तो अकेला खड़ा रहा
कुछ लोग फिर भी हीले हवाले में रह गए
उनको नसीब हो न सका मक़सदे–हयात
जो शोहरतों की ऊँची उड़ानों में रह गए
'राही' मुझे तो आज भी उनका मलाल है
तो तीर बिन चलाए कमानों में रह गए।

आज कल यूँ भी कुछ चलन होगा
फूल कलियों से भी हवन होगा
पत्थरों के ही दिल तुम पाओगे
फूल–सा जिसका भी बदन होगा
पाट पर बैठे हैं सभी मज़हब
क्या सच ऐसा भी सपन होगा
आपसी बैर को मिटाओ तो
स्वर्ग अपना ही फिर वतन होगा
अब तो मरने को जी भी करता है
'राही' जुल्फ़ों का जो क़फ़ होगा।

सुषमा चौहान 'किरण'
जोधपुर (राजस्थान)

पीया गली को जाऊँ मैं
कैसे गीत सुनाऊँ मैं
चेहरे पर मुस्कान लिये
दुनिया को भरमाऊँ मैं
जीवन उसाका शूल भरा
फूलों से सहलाऊँ मैं
दुख दर्दों के मेले में
प्यार बाँट इठलाऊँ मैं
चाह 'किरण' की एक यही
पग–पग दीप जलाऊँ मैं

तेरी मेरी प्रीत अलग है
इस दुनिया की रीत अलग है
प्यार बाँटता है दुनिया को
उसका तो संगीत अलग है
वर्तमान देखा है जिसका
उसका देख अतीत अलग है
प्यार से जिसने जीता जग को
समझो उसकी जीत अलग है
एक 'किरण' ऊँचे भवनों में
आकर के भयभीत अलग है।

बिखरे और सँवर जाए
देखें कौन किधर जाए
जीवन तपती दोपहरी
शाम हुई लो घर जाए
भँवरा खुशबू के घर पर
नहीं गया है पर जाए
तेरा वहाँ बसेरा हो
जितनी दूर नज़र जाए
'किरण' ढूँढ़ता सूर्य गया
अब लो वहाँ सहर जाए।

शायद ये घर मेरा है
पसरा खूब अंधेरा है
मन में जितनी तस्वीरें
सबमें तुझे उकेरा है
माला के हर मनके पर
नाम गुना अब तेरा है
तेरी पलक जहाँ उठी हो
होता वहीं सवेरा है
आँसू सूखे आँखों के
बस पत्थर का डेरा है।

सूर्य प्रकाश अष्ठाना 'सूरज'
चटाईपुरा, बुधवारा,
भोपाल (म.प्र)

कहने को यूँ तो हमको हँसाती है ज़िन्दगी
लेकिन कभी तो ख़ून रुलाती है ज़िन्दगी
दो पल सुकून के न कभी हमको मिल सके
कितने अज़ीब खेल खिलाती है ज़िन्दगी
यह और बात है कि कोई सुन नहीं सके
तन्हाइयों में गीत सुनाती है ज़िन्दगी
शोहरत अगर मिले तो न मग़रूर हो कभी
ऊँचाइयों पे जाके गिरती है ज़िन्दगी
'सूरज' की हर किरण में मोहब्बत की तेज़ धूप
अहसास सिर्फ़ इतना दिलाती है ज़िन्दगी।

दिलों को तोड़नेवाले सबक़ देत हैं नफ़रत का
न समझे हैं, न समझेंगे मज़ा क्या है मोहब्बत का
जो महलों में विराजे हैं वो दादे–ऐश देते हैं
करिश्मा सब है दुनिया में वे मजदूरों की मेहनत का
अदावत और नफ़रत की डगर पर छोड़ दो चलना
उसी रास्ते को अपनाओ जो रास्ता हो मोहब्बत का
जला देगा चमन को, यह हक़ीक़त गर नहीं समझे
मिटा देगा तुम्हें एक रोज़ ज़ज़्बा यह अदावत का
मोहब्बत बाँट दो जैसे कि 'सूरज' धूप बाँटे हैं
छुपा है राज़ इसमें एकता का और हिफ़ाज़त का।

फूलों की खुशबुओं को चुराती रही हवा
भँवरों के दिल–दिमाग पे छाती रही हवा
दुनिया की उलझनों से बहुत दूर–दूर तक
तन्हाइयों में गीत सुनाती रही हवा
देखा सुकून जब भी समन्दर की गोद में
कुछ आँधियाँ भी साथ में लाती रही हवा
जो रह सका न अपने इरादों में कामयाब
उसको हर इक क़दम पे सताती रही हवा
बर्फ़ीली वादियों से किया धूप से सफ़र
'सूरज' से कैसे आँख मिलाती रही हवा।

क्या पाएँगे पेड़ों के बिखराव से
जीवन साँसें टूटेंगी अलगाव से
छाया चित्र भी बोला करते हैं कुछ–कुछ
बातें हो जब अन्तर्मन के भाव से
हँसती आँखें जब आँसू छलकाती हैं
टीस पुरानी भी रिसती है घाव से
कैसे संगम–सा घुल–मिलकर रह पाएँ
बर्फ़ हुए दिल दंगे और तनाव से
दे जाते हैं कितना सुख वा मीठे पल
माँ का आँचल याद है पीपल छाँव से।

शकील आजमी

अब्दुल्ला टावर, नयानगर
मीरा रोड (पूर्व) मुम्बई

सदा लगाऊँ तो भी घर में कौन बोलेगा
अब इतनी रात को दरवाजा कौन खोलेगा
ज़रा–सी देर में टूटेगा शाख़ से पत्ता
फिर उसके बाद हवाओं के साथ हो लेगा
मैं इक चिराग़ हूँ मिट्टी का, टूट जाऊँगा
ज़माना मुझको अंधेरों में जब टटोलेगा
न जाने कब मेरे अंदर का जहर कम होगा
न जाने कब मेरे कानों में शहद घोलेगा
अगर ये चाँद भी बादल की नज़र हो जाए
तो सुब्ह तक मेरी आँखों में कौन डोलेगा।

इश्क़ किससे करूँ बैराग कहाँ से लाऊँ
दिल जलाने के लिए आग कहाँ से लाऊँ
मैंने भी चाँद को चाहा है बड़ी शिद्दत से
रात के जैसा मगर भाग कहाँ से लाऊँ
ज़िन्दगी! मैं तेरे सुर–ताल से नावाक़िफ़ हूँ
मुझको गाने के लिए राग कहाँ से लाऊँ
मेरे पानी से नमक छान लिया दुनिया ने
मैं किनारों के लिए झाग कहाँ से लाऊँ
मसअला ज़हर की ख़्वाहिश का भी पेचीदा है
जिस्म डसवाऊँ मगर नाग कहाँ से लाऊँ।

छाँव में रह के मेरी प्यास न मर जाए कहीं
ज़ख़्म भर जाने से एहसास न मर जाए कहीं
मेरी बहती हुई आँखों में तेरे ख़्वाब की फ़स्ल
बाढ़ के पानी में ये घास न मर जाए कहीं
आके लेजा! कि बहुत शोर है दिल में मेरे
तेरी तन्हाई मेरे पास न मर जाए कहीं
घोंसला देखके जागी है मकाँ की ख़्वाहिश
सोचता हूँ मेरा बनबास न मर जाए कहीं
ऐसी मायूसी कि बरसों से हँसी आई नहीं
ज़िन्दगी! मुझमें तेरी आस न मर जाए कहीं।

रात, सर्दी, ख़ौफ, जंगल और मैं
एक लड़की, एक कम्बल और मैं
देर तक करते हैं तेरी गुफ़्तगू
ऐश्ट्रे, व्हिस्की की बोतल और मैं
रूह तक जलते हुए माथे पर शोर
इक हथेली नर्म कोल और मैं
गाँव, मकतल, बचपना, तख़्ती, किताब
खेल, थप्पड़, माँ का आँचल और मैं
टूटते रहते हैं मिट्टी के लिए
फूल, खुश्बू, रंग, बादल और मैं।

नसीमा 'निशा'

कालका माता रोड, पहाड़
उदयपुर (राजस्थान)

ये बच्चे हमारे सयाने हुए हैं
ख़याल अब हमारे पुराने हुए हैं
वो नानी, वो दादी के क़िस्से पुराने
सभी भूले–बिसरे फ़साने हुए हैं
कहाँ है वो ममता भरी छाँव तुम पे
कहाँ अब तुम्हारे ठिकाने हुए हैं
कब आओगे नूरे–नज़र मेरे आगे
तुम्हें देखे अब तो ज़माने हुए हैं
कभी साथ धड़के 'निशा' दिल हमारे
तो फिर कैसे हम यूँ बेगाने हुए हैं।

ऐ खुदा, ऐ खुदा, ऐ खुदा
हर बशर रो रहा, ऐ खुदा
हर तरफ़ आज दुश्वारियाँ
वक़्त गया आ गया ऐ खुदा
है दुआ वो सदा खुश रहे
कर मुझे ग़म अता ऐ खुदा
मरते–मरते रही जुस्तजू
उसका जलवा दिखा ऐ खुदा
कर रही है 'निशा' ये दुआ
दूर रख हर बला ऐ खुदा।

मेरा दिल यूँ न दुखाने की कोई बात करो
प्यार में यूँ न सताने की कोई बात करो
ले उड़ा सूए–फलक प्यार तुम्हारा मुझको
आसमाँ से न गिराने की कोई बात करो
मेरे हाथों की लकीरों में बसे हो जानम
तुम न यूँ उनको मिटाने की कोई बात करो
किसने देखे हैं यहाँ यार मेरे सातों जनम
इसी जनम में निभाने की कोई बात करो
तुमको चाहा है, फकत, तुमको चाहेगी 'निशा'
भूलने की, न भुलाने की कोई बात करो।

नदी की धार, समन्दर, लहर किनारों ने
लगाया पार, हमेशा ही तेज़ धारों ने
सभी को रौशनी मिलती है आसमाँ से
हमें तो अँधेरा ही बख़्शा है चाँद तारों ने
असीर हौसला उड़ने का दे रहे लेकिन
हमारे पंख काट दिये हैं हमारे सहारों ने
किसे करें शिकायत कि आईना अपना
किया है चूर–चूर खुद अपने प्यारों ने
'निशा' ख़िज़ा ने हमारा ज़रूर साथ दिया
फ़रेब तो बारहा हमको दिया बहारों ने।

किसने कहा ज़मीन पर तारे बिछा के देख
मिट्टी का इक चिराग़ ज़मीं पर जला के देख
मुमकिन है आसमान की तू छू ले सरहदें
बस एक बार हाथ तो अपना उठा के देख
जूते घिसे हुए हैं तो इसका मलाल क्या
नंगे हैं तेरे पाँव इन्हें आजमा के देख
मिलते हैं जिस उजाड़ में हम तुम कभी कभी
मैं आज जा रहा हूँ वहाँ तू भी आ के देख
गर ये नया समय है तुझे माफ़िक नहीं तो क्या
अपने पुराने दोस्तों से मिल–मिला के देख
कमरे का तापमान बदल जाए क्या पता
तन्हाइयों के साथ ज़रा गुनगुना के देख
मैंने ये सब चिराग लहू से जलाए हैं
तूफान तेरी ज़िद है तो इनको बुझा के देख
इस रास्ते पे कहकशाँ की बात है फजूल
किरचों पे चल सके तो तेरे साथ आ के देख।

2.
ये कबीरा की चादर है यारो इसे आज़माना कभी
आपका जी करे तो इसे ओढ़ना या बिछाना कभी
ये अज़ब बात है, बाग के मालियों को पता न चला
नीम के पेड़ से इक गिलहरी का था दोस्ताना कभी
चाय का वो पुराना ठिकाना जहाँ रोज मिलते थे हम
तुम कभी आओ तो देखने जाएँ हम वो ठिकाना कभी

ज्ञान प्रकाश विवेक
बहादुरगढ़–124507
हरियाणा
मो.–9813491654

इक हिरण गिर पड़ा है सुलगती हुई रेत पर बादलो
तुम अभी जा रहे हो मगर लेके बरसात आना कभी
एक मिट्टी का दीपक हवाओं से इतना सताया हुआ
कर रहा है अगर वो निवेदन उसे न बुझाना कभी
ज़िन्दगी! तेरी सरहद के उस पार मैं भी चला जाऊँगा
खत्म हो जाएगा इस जहाँ से मेरा आबोदाना कभी

5.
तूने लपटों को जो आँखों में उतारा होता
तो हर इक अश्क़ मचलता हुआ पारा होता
वो तो जोगी की बसाई हुई इक कुटिया थी
बादशाहों का वहाँ कैसे गुजारा होता
ज़िन्दगी होती है क्या इसको समझने के लिए
अपने अंदर के अहंकार को मारा होता
दस्तकें दर पे बहुत देर तलक दीं उसने
काश! इक बार मेरा नाम पुकारा होता
वो जो धरती पे भटकता रहा जुगनू बनकर
कहीं आकाश में होता तो सितारा होता।

4.
मुझे मालूम है भीगी हुई आँखों से मुस्काना
कि मैंने ज़िन्दगी के रंग सीखे हैं कबीराना
न कुर्सी है न मेजें हैं, न मेरे घर में सोफा है
कि मेरे घर आलम है फ़कीराना–फ़कीराना
वो जिस अंदाज से आती है चिड़िया मेरे आँगन में
जो तुम आओ मेरे घर में तो उस अंदाज से आना
यहाँ के लोग तो पानी की तरह सीधे–सादे हैं
उन्हें आता है जीवन के हर इक साँचे में ढल जाना
अँधेरे रास्ते पे दफ़अतन मुझको मिला जुगनू
निभाया दूर तक उसने भी मेरे साथ याराना।

वर्षा सिंह
एम-III, शान्ति विहार,
रजा खेड़ी, सागर (म.प्र.)
फोन - 07582-230088

(1)
अब कहीं ताज़गी नहीं मिलती
होंठ पर भी हँसी नहीं खिलती
ज़िन्दगी थम के रह गई जैसे
इक क़दम भी ज़रा नहीं चलती
प्यार मैंने सदा सही माना
लोग कह लें भले इसे ग़लती
लौट आएँगे दिन कभी अच्छे
धूप, चाहत की रोशनी मलती
कौन 'वर्षा' को आज समझाए
हाल दुनिया का जान कर घुलती।

(2)
हो गया गुम मेरी वफ़ा लेकर
कल मिला था नई अदा लेकर
वो न समझेगा ज़िन्दगी क्या है
जो उजड़ता रहा दुआ लेकर
मैं उसे ढूँढने को निकली हूँ
उसके ई-मेल का पता लेकर
मशवरा दे रहा था लोगों को
एक टूटा-सा आईना लेकर
रात भर इस कदर हुई 'वर्षा'
ज़लज़ले आ गए घटा लेकर।

(3)
चाह नीली, दुआ हरी लिखना
हर सज़ा से उसे बरी रखना
ये हुआ है असर हवाओं का
आ गया दर्द को ख़ुशी लिखना
फ़ोन पर कह दिया 'विदा' उसने
जानता था जो दोस्ती लिखना
वक़्त ने ही मुझे सिखाया है
रेत की देह में नदी लिखना
उम्र के हर पड़ाव में 'वर्षा'
आँधियों में भी आरती लिखना।

(4)
चाहतों से गुज़र के देखा है
अपने भीतर उतर के देखा है
ख़ूब सपने हैं! कभी हँस-हँस के
तो कभी आँख भर के देखा है
क्या कहूँ क्या था रुख़ हवाओं का
पत्तियों-सा बिख़र के देखा है
एक उम्मीद थी वो आएगा
याद सौ बार करके देखा है
कोई रुकता नहीं कभी 'वर्षा'
चलते-चलते ठहर के देखा है।

हीरा प्रसाद 'हरेन्द्र'
कटहरा, सुलतानगंज, भागलपुर
मो.–9931854424 6

1.
हसरत नहीं है दिल में, अरमान भी नहीं
जिन्दा नहीं हूँ लेकिन, निष्प्राण भी नहीं
अपना बनाकर कोई नाकाम इस कदर
मुझको करेगी इसका अनुमान भी नहीं
लाखों मनाऊँ मन को अब मना भी गया
आँखों नहीं है आँसू, मुस्कान भी नहीं
मानस–पटल पर अंकित सारी वही अदा
शिकवा नहीं है कुछ भी गुणगान भी नहीं
मोहब्बतों का प्याला पीकर खुशी–खुशी
मुश्किल नहीं जो जीना आसान भी नहीं
उल्फ़त–नशे का 'हीरा' ऐसा हुआ असर
है कौन अपना इसकी पहचान भी नहीं।

2.
ओंठ तेरे लाल चेरी या गुलाब हैं
पंक्तियाँ भी दन्त की क्या ही कमाल हैं
झील–सी आँखें हिरण को मात दे रहीं
सामने लाऊँ किसे खुद बेमिशाल हैं
नैन से टपके अगर जल हर्ज तो नहीं
पर टपकते देखने मिलते शराब हैं
इश्क की बीमारियाँ होतीं जिन्हें भला
कौन चंगा कर सके वे लाइलाज हैं
हम अगर ठुकरा न देंगे जब दहेज को
बेटियाँ कल्याण के सब व्यर्थ ख्वाब हैं
नाश करता है नशा यह सोचना सही
आदतें 'हीरा' नशा की ही ख़राब हैं।

3.
मेरे ज़िगर की प्यास तुम हो दिलरुवा
खोया हुआ उल्लास तुम हो दिलरुवा
ज्वाला जलाती है विरह की तन–वदन
मादक मिलन की आस तुम हो दिलरुवा
रचना अलंकारी, मनोहर मोदकर
उसमें यमक, अनुप्रास तुम हो दिलरुवा
मदहोश कर जो मोह लेता मन–मधुप
सौन्दर्यमय मधुमास तुम हो दिलरुवा
चर्चा तुम्हारी आशिकों के होंठ पर
मेरे लिए कुछ खास तुम हो दिलरुवा
धोखा–फरेबों से भरा संसार यह
मेरा अटल विश्वास तुम हो दिलरुवा
शोभा सुमन 'हीरा' सकल उद्यान की
सारे सुमन का वास तुम हो दिलरुवा।

4.
फूल में ज्यों गंध की अनिवार्यता
वाक्य में त्यों छन्द की अनिवार्यता
भाव की अभिव्यक्तियाँ सुन्दर जहाँ
काव्य में पदबंध की अनिवार्यता
गर्मियों में जब झुलसता तन–वदन
मानिए तब ठंढ की अनिवार्यता
बाढ़ से राहत मिले इस देश को
हर जगह तटबंध की अनिवार्यता
बात अपनी थोपना 'हीरा' जहाँ
सच वहाँ मतिमन्द की अनिवार्यता।

लोदी मुहम्मद शफी खान
'बेकल' उत्साही
गीतांजलि, सिविल लाइन, बलरामपुर (उ.प्र.)
मो.–9415120838

1
फटी कमीज़ नुँची आस्तीन कुछ तो है
ग़रीब शर्मो–हया में हसीन कुछ तो है
किधर को भाग रही इसे ख़बर भी नहीं
हमारी नस्ल बला की ज़हीन कुछ तो है
तुम्हें तो चर्ख़ पे उड़ने से फ़ुरसतें हैं कहाँ
हमारे पाँव के नीचे ज़मीन कुछ तो है
लिबास क़ीमती रखकर भी शहर नंगा है
हमारे गाँव में मोटा महीन कुछ तो है
गुमान अहले–ख़िरद को हर इक दलील पे है
हम अहले–दिल को खुदा पर यक़ीन तो है।

2
वो तो मुद्दत से जानता है मुझे
फिर भी हर इक से पूछता है मुझे
रात तन्हाइयों के आँगन में
चाँद तारों से झाँकता है मुझे
सुबह अख़बार की हथेली पर
सुर्ख़ियों में बिखेरता है मुझे
होने देता नहीं उदास कभी
क्या कहूँ कितना चाहता है मुझे
मैं हूँ 'बेकल' मगर सुकून से हूँ
उसक ग़म भी सँवारता है मुझे

3
सादगी सिंगार हो गई
आईनों की हार हो गई
आँख ही थी ज़ख़्म की दवा
आँख ही कटार हो गई
चाँद नाव में उतर पड़ा
अब नदी अपार हो गई
दोस्तों का कारवाँ तो है
दोस्ती गुबार हो गई
'बेकल' ओर अश्क बह चले
जब हँसी शिकार हो गई।

4
जो मेरा है वो तेरा भी अफ़साना हुआ तो
समझे थे जिसे अपना वा बेगाना हुआ तो
क़स्बे की ज़ियारत का सफ़ा करने चले हो
रस्ते में कहीं कोई सनम–ख़ाना हुआ तो
तुम क़त्ल से बचने का जतन खूब करो हो
क़ातिल का अगर लहजा शरीफ़ाना हुआ तो
कम ज़र्फ को इतनी न मुहब्बत से पिलाओ
लबरेज़ अगर बक़्त का पैमाना हुआ तो
'बेकल' ने तुझे दुश्मने जानी ही कहा है
तुझसे जो अचानक कहीं याराना हुआ तो।

ग़ज़ल : **मनीष बादल**
भोपाल, मध्यप्रदेश

मेरे दर पर सभी ज़ख़्मों की सिलाई होती
फूल टँकते हैं, क़रीने से कढ़ाई होती
यूँ नहीं गिरती कभी रिश्तों की सब दीवारें
गर तरीके से सभी ने की तराई होती
तुमको जाना था चले जाते, मगर कह जाते
अपनी ऐसे तो नहीं जग में हँसाई होती
सच–बयानी से लगी चोट बड़ी सीने में
सच को कहने में समझ तुमने दिखाई होती
रौशनी वो है चुराता सदा ही सूरज की
चाँद की बस यही थोड़ी–सी कमाई होती
वो तो रहती है दिला–जाँ में उमर भर 'बादल'
जाने क्यों लोग कहें बेटी पराई होती

किसी भाषा में लिक्खूँ, ग़ज़ल की बस नक़ल लगती
मिलाता हूँ ज़रा उर्दू, ग़ज़ल तब ही ग़ज़ल लगती
अदब के बाग़ में पौधे गुलों के लाल–पीले हों
मगर उर्दू की खुशबू हो, तभी खिलती फ़सल लगती
मिले हिंदी से जब उर्दू, मसाइल सब सुलझते हैं
अक़्ल में दोष वालों को, मुहब्बत ये ख़लल लगती
नज़ाकत भी है उर्दू में, नफ़ासत भी है उर्दू में
यहाँ है राब्ता दिल से, यहाँ कम ही अक़्ल लगती
कभी अटका हूँ नुक़्ते में, कभी भावों को मिलते हर्फ़
कभी उर्दू लगे मुश्किल, कभी 'बादल' सरल लगती

इसी इक बात पर कुछ लोग बस नाराज़ मिलते हैं
कि मेरे क्यों नहीं उनसे कभी अंदाज़ मिलते हैं
कभी भावों में बहकर तुम यूँ दिल के राज़ मत खोलो
मियाँ, इस दौरे–हाज़िर में नहीं हमराज़ मिलते हैं
मैं अबतक बेटियों पर इसलिए कुछ लिख नहीं पाया
नहीं भावों को मेरे हू–ब–हू अल्फ़ाज मिलते हैं
घड़े आधे भरे हैं जो, छलकते हैं वही ज़्यादा
किताबें दो जो पढ़ लेते, उन्हीं में नाज़ मिलते हैं
सितम बेशर्म जब होता तभी मंज़र दिखे ऐसा
कि बस्ती के सताए लोग हम–आवाज़ मिलते हैं
कभी तुम साफ़ चश्में से भी इनको देखना 'बादल'
कि अक्सर ख़ास जो बनते, छिपाए राज़ मिलते हैं।

उदासी और हरदम की ग़मी अच्छी नहीं लगती
ज़माने में मुहब्बत की कमी अच्छी नहीं लगती
रखो तुम आँख में आँसू, छुपा ज़ालिम ज़माने से
जहाँ इज़्ज़त न इनकी हो, नमी अच्छी नहीं लगती
तुम्हारा ख़ैर मक्दम है अगर दो साथ जीवन भर
इनायत यूँ किसी की मौसमी अच्छी नहीं लगती
जो बिछड़े राह में तुमसे भुलाना तुम नहीं उनको
कभी भी धूल यादों में जमी अच्छी नहीं लगती
तुम्हारे रूठने की ये आदा सीमा में अच्छी है
सुनो, ये हर समय की बरहमी अच्छी नहीं लगती
ख़ामोशी येन हो 'बादल' किसी तूफ़ाँ के पहले की
यूँ हलचल इन फ़िज़ाओं में थमी अच्छी नहीं लगती।

नेमीचंद जैन

नगर ये आपका काफी मुझे लुभाता है
कोई तो है जो मुझे पास अब बुलाता है
बहुत उदास है ये मन अभी चली आओ
फुहार का नया मौसम प्रिये सताता है
वफ़ा की राह ये साथी बहुत निराली–सी
निशान मंज़िलों का भी नज़र न आता है
क़रार प्यार का मीठा बहुत सुहाना–सा
मगर निभाने में जीवन फिसल–सा जाता है
बिछुड़ के शाख़ से पत्ता कहाँ गया होगा
कभी–कभी मुझे भी ये ख़याल आता है।

2.
कभी दिल गीत गाता है
कभी कोई लुभाता है
किसी की आँख का काजल
किसी पर जुल्म ढाता है
कहो बातें कभी दिल की
कहो क्या ग़म सताता है
उधर कोई नहीं जाता
जिधर सैलाब आता है।
बहुत है प्रेम में उलझन
बहुत सावन रुलाता है
कोई रोता नहीं होगा
कोई सब भूल जाता है
अभी है इश्क का मौसम
अभी 'राही' बुलाता है।

3.
नहीं दिखता किनारा
कहाँ कोई हमारा
बहुतों लगता सुहाना
निगाहों का सहारा
वहीं थे हम सदा–से
कहाँ उसने पुकारा
न जाने कब खुलेगा
सियासत का पिटारा
सुना है आ चुकी है
लहर घातक दुबारा
चढ़ाओ तीर अर्जुन
नहीं झुकना गवारा
तुम्हारी आँख है या
मचलता इक सितारा
बिना तेरे नहीं है
प्रिये मेरा गुज़ारा।

अरुण कुमार वर्मा
जवाहर नवोदय विद्यालय
पदमी मंडला, मध्य प्रदेश

1
घर में ही संवाद नहीं है
कब बोले कुछ याद नहीं
हित अपना ही सबसे ऊपर
और कोई विवाद नहीं है
सच्ची शांति प्रीति से मिलती
इसमें कोई अपवाद नहीं है
चिह्न चिह्न कर जबसे बँटता
मिलता अब प्रसाद नहीं है
अपने ही घर सिर्फ मने दिवाली
अधिक और फरियाद नहीं है
यह तो मन का भ्रम है प्यारे
कोई भी फौलाद नहीं है
जिसके मन में भेद न पलता
उसको कभी अवसाद नहीं है।

2
अमन की रोशनी के लिए इक दीप जलाया होता
अपनी खुशियों में कभी गैरों को बुलाया होता
पत्थर खाकर भी ये शीशे न टूटते कभी
एहसास अपनेपन का हल्का सा जताया होता
ना होती तकरार धर्म की मुल्क़ में इस क़दर
यदि हाथ इबादत के लिए अदब से उठाया होता
कहने को सब कहेंगे सदा ज़लसा रहे
मसीहा बनकर कोई सामने तो आया होता
ताज़ की आग फिर से ठंढी पड़ चुकी
भारत को काश इस बात पर गुस्सा तो आया होता।

3
घर नहीं अब तो दीवार तलाशते हैं
इस भीड़ में हमेशा दो चार तलाशते हैं
लफ़्ज़ों के हेरफेर में फँस चुके हैं हम
शब्दों के बीच फिर से प्यार तलाशते हैं
वतन की हर शाख को जो लूट रहे हैं
बनकर वफादार वही गुनाहगार तलाशते हैं
शहरों की आबोहवा में पल रहा है गाँव
अदीबों का क्या कहना आज भी उस में मनुहार तलाशते हैं
रात के अँधेरे में अमन चैन छीनने का आलम
दिन के उजाले में वही शांति का कारोबार तलाशते हैं।

4
लगता है वो पास बहुत है
बस इतना एहसास बहुत है
सच क्या है ये वह ही जाने
दिल को तो विश्वास बहुत है
बिन लफ्जों की बंद लबों से
की गई अरदास बहुत है
संशय के वीरान सफर में
आंसू और उल्लास बहुत है
लोग उसे कुछ भी कहते हों
मेरे लिए वह खास बहुत है
चाहत है बस एक झलक की
फिर भी मन उदास बहुत है।

ज्ञानेन्द्र पाठक,
पीरबटावन, बाराबंकी,
मो. 9452258787

1
अच्छा है या खराब मुझे कुछ पता नहीं
दुनिया तेरा हिसाब मुझे कुछ पता नहीं
मुद्दत से नींद आँखों में आई नहीं मेरे
कहते हैं किसको ख़्वाव मुझे कुछ पता नहीं
उसने किया सवाल तुझे मुझसे प्यार है
मैंने दिया ज़वाब मुझे कुछ पता नहीं
भीतर से मेरे कोई मुझे दे रह सदा है
कौन ये, ज़नाब मुझे कुछ पता नहीं
आँसू अता किये हैं जो महबूब आपने
जमजम हैं या शराब मुझे कुछ पता नहीं
इतना पता है कर्ज तेरा मुझपे है सनम
उसका मगर हिसाब मुझे कुछ पता नहीं
तुझको कभी भी दिन के उजाले नहीं मिले
कैसा है आफ़ताब मुझे कुछ पता नहीं
साक़ी न मुझसे पूछ मेरी तिश्नगी की हद
थोड़ी–सी दे शराब मुझे कुछ पता नहीं।

2
गुमराह हम हुजूर बहुत दिन नहीं रहे
अपनी जड़ों से दूर बहुत दिन नहीं रहे
सदियों में जानवर से हम इंसाँ बने मगर
बहशत की जद दूर बहुत दिन नहीं रहे
उस आँखों से बुजुर्ग के जाने के बाद फिर
पर के अदब शऊर बहुत दिन नहीं रहे
जिनको गुमाँ था अपने जवानी के दौर पर
वे सब गुमाँ में चूर बहुत दिन नहीं रहे
बहके हमारे दिल भी फसादों के दौर में
दिल में मगर फितूर बहुत दिन नहीं रहे।

3.
कभी गालिब कभी मोमिन कभी अख़्तर हूँ मैं
हूँ समझता है तेरी बज़्म का जोकर हूँ मैं
तू मुझे ढूंढ रहा है कहाँ रस्ते रस्ते
झाँक कर देख तेरी रूह के भीतर हूँ मैं
तू है मूरख मुझे रद्दी में दबा रक्खा है
गौर से देख ले एग्जाम का पेपर हूँ मैं
रात तन्हाई में बोली थी आना ये मुझसे
तेरी कमजोरी नहीं हूँ तेरा जेवर हूँ मैं
तेरे नुकसान पे नम है मेरी दोनों आँखें
बर्ना तू जानता है सब्र का अम्बर हूँ मैं
तू समझता है मुझे तूने दबा रक्खा है
मैं समझता हूँ तेरी नींव का पत्थर हूँ मैं।

4
उजाला अब न साया रह गया है
दिया बुझ करके तन्हा रह गया है
यहाँ अब कौन है जो दर्द बाँटे
यहाँ अब कौन अपना रह गया है
उतर आये सितारे सब जमीं पर
फलक पर चाँद तन्हा रह गया है।
दीये की लौ ये शब से पूछ बैठी
अभी कितना अँधेरा रह गया है
बुझा डाले दिये यादों के हमने
मगर फिर भी उजाला रह गया है।

डा.नूतन कुमारी
नूतन नगर, जमुई
मो.नं. 9430087284,
7004175832

1
धरती पे आसमान की चादर लिए हुए
खानाबदोश कान्धे पे हैं घर लिए हुए
मिलती नहीं रिहाई अगर हौसिला नहीं
बैठे रहो क़फ़स में यूँ ही पर लिए हुए
मैं हालते जुनूं में भी भूली नहीं उसे
सहरा में हूँ मुक़ीम गुले तर लिए हुए
सुन्दर सा एक प्यासा भटक आए काश इधर
गोरी खड़ी है द्वार पे गागर लिए हुए
इस मिस्रा ए तरह पे गिरह, माज़िरत जनाब
उनसे मिले तो मीना व सागर लिए हुए
'नतून' मैं जिसके वासिते दीवानी हो गई
वो भी खड़ा है हाथ में पत्थर लिए हुए।

2
इस अँधेरे को और क्या कहिए
चाँद तारों का सिलसिला कहिए
बन्द आँखों में है जहाँ सारा
इस हक़ीकत को मोजज़ा कहिए
हो रही हैं जो दिल पे दस्तक सी
आस कहिए कि आसरा कहिए
ज़िस्मो–जाँ में घना अँधेरा है
जो मुनव्वर है उसको क्या कहिए
आज भी दिल में वो ही रहते हैं
दिल से दिल का ही राब्ता कहिए
बाद मुद्दत के दिल हुआ शादाब
इसको मौसम की खुश अदा कहिए
रब ने खुशियाँ जो भेजी हैं घर में
सर–ब–सर अब तो मरहबा कहिए
एक तस्वीर दिल में रहती है
इश्क़ कहिये या आशना
कौन 'नतून' का होगा तुम सा अब
इस करम का भी शुक्रिया कहिए।

3
ग़ज़ल का शेर कह कुछ नाज़ुकी से
लगे यूँ ज़िन्दगी है आशिकी से
बहुत सीखा है मैंने दोस्ती से
मगर सीखा बहुत कुछ दुश्मनी से
मुझे मत आजमाना दिलग्गी से
बहुत पछताओगे फिर तुम खुदी से
जहाँ बहती नहीं उल्फ़त की दरिया
तो मरता है वहाँ दिल तिश्नगी से
गले से जब मिला सावन ज़मीं तो
मुहब्बत हो गई फिर ज़िन्दगी से
हवा का फूल से रिश्ता है प्यारा
न लेना जान उसकी बेरूखी से
बदौलत हो मेरे चाहूँ मिटा दूँ
ये बादल कह रहा सीधी नदी से
किया बदनाम जाता नाग को ही
निकलता विष भी देखा आदमी से
शिकारी जाल ले बैठा जुबाँ का
उलझ जाना नहीं खुद उस छली से
कपट छल से रंगी चादर हटा दो
मिलेगा चैन दिल को सादगी से
पलट कर क्या निहारे राह को हम
सलीक़ा सीख 'नतून' इस नदी से।

4
रब की वो जीती–जागती तस्वीर सी लगी
दुनिया में एक माँ ही मुझे पीर सी लगी
हरगिज़ नहीं मैं कारवाँ की मीर सी लगी
मैं भी तो राहें इश्क़ की रहगीर सी लगी
हाथों की इन लकीरों का क्या काम रह गया
मेहनत की एक रोटी ही तकदीर सी लगी
तस्वीर इक निगाह में आई तो क्या हुआ
लगता है मेरे सीने में शमशीर सी लगी
कलियों का रूप रंग ही बदरंग हो गया
मुझको तो अपने दर्द की तासीर सी लगी
यादों के खजाने को जहाँ दफ़्न किया था
फिर आज क्यों वही ज़मीं ज़ागीर सी लगी
बचपन की जब से याद में गुम हो गयी हूँ मैं
यादों की हवेली मुझे तामीर सी लगी
देखा था चाँदनी में नहाए हुए उसे
बल्लाह वो गरीब बेनज़ीर सी लगी
उतरी नहीं हूँ मैं भी परी लोक से मगर
'नतून' भी अपने रांझे को इक हीर सी लगी।

सपना चन्द्रा
कहलगाँव
भागलपुर (बिहार)

दिल्लगी उसी से जो दिल से नहीं था
सफ़र में कोई भी साहिल नहीं था
कुछ उसने कहा, कुछ दिल ने सुना था
कभी मग़र वो हासिल नहीं था
चेहरा चेहरों में कोई आमिल नहीं था
सितारों सा कोई झिलमिल नहीं था
ख़्वाहिशों की ख़ातिर झुक जाते मग़र
तबीयत में मेरे यह शामिल नहीं था
शराफ़त से जीना ही उसूल ज़िंदगी का
उनको लगा कि मैं क़ाबिल नहीं था
बात अपनी आख़िर समझाता किसे मैं
दो–चार से ज्यादा फ़ाज़िल नहीं था।

राजेश पाठक
द्वारा सांख्यिकी कार्यालय
गिरीडीह (झारखंड)
मो.–9113150917

लिखे को आज भी सबको मिटाना आता है
भूले ग़र राह कोई तो दिखाना आता है
महल में रह रहे जो लोग जीवन को बिताते
जंगलों में कभी एक दिन, बिताना आता है
राह में शूल, काँटे तो पड़े मिलते हैं अक्सर
मग़र हों फूल ही बस फूल, बिछाना आता है
ज़हर वो आज भी देते उगल बातों ही बातों में
कभी भूल से भी अमृत, पिलाना आता है
इन्हें तोड़ो उन्हें छोड़ो यही देते रहे तालीम
जो टूटा है जुड़े कैसे, सिखाना आता है
रहें इक साथ फिर भी दूरियाँ आती नज़र सबमें
किसी भी एक को सबसे, मिलाना आता है
उमर बीती मग़र न रोप पाए एक भी पौधा
मग़र है इल्म कि बरग़द, गिराना आता है।

शिवकुमार सुमन
पिपरा, चौथम, खगड़िया
(बिहार) मो.–9801579885

1
अभी तो मिली है नजर धीरे–धीरे
करेगी महुब्बत असर धीरे–धीरे
हँसीं वादियाँ वो बुलाने लगेगी
अजी पाँव बाँधो सफर धीरे–धीरे
पड़े पाँव छाले फिकर भी नहीं है
चलो चल पड़ें इस डगर धीरे–धीरे
तेरा मुंतज़िर बन जगा ही रहूँगा
भले सो गया हो शहर धीरे–धीरे
हवा और पानी चलो बन चलें हम
उगायें जमीं पर शज़र धीरे–धीरे
इधर मैं मगन हूँ तुझे सोचने में
वही बात अब है उधर धीरे–धीरे
छुपाये छुपी है कहाँ ये किसी से
लगेगी सबों को खबर धीरे–धीरे
लिखें आज कोई ग़ज़ल प्यार वाली
अगर साध लो तुम बहर धीरे–धीरे
बिना नींद जैसे कटी रात सारी
'सुमन' कर रहा है बसर धीरे–धीरे।

2
खुद को ओढ़ा और खुद को ही बिछाया रात भर
सामने खत रखके उसका खूब रोया रात भर
तिश्नगी मेरी मुझे लाचार इतना कर दिया
होठ पर कुछ रेत को मैंने उठाया रातभर
गूँथ कर दिन भर बनाया खुद को इक कच्चा घड़ा
और फिर बरसात ने मुझको भिंगाया रात भर
याद आई जब कभी भी उस सुहानी शाम की
मेरे भीतर गीत कोई गुनगुनाया रात भर
आँसुओं से धो दिया फिर छीलकर कुछ जख़्म को
आज फिर चपुचाप वो मूरत सजाया रात भर।

3
कोई खिलता गुलाब लगते हो
क्या कहूँ लाजवाब लगते हो
कौन लिक्खा तुम्हें करीने से
तुम तो पूरी किताब लगते हो
चाँदनी लिख रही कलम तेरी
मुझको तुम माहताब लगते हो
मैं किया रतजगा मगर तुम तो
बंद आँखों का ख्वाब लगते हो
बेसबब हँस रहीं तेरी आँखें
पी लिया बेहिसाब लगते हो
शाम ढलते ही चल पड़े तुम तो
आदतन आफ़ताब लगते हो
जब से पहने हो कोट काला ये
तुम तो पूरा खराब लगते हो।

4
वह सफ़र को मिहरबानी लिख दिया
नाव कागज़ की थी पानी लिख दिया
उम्र भर ना ढल सका किरदार में
मेरे हिस्से वो कहानी लिख दिया
उस परिन्दा को करोगे कैद क्या
हौसला जो आसमानी लिख दिया
जख्म छालों से ही पन्नें भर गये
मैंने सोचा जिन्दगानी लिख दिया
दो घड़ी तो छाँव खुद को लिख 'समुन'
धूप में पूरी ज़वानी लिख दिया।

माधुरी स्वर्णकार
कादम्बरी अपार्टमेंट्स, सेक्टर 9
रोहिणी, दिल्ली
मो. 09958556141

1
क्यों न कर जाऊँ मैं अपनी भी वसीयत कोई
साथ जाती नहीं है वैसे भी दौलत कोई
आँख दुश्मन की भी पुरनम थी हमारी ख़ातिर
किसलिये बाकी रखी जाए अदावत कोई
जो भी करना है यही वक़्त तेरा है आख़िर
मौत सुनते हैं नहीं देती है मुहलत कोई
ज़िन्दगी थक गये हैं वैसे भी चलते–चलते
होगी हम पर भी कभी उसकी इनायत कोई
बन्दगी से तेरी हम ऊब गए हैं वैसे भी
चाहते हैं कि जताये ज़रा उल्फ़त कोई।

2
राह बाकी है, मुसाफिर क्यों न घबराए बहुत
कारवाँ में पाँव कम हैं और हैं चेहरे बहुत
राज ये हम पर खुला है उम्र भर चलने के बाद
हर किसी मंज़िल की ज़ानिब जाते हैं रस्ते बहुत
यह ज़माना है पराया किसलिये रोते रहें
हममें अपनापन है तो मिल जाएँगे अपने बहुत
जेब खाली है तो क्या तेरी तरह मुफ़लिस नहीं
हैं हमारे नाम के बाजार में सिक्के बहुत
राह के पत्थर थे जितने ठोकर खाते रहे
वो चुनौती थे तो क्या हम भी तो थे पक्के बहुत।

3
ऐ अब्र सबब रंग बदलने के लिए दे
थोड़ी सी जगह चाँद निकलने के लिए दे
दो चार कदम साथ तू चलने के लिए दे
कुछ वक़्त मुझे खुद को बदलने के लिए दे
झोली में खुदा तेरे हैं कितनी ही दुआएँ
सारी नहीं कुछ तो मुझे फलने के लिए दे
अब बर्फ़ मेरे चारों तरफ़ जमने लगी है
कोई तो मुझे राह निकलने के लिए दे
कलियाँ हैं ये गुलशन की इन्हें तोड़े न कोई
थोड़ा सा इन्हें वक़्त सम्भलने के लिए दे
आँधी तुझे तूफान के आसार दिखेंगे
मौका तू हमें साथ में चलने के लिए दे।

4
जिल्द से झाँककर मुस्कुराएँगे हम
हाशिए पर भी जिस रोज आएँगे हम
कुछ कदम साथ तुम जो हमारे चलो
हर सफ़र की थकन भूल जाएँगे हम
ऐ हवा तेज रौ से जरा बाज आ
जर्द पत्तों से हैं टूट जाएँगे हम
आहटें आ रही हैं किसी ख़्वाब की
नींद सो जा कि अब सो न पाएँगे हम
रूबरू होने की कोई सूरत बता
आख़िरश कितने पर्दे हटाएँगे हम।

1
जो बाँटे आदमी को दो धड़ों में
उसे तुम मानते हो क्यों बड़ों में
उन्हें ही पारखी कहता ज़माना
जो हीरा ढूँढ़ लेते कंकड़ों में
अमन की जो दुहाई दे रहे हैं
मिलेंगे वो ही दंगों की जड़ों में
नहीं हैं पेड़ अब उड़ता धुआँ है
जमेगा कार्बन ही फेफड़ों में
महक जाती हवा की साँस जिससे
कहाँ वो गन्ध बाकी केवड़ों में
यही संदेश देती लाल कोंपल
नई रुत जन्म लेती पतझड़ों में
उगाना अन्न है बंज़र धरा पर
नये हत्थे लगा लो फ़ावड़ों में।

2.
दिये रोशनी को जलाने पड़ेंगे
अँधेरे जहाँ हों मिटाने पड़ेंगे
कहीं रुक न जाए सफ़र बीच में ही
कि राहों में मंज़र सुहाने पड़ेंगे
यहाँ काफ़िले रहनुमाओं ने लूटे
इसी सच के किस्से सुनाने पड़ेंगे
खुशी से अगर ज़िन्दगी हो बितानी
गमों के वो लम्हे भुलाने पड़ेंगे
ये बाज़ार मँहगा बहुत हो गया है
कि आँखों में सपने सुलाने पड़ेंगे
हमें सीखने हैं हुनर आज ऐसे
जो खोटे हैं सिक्के चलाने पड़ेंगे
हमें और खींचेगी यादों की खुशबू
कि ज्यों–ज्यों ये अलबम पुराने पड़ेंगे

3
हमारे हौसले जिस दिन सही रफ्तार पकड़ेंगे
किनारे छोड़कर उस दिन नदी की धार पकड़ेंगे
अगर कुछ काम मिल पाया नहीं इन नौजवानों को
कहीं ये राह भटके तो यही हथियार पकड़ेंगे
समय रहते व्यवस्था ने अगर अवसर दिया इनको
यही जो आज खाली हाथ हैं औज़ार पकड़ेंगे
अभी है वक्त सिखला दो इन्हें तहज़ीब पुरखों की
बहुत मुमकिन है वरना ये नया किरदार पकड़ेंगे
हवा भी रुख बदलकर चल रही है आजकल यारो
हवा के साथ चलकर हम नया व्यापार पकड़ेंगे
हमें है शौक उड़ने का गगन में पंछियों जैसा
जिन्हें चस्का गुलामी का वही दरबार पकड़ेंगे।

4.
झूठ की कुछ बंदिशों में घिर गए
सत्य के स्वर साजिशों में घिर गए
हाथ खाली रह गए हैं मेहनती
किस तरह दिन गर्दिशों में घिर गए
हो गया मुश्किल निकलना आग से
यूँ सियासी आतिशों में घिर गए
खेत के सपने हरे होते मगर
खेत घर की रंजिशों में घिर गए
धपू ने जिनको पकाया था कभी
लोग वे भी बारिशों में घिर गए
मंजिलें आसान थीं पर रास्ते
उल्टी–सीधी कोशिशों में घिर गए।

रामचरण 'राग'
अलवर (राजस्थान)
मो.– 9672199630,
8619257471

5.
है असंभव मौत का उपचार करना
पर न छोड़ो ज़िन्दगी से प्यार करना
हौसलों को इस तरह पतवार करना
मुश्किलों का हर समंदर पार करना
बस्तियों में जब घुसे वहशी दरिन्दे
एक जुट होना पलट के वार करना
जान ली तुमने मुखौटों की हक़ीकत
ये हक़ीकत अब सरे बाज़ार करना
रात का अँधियार बढ़ता जा रहा है
भोर तक जलना यहाँ उजियार करना
गीत गाने हैं जिधर हरियालियों के
उस तरफ़ ही इस नदी की धार करना
जीत लें जो जुल्म की हर जंग को
पीढ़ियाँ ऐसी नई तैयार करना।

गणेश शंकर श्रीवास्तव
घास की गली, वासलीगंज,
मीरजापुर (उप्र.)
मो.–7985426007

1
कैसे कह दूँ अब हवा अनकूल है,
जबकि इसमें तजे गर्मी धूल है
जो ज़माने में कभी बदनाम था
देखिए वो किसी कदर मक़बूल है
नाव ये बिलकुल नहीं है काम की
पाल का दुश्मन बना मस्तूल है
देखने में खूबसूरत खूब है
ऑनलाइन बिक रहा जो फूल है
जो सवालों को ज़वाबों ने दिया
तोहफ़ा वह एकदम माकूल है।
जाम–धरना और ये दंगा–फसाद
कुछ नहीं केवल सियासी 'टूल' है
नाम है उस मुल्क का हिन्दोस्ताँ
खुदकुशी करने में जो मशगूल है
लोग वाकिफ़ खूब हैं 'गम्भीर' से
वह शहर में गाँव का स्कूल है।

2
लोग बस्ती के जिस घड़ी बोले
बात उम्मीद से कड़ी बोले
गाँव में खूब भाईचारा है
जल रही एक झोंपड़ी बोले
मेरे मुँह फिर कभी नहीं लगना
कील जो पाँव में गड़ी बोले
आग बूझने कभी नहीं देगा
अगलगी को जो फुलझड़ी बोले
हक़परस्ती नये ज़माने की
फ़र्ज को बेड़ी–हथकड़ी बोले।

3
खुदकुशी करने पे आमादा हैं लोग
इस तरह के पहले से ज्यादा हैं लोग
जो भरोसे के नहीं लायक रहे
एक पहचाना हुआ वादा हैं लोग।
फ़ितरतन शातिर भी हैं, रंगीन भी
वैसे तो मासूम हैं, सादा हैं लोग
बादलों सा फट रहे हैं आजकल
जाने क्यों गुस्से में कुछ ज्यादा हैं लोग
तर्क के अतिरेक से हैं संक्रमित
आत्महंता, भग्न–मर्यादा हैं लोग।

4
एक सूरज के लिए है शाम को ढलना सफ़र
एक दीपक के लिए है रातभर जलना सफ़र
खास मंज़िल, खास रस्ते खास है अपना सफ़र
देखना है साथ मेरा देता है कितना सफ़र
नींद में था फूल–खुशबू तितलियाँ–झरना सफ़र
नींद टूटी बन चुका था भोर का सपना सफ़र
अजनबी कुछ रास्ते मिल सकते हैं चलते हुए
कोशिशें जिनकी रहेगी टेक दे घुटना सफ़र
धूल–मिट्टी को पसीना गूँथकर रोटी बना
रोटियों के वास्ते है आग में सिंकना सफ़र
कुछ उसूलों का नमक–गुड़ और सतुआ साथ ले
मेरी दिनचर्या में शामिल हो गया करना सफ़र
हैं जुनूनी ढेर सारे जो समझते हैं यही
बाग़ियों के वास्ते है मारना–मरना सफ़र
देखना कर बंद आँखों नेकिया सुनना शुरू
हो गया है आजकल तो एक दुर्घटना सफ़र।

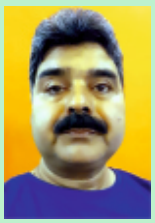

प्रेम रंजन 'अनिमेष'
भारतीय रिजर्व बैंक अधिकारी आवास,
गोकुलधाम, गोरेगाँव (पूर्व), मुंबई
मो. 993045371

1
धूप में तपकर निखरते वक़्त लगता है
नक़्श कोई भी उभरते वक़्त लगता है
प्यार ऐसे ही नहीं प्यारा हुआ प्यारे
उसको भी बनते सँवरते वक़्त लगता है
बीत कर भी बात तो जाती नहीं यूँ ही
गुज़रा जो उसको गुजरते वक़्त लगता है
ज़िन्दगी जिसको बनाते उसपे मिट जाते
इश्क़ में कब जीते मरते वक़्त लगता है
सबसे पहला सबसे आखरि लाज का पट ये
खुल के भी इसको उतरते वक़्त लगता है
धीमी–धीमी आँच पर पकता था पहले प्यार
अब कहाँ हद से गुजरते वक़्त लगता है
आसमाँ वाला तो सब कुछ देखता सुनता
पर उसे अकसर उतरते वक़्त लगता है
ज़िन्दगी कहती जो सचमुच करनेवाले हैं
उनको कब कुछ कर गुजरते वक़्त लगता है
वो भले सूरज हो लेकिन उसको भी 'अनिमेष'
डूबकर फिर से उबरते वक़्त लगता है।

2
'पूरा चाँद'
आज पूरा चाँद देखा
प्यारा कितना चाँद देखा
रात के हर इक सफ़र में
साथ चलता चाँद देखा
ज़िन्दगी उसकी है उतनी
जिसने जितना चाँद देखा
इतने फैले आसमाँ में
इक अकेला चाँद देखा
याद आखिर तक रहेगा
वो जो पहला चाँद देखा
उम्र तो यूँ ही कटी है
रोज़ कटता चाँद देखा
झूठी इस दुनिया में सच का
साँवला सा चाँद देखा
आज की ये रात जी ली
और कल का चाँद देखा
रात भर 'अनिमेष' जगकर
हमने सबका चाँद देखा।

3
'देखूँ...'
सच में सपनों का एक घर देखूँ
या कि आगे की रहगुज़र देखूँ
दोस्त दुश्मन सभी सलामत हों
कल जो अखबार की ख़बर देखूँ
जो ख़रीदार फिर गया था कल
आज फिर उससे बात कर देखूँ
तेरी आँखों से सुबह देखी है
किसके दामन से दोपहर देखूँ
है ये चाहत कि प्यार को पकते
धीमी धीमी सी आँच पर देखूँ
काम फिर खूब चल गया तब तो
गरचे हर देखती नज़र देखूँ
ज़िन्दगी राह भी है मंज़िल भी
चलते–चलते ठहर–ठहर देखूँ
क्या पता अगली सुबह कब आये
डूबते दिन को आँख भर देखूँ
कितना प्यारा है ये ख़याल 'अनिमेष'
तुझको बस यूँ ही उम्रभर देखूँ।

4
'उस तरफ...'
मुख्य चौराहे पर इक प्रतिमा बनी है
उस तरफ़ ही शहर भर की रोशनी है
रात फिर तारे उतर आये सड़क पर
शुक्र है यारो गटर पर चाँदनी है
क्या खबर लेकर चली है राम जाने
इस हवा की तेज बेहद धौंकनी है
साँस तक लेना भी मुश्किल हो गया अब
घुल गयी ऐसे फ़िज़ा में सनसनी है
सूखने के बाद कब कपड़े रहे हैं
एक औरत की तरह ये अलगनी है
सोचो तो कितना बड़ा दिल उसका होगा
जिसकी ऐसी आसमानी ओढ़नी है
मैं तो उसको पढ़ नहीं पाया कभी भी
हाशिये पर फिर ये किसकी टिप्पणी है
कम नहीं है चार दिन की ज़िन्दगी भी
साथ इसके प्यार की गर चाँदनी है
कुछ का पागलपन न पल में फूँक डाले
सदियों में 'अनिमेष' जो दुनिया बनी है।

विनय मिश्र
हसन खाँमेवाती नगर, अलवर
राजस्थान
मो. 9414810083

1
न केवल रात की उलझन है दुनिया
उम्मीदों से भी कुछ रोशन है दुनिया
कई मीठे पलों के स्वर हैं जिसमें
चमकती याद का बर्तन है दुनिया
रही जो हाथ में दो–चार दिन ही
महीने का मिला वेतन है दुनिया
हवा में गन्ध रोटी की है इससे
जहाँ भी भूख है भोजन है दुनिया
है सबकी एक मन की मातृभाषा
भले हिन्दी कहीं रोमन है दुनिया
जो काटा राम ने था मश्किलों में
उसी वनवास का जीवन है दुनिया
मैं सुनता हूँ इसे दिन–रात खुद में
ये मेरे वक्त की धड़कन है दुनिया।

2
शहर हो या देहात में औरत
जीवन की हर बात में औरत
टूटी छत की चिन्ताएँ ले
छत पर है बरसात में औरत
सबकी फ़िक्र समेटे खुद में
बँटती है खैरात में औरत
ख़्वाबों में सूरज है लेकिन
एक अँधेरी रात में औरत
प्यार उदासी यादें चाहत
ले आई सौगात में औरत
एक बिसात बिछी हो जैसे
उलझी है शह–मात में औरत
कितना भी वो मर्द हो लेकिन
मर्द के है जज़्बात में औरत।

3
इन्हीं में बदलियाँ देखूँ इन्हीं में बिजलियाँ देखूँ
इन्हीं ग़ज़लों में अपने दौर की बेचैनियाँ देखूँ
भले मैले–कुचैले ख़्वाब हैं ये मौत से बदतर
मगर हाथों मेंइनके ज़िन्दगी की तख्तियाँ देखूँ
इसी उलझन में जीता हूँ, इसी उलझन में मरता हूँ
मैं अपनी खूबियाँ देखूँ या अपनी ख़ामियाँ देखूँ
इशारे नाच कठपुतली उसी के चाहने पर हैं
यहाँ पर्दे के पीछे मैं ये जिसकी उँगलियाँ देखूँ
हवा खुशियों की आएगी इधर मुझको नहीं लगता
मुकद्दर में कहाँ मेरे खुली जो खिड़कियाँ देखूँ
न जाने क्यों किताबों में मैं अपना प्यार पढ़ने को
किसी की याद में डूबी हुई कुछ पंक्तियाँ देखूँ
कई गर्माहटें जिन्दा हैं बनकर हौसला जैसे
बुझी–सी राख में सोई हुई चिनगारियाँ देखूँ।

4
ज़िन्दगी के हर्फ़ गायब मौत के पन्ने ख़राब
मैं धुएँ में पढ़ रहा हूँ अपनी किस्मत की किताब
इक तमाशा है मेरी ख़ातिर ये आज़ादी का जश्न
फूल तो दो–चार आए और काँटे बेहिसाब
खौफ़ कोई फ़िक्र की दीवार पर लटका हुआ
और दस्तक दे रही है हर गली ओढ़े नकाब
डबडबाए बादलों से प्यास के मारे सवाल
कसमसाकर बंजरों के रह गए सूने जवाब
लाठियाँ लेकर हवा में भाँजते रहना है अब
आ गया मेरी समझ में वक्त का लुब्बेलुवाब
उस जगह आगे कुआँ था और पीछे खाइयाँ
हम जहाँ होते रहे हैं मुद्दतों तक कामयाब
पेट भरने के बहाने ही सही आए तो हैं
मेरी आँखों में कहाँ कम हैं अभी जीवन के ख़्वाब।

सुमन आशीष

1
वो पानी से नहीं अपने पसीने से नहाती है
मगर फिर भी ग़रीबी ख़ून के आँसू बहाती है
सभी इक–दूसरे के ख़ून के प्यासे हुए जाते
सियासत इस तरह से क़ौम को पागल बनाती है
अमीरों की नज़ाकत धूप में दम तोड़नेवाली
ग़रीबी पाँव नंगे ही सड़क पर दौड़ जाती है
यहाँ पर गाँव में बरगद खड़ा है आस में जिसकी
शहर में वो जवानी रात–दिन खुद को खपाती है
उगाए जा रहें हैं कंकरीटों के घने जंगल
मगर इनसे कटे पेड़ों की अक्सर चीख आती है
समय रहते दबी चिन्गारियों की भी ख़बर रखना
वरना एक चिन्गारी समूचा घर जलाती है
बग़ावत पर उतर आए उसे अच्छा नहीं लगता
हवाओं को कहाँ मज़दूर की पगड़ी सुहाती है।

२
मैं तो हूँ अलमस्त तुम्हारी तुम जानो
हूँ खुद से आश्वस्त तुम्हारी तुम जानो
घोर अँधेरी बस्ती मन के कोनों की
कर दी मैंने ध्वस्त तुम्हारी तुम जानो
बाहर मृत्यु भीतर कितना जीवन है
मैं उसकी अभ्यस्त तुम्हारी तुम जानो
ले जाओ ये पोथी पन्ने सबके सब
दिल पढ़ लूँ संत्रस्त तुम्हारी तुम जानो
सूरज के संग जगना मुझको शाम तलक
हो जाना है अस्त तुम्हारी तुम जानो
निगल रहे थे जो काले बादल मुझको
दे दी उन्हें शिकस्त तुम्हारी तुम जानो
अपनी साँसों से ही अपनी यारी है
रिश्ते हुए निरस्त तुम्हारी तुम जानो।

३
अँधेरों में चिराग़ों का शहर डूबा मिलेगा क्या
यहाँ इंसान कोई एक भी जिन्दा मिलेगा क्या
हुई है आदमी की पीर अब आकाश से ऊँची
मगर इस पीर में भी आदमी गाता मिलेगा क्या
यहाँ खामोशियाँ हर ओर ही चीखा बहुत करतीं
मुझे इस डर के मौसम में कोई हँसता मिलेगा क्या
परिन्दे क़ैद पिंजरे में यहाँ पर फड़फड़ाते हैं
कभी उनको खुला आकाश वो सारा मिलेगा क्या
अधूरी आस अब भी चाहती है कोई अपना–सा
मगर इस भीड़ में कोई मुझे ऐसा मिलेगा क्या
मुहब्बत की जबानों पर जमी है बर्फ़ की चादर
गलाना है इसे इक धूप का टुकड़ा मिलेगा क्या
कहीं ऐसा नहीं हो प्यास मुझको मार ही डाले
मरुस्थल के थपेड़ों में मुझे झरना मिलेगा क्या।

४
जिन्दगी की ओढ़नी को सी रही हूँ
इस तरह एकांत को मैं जी रही हूँ
इक पिआला तुम ज़हर का दे गए थे
तबसे मैं वो ही पिआला पी रही हूँ
भीतरी जंगल भरा है डाकुओं से
रात–दिन की चौकसी में ही रही हूँ
राम का वनवास बस चौदह बरस था
मैं इसे कबसे न जाने जी रही हूँ
पेड़ से मिलकर गले रहती हूँ हरदम
डाल पर चाहे गिलहरी–सी रही हूँ
मेरी आदत भूल जाने की नहीं है
जो किया वादा निभाती भी रही हूँ
टूटकर भी जोड़ने की ज़िद है मुझमें
राम जाने क्यों बहुत ज़िद्दी रही हूँ।

विकास
गुलजार पोखर, मुंगेर
मो. 8709156853
9934224359

1
न छेड़ो इस तरह से काँपती है
बड़ी नाजुक हमारी जिन्दगी है
छुपाकर भूख रखती है गरीबी
गरीबी की यही तो आशिकी है
यहाँ पर वक्त जाने कैसा आया
गली में लड़की गाँधी खोजती है
नई जब फ़सल होगी देखिएगा
कि कैसे झूमती घर की खुशी है
हवस की जात यारो जात कैसी
वे तितली का बदन भी नोचती है
उसे अपनी कहानी मत सुनाना
शराफ़त ओढ़ता जो आदमी है
तुम्हारा शक्ल दरपण ढूँढ लेगा
अभी दरपण की बस आवारगी है।

2
तुम भी निकले घर से कब हो ठोकर से क्या मतलब है
भूख गरीबी से क्या मतलब बेघर से क्या मतलब है
बड़ा हुआ हूँ इस धरती पर मिट्टी से मैं खेला हूँ
अपनी धरती अपनी मिट्टी अम्बर से क्या मतलब है
सबने चादर के अन्दर ही अपने अपने पाँव रखे
पर मेरी ये सोच नहीं है चादर से क्या मतलब है
खून बहाना उनका मकसद खंजर को हैं रखते साथ
हाथ मिलाना मेरा मकसद खंजर से क्या मतलब है
शहर तुम्हारा कैसा यारो सारी खिड़की बन्द यहाँ
और किसी ने हँसकर बोला दिनकर से क्या मतलब है।

3
जमाना पूछता है जात ऐसा वक्त आया है
तो देगा रोटी सब्जी भात ऐसा वक्त आया है
कभी निचली अदालत में कभी ऊपरी अदालत में
कि होती पैसों की बरसात ऐसा वक्त आया है
किसी को घर मयस्सर है कोई फुटपाथ पर सोया
नहीं कटती किसी की रात ऐसा वक्त आया है
मैं खुलकर बात क्या करता वे खुलकर बात क्या करते
सभी के कैद हैं ज़ज़्बात ऐसा वक्त आया है
वही आगे रहेगा अब जो गर्दन को मरोड़ेगा
मिलेगी फिर उसे खैरात ऐसा वक्त आया है।

4
सही ग़लत का नतीजा निकल के आता है
करो न फिक्र अचानक से चल के आता है
किसी को भीख यूँ देने की ये अदा कैसी
तुम्हारे हाथ से सिक्का उछल के आता है
अँधेरा ख़ौफ़ में रहता है रात भर हमसे
हमारे नाम का दीपक जो जल के आता है
उसे भी शौक है मिल जाये अब खुदा उसको
जो बासी बाँट के रोटी मचल के आता है
वफ़ा करो यहाँ दिल से वफ़ा न पाओगे
अभी तो इश्क़ भी मौसम में ढल के आता है।

डॉ. भावना
जीरोमाईल सीतामढ़ी रोड
मुजफ्फरपुर
मो.–9946333084

1.
बहुत दहशत में दिल की बस्तियाँ हैं
तभी नफ़रत की ऐसी झलकियाँ हैं
नहीं मानेंगी पर्दे की हिदायत
बहुत जिद्दी यहाँ की लड़कियाँ हैं
मुहब्बत की करूँ उम्मीद क्या मैं
रगों में ही बसी जब तल्खियाँ हैं
धमाका फिर हुआ कोविड का तब से
शहर में मास्क और ये गश्तियाँ हैं
ज़मीं पर मोटरों की रोशनी से
बहुत शर्मिन्दा ऊपर बिजलियाँ हैं।

2
चलेगी जब मुहब्बत की कभी चर्चा मेरे पीछे
तुम्हें भी याद आयेगा मेरा चेहरा मेरे पीछे
थकी आँखें, बुझी सूरत मगर इक हौसला लेकर
कोई है दूर से चलता हुआ आया मेरे पीछे
उसे मैं नासमझ समझूँ नहीं तो और क्या समझूँ
मेरे ही घर पे जड़ आता है वह ताला मेरे पीछे
भले हो सच मगर कैसे करूँ इस पर यकीं या रब
कोई अपना ही मुझ से कर रहा धोखा मेरे पीछे
जो उसकी आँख के सपनों में ढलकर कोई रहता है
तो कैसे साया बनकर उम्र भर रहता मेरे पीछे।

3
लड़ाई होगी तो आँखों में नीर भी होगा
दिलों के साथ में घायल शरीर भी होगा
न सोचा होगा सिकन्दर ने युद्ध करते हुए
वो हार जायेगा, ऐसा फ़क़ीर भी होगा
चमकती कार में जो शख़्स घूमा करता है
जरूरी है नहीं दिल से अमीर भी होगा
किसी भी चीज को उठने में वक्त लगता है
जलेबी ठीक तो अच्छा ख़मीर भी होगा
छिटक के चाँद–सितारों के पास जा बैठे
छिना है चैन तो, ये मन अधीर भी होगा
लगा जो बोलने तो क्यों किसी को बख़्शेगा
पता किसे था कि ऐसा क़बीर भी होगा।

4
फूल कलियाँ खिली, खिल गया ये बदन
जबसे होने लगा फ़ाग का आगमन
ठहरी–ठहरी हवा खूब चंचल हुई
महकी–महकी फिज़ा कर रही आचमन
ख़ाल की आड़ में है बहुत कुछ छुपा
हो भी तो किस तरह काम का आकलन
इस जमाने में ये भी है मुमकिन हुआ
बनके बगुला भगत खूब गाये भजन
जबसे सुनने लगी धुन सरोवर की मैं
तबसे पानी बचाने की लागी लगन
लाली चूनर को ओढ़ी थी जब भोर ने
सुर्ख़ क्योंकर हुआ साँझ में ये गगन
मेरी ख़ातिर जियो, मेरी ख़ातिर मरो
मुझसे कहता रहा है हमेशा वतन।

1
चढ़ा चूल्हे पे अदहन है, मगर खदबद नहीं है
खरच है दो का लेकिन एक की आमद नहीं है
कोई आकाश छूता है, कोई धरती धँसा है
मगर अब आदमी कोई भी आदमक़द नहीं है
किसी के ऊँचे उठने में कई पाबंदियाँ हैं
किसी के नीचे गिरने की कोई भी हद नहीं है
इसे दुर्योग ही कहिए, मिली बदनामी उसको
भले नेकी न कर पाया, मगर वो बद नहीं है
कोई धनधान्य पर फूला, तो कोई अपने यश पर
जो सर्वस्व तज चुका है, उसी को मद नहीं है
सभी को ज़िन्दगी की ज़ंग लड़नी है अकेले
किसी को भी हमेशा मिली गारद नहीं है
घड़ी की सूइयों–जैसे चले हम जा रहे हैं
कि जैसे ज़िन्दगी कोई भी मक़सद नहीं है
युगों से जिसकी गाथाएँ सुनी जाती रही हैं
न जाने क्यों मुझे लगता, वही शायद नहीं है
तुम्हारा राज्य होगा, पर तुम्हारी सरहदें हैं
अरे! हम कवि, हमारी कोई भी सरहद नहीं है।

2
तुम्हारी बैठकी में चल रहे सिंगार के क़िस्से,
किसी के घर सिसकते हाय! अत्याचार के क़िस्से
रचे तुम ने भले ही सकैड़ों प्रतिकार के क़िस्से
रचे हमने युगों से किंतु प्रत्याहार के क़िस्से
पुरानों ने लिखे दो–चार बस, हुंकार के क़िस्से
जरूरत है कि लिक्खे जाएँ बस, अंगार के क़िस्से
तुम्हारे पथ बिछे जाते रहे हैं फूल सदियों से
हमारी राह आए क्यों हमेशा ख़ार के क़िस्से
तुम्हारी क़िस्सागोई भी गज़ब की क़िस्सागोई है,
कभी इस पार के क़िस्से, कभी उस पार के क़िस्से
हमें मालूम था, सच बोलना अपराध है लेकिन
हमारी लेखनी लिक्खेगी कारागार के क़िस्से
मनुजता त्रस्त होती है, मगर इतिहास लिखता है,
किसी की जीत के क़िस्से, किसी की हार के क़िस्से।

राजेन्द्र वर्मा,
विकास नगर, लखनऊ
मो.–80096 60096

3
जीने को, बस जिए जा रहे, जिए जा रहे
विष अमृत–सा पिए जा रहे, पिए जा रहे
जिनकी ख़ातिर खटे रात–दिन, खुद को भूले
चोटें उनसे लिए जा रहे, लिए जा रहे
श्रम–सीकर से रहे सींचते यथाशक्ति पर
प्यास जनम की पिए जा रहे, पिए जा रहे
दुनिया का ढब रहा एक ही, मगर एक हम,
चाक गिरेबां सिए जा रहे, सिए जा रहे
क्या कुछ अच्छा–बुरा, सोचना नहीं एक पल
मुफ़्त मिले जो, लिए जा रहे, लिए जा रहे
श्वास भले ही चले चार दिन, मगर भू–धरा
नाम स्वयं के किए जा रहे, किए जा रहे
सूरज–सागर–पवन–मेघदल, जिसे देखिए
दुनिया को बस दिए जा रहे, दिए जा रहे।

4
भले जनतंत्र लागू हो गया है
मगर कब आमजन राजा हुआ है
यहाँ तो झूठ ही का दबदबा है
सचाई का पनप जाना मना है
न जाने कब ये शोषण खत्म होगा
श्रमित होकर हमें फ़ाँका मिला है
कोई तो शीश से उत्पन्न होता
कोई पैरों से पैदा हो रहा है
जिन्हें कारा में होना चाहिए था
उन्हीं की छाँह मुंसिफ़ पल रहा है
अरे! तुम खोजते–फिरते फ़रिश्ते
यहाँ इनसान का टोटा पड़ा है
अँधेरों से लड़ो खद्योत बनकर
उन्हीं का रवि , उन्हीं का चंद्रमा है।

कमलेश भट्ट 'कमल'
ग्रेटर नोएडा वेस्ट,
गौतमबुद्ध नगर, उ.प्र.
मो.9968296694,

1.– कमलेश भट्ट कमल

बहती धारा के बहाव में आ जाते हैं
अच्छे–अच्छे भी दबाव में आ जाते हैं
झूठी बातें सिर्फ झूठ होती हैं लेकिन
कितने ही उनके प्रभाव में आ जाते हैं।
सबको ही मालूम है बुरी शै है लालच,
फिर भी हम उसके खिंचाव में आ जाते हैं
पानी ही क्यों साँप और बिच्छू भी बहकर
बाढ़ आने पर जल–भराव में आ जाते हैं
झुकना, हाथों को पसारना, मर–मर जीना
भूख के संग ये भी अभाव में आ जाते हैं
सर्दी की रातों में गाँव में कैसे–कैसे
दादी के किस्से अलाव में आ जाते हैं
यह क्यों है, जो लोकतंत्र के खंभे तक भी
चलकर गुंडों के बचाव में आ जाते हैं
हम चुके तो लोभ मोह बेईमानी छल,
धीरे–धीरे सब स्वभाव में आ जाते हैं।

2.

बेवज़ह का फ़ितूर क्यों इतना
खुद पे आख़िर गुरूर क्यों इतना
दिल तो दिल है वो कोई नाव नहीं
बोझ दिल पर हुजूर क्यों इतना
लोग पीकर बहकने लगते हैं
बिन पिये ही सुरूर क्यों इतना
फ़ासले जिसने तय किए लम्बे
हो न थक कर वो चूर क्यों इतना
वह तो मौजूद ही नहीं था वहाँ
फिर भी उसका कुसूर क्यों इतना
उसको तो आस–पास होना था
वो ही हमसे है दूर क्यों इतना
उसमें भी जल रहा है इक दीया
वर्ना चेहरे पे नूर क्यों इतना?

3.

वजूद ऐसा घटा घटता गया अपना
मोबाईल तक सिमट आया पता अपना
हमें अफ़सोस भी इसका कभी क्यों हो
चुना है हमने ही यह रास्ता अपना
यक़ीन उस पर अगर हो किस बिना पर हो
बदलता हो जो चेहरा दस दफा अपना
नज़र बदरंग आता है अगर सब कुछ
तो फिर तो तू भी यह चश्मा हटा अपना
ये दुनिया खुदकुशी से तो न बदलेगी
बदलना है बदल बस फैसला अपना
किसी ईश्वर से पहले जो था वो था कौन
कि जिसने खुद की ख़ातिर जग रचा अपना
बढ़ेंगे पाप तो अवतार लोगे तुम
तुम्हें क्या याद भी है वायदा अपना।

4.

हर कदम बात–बात ठीक नहीं
इतना भी एहतियात ठीक नहीं
रात में दिन, चलो ये अच्छा है
दिन में भी है जो रात, ठीक नहीं
लोग ज़ंगल में तो नहीं रहते
रोज़ यूँ वारदात ठीक नहीं
उसकी रातें तो यूँ गुज़रती हैं,
उसने देखा न प्रात, ठीक नहीं
ज़ाहिलों की ज़मात बैठी है,
लेके तंबू–कनात, ठीक नहीं
दुख ही रह जाय ज़िन्दगी बनकर
दुख की इतनी बिसात ठीक नहीं
इसमें सब कुछ कहाँ व्यवस्थित है
अब तो यह क़ायनात ठीक नहीं
ज़िन्दगी जैसी भी है अच्छी है
ज़िन्दगी से निज़ात ठीक नहीं
सारी दुनिया ही ज़ीत लेंगे हम
ऐसा भी सन्निपात ठीक नहीं।

अभिषेक कुमार सिंह
मेल टाउनशिप
तमिलनाडू
मो.–8903768162

1

धीरे–धीरे भीम का संयम रीत रहा है
चौसर की बाजी दुर्योधन जीत रहा है
तेज़ निकल जाता है खुशहाली का खरहा
दुख का कछुआ जीवन–पथ का मीत रहा है
ख़ामोशी को सुननेवाले सुन पाते हैं
ख़ामोशी के भीतर इक संगीत रहा है
तब–तब हार हुई है निश्चित संकल्पों की
जब–जब साहस का सूरज भयभीत रहा है
हम ठहरे हैं अपने पतझड़ के साये में
वक़्त का मौसम अपनी धुन में बीत रहा है
हार गये सब आत्म समर्पण करनेवाले
भय से लड़नेवाला भय को जीत रहा है।

2

प्रश्न है अब भी खड़ा यह आदमी के सामने
हैसियत क्या है हमारी त्रासदी के सामने
मैं अँधेरे में जहाँ हूँ रौशनी के सामने
हँस रहा है एक होटल झोंपड़ी के सामने
वक़्त है ध्यानस्थ योगी की तरह बैठा हुआ
धुंध का ताबीज़ लटका है सदी के सामने
खुद घिरा फ़ाकाक़शी में सोचकर बेचैन हूँ
कोई भूखा आ न जाये देहरी के सामने
गाँव की गलियाँ शहर से जब मिली तो यूँ लगा
धूल का घूँघट उठा हो अजनबी के सामने
वक़्त बदला, लोग बदले दृश्य लेकिन है वही
मौन हैं सारे धनुर्धर द्रौपदी के सामने
कल सुबह सूरज निकल आएगा लेकिन आज क्या
आज खुद जलना पड़ेगा तीरगी के सामने।

3

कब तक मरीज़ भर्ती रहेंगे खबर नहीं
इस अस्पताल में कोई भी डॉक्टर नहीं
चलने की कोशिशें सभी नाकाम हो गयीं
मंजिल का शोर खूब है लेकिन डगर नहीं
रस्ते के सर से गिर चुका है ताज छाँव का
बस अंतहीन धूप है कोई शजर नहीं
देता नहीं है हक़ कोई संघर्ष के बिना
मालिक से गिड़गिड़ाने का होता असर नहीं
कितनी अजीब बात है शोषित हैं सब मगर
शोषण के इस विरोध में हम एक स्वर नहीं
भेजूँ मैं कैसे रौशनी की चिट्ठियाँ तुझे
तू अंधकार में है जहाँ डाकघर नहीं
खुद को सरल बनाने में गुजरी है एक उम्र
इस ज़िन्दगी का कोई सफ़र मुख़्तसर नहीं

4

कर देगा मुग्ध आपको खिलना पलाश का
मैं क्या सुनाऊँ आपको क़िस्सा पलाश का
सुस्ता रहे हैं धूप की डोली के सब क़हार
सड़कों पे बिछ गया है बिछौना पलाश का
चलती है जब बसंत में आकर्षणों की रेल
चलता है साथ–साथ ही इक्का पलाश का
अंधा विकासवाद कहीं चीर ही न दे
आरी पे है रखा हुआ सीना पलाश का
जीवन के इस अरण्य के उजड़े दयार में
होना तुम्हारा लगता है होना पलाश का
माना कि है हसीन गुलाबों का रंग–रूप
लेकिन मुझे पसंद है चेहरा पलाश का
मरते हुए मनुष्य को समझाये कौन अब
कितना ज़रूरी है यहाँ जीना पलाश का।

संजीव प्रभाकर
एस–4, सरुभि , सेक्टर 29
गांधीनगर (गुजरात)
मो. 90821 36889

1
हरदम बदल रहा है, अपना ख़याल रखना
मौसम बदल रहा है, अपना ख़याल रखना
था जिस तरह जमाना वैसा नहीं रहा अब
कम कम बदल रहा है, अपना ख़याल रखना
तब्दीलियाँ बहुत हैं, कितना है वक्त बदला
पैहम बदल रहा है, अपना ख़याल रखना
की कोशिशें हजारों रिश्ता बना रहे ये
ताहम बदल रहा है, अपना ख़याल रखना
ये ज़ख्म ही नया है, नुस्खा गलत नहीं है
मरहम बदल रहा है, अपना ख़याल रखना
इसमें बुराई क्या है, हम तुम बदल गये तो
आलम बदल रहा है, अपना ख़याल रखना।

2
कुछ तो बदला ज़रूर लगता है
पास जो था वो दूर लगता है
बिन पिये ही वो चूर लगता है
उसके दिल में गुरूर लगता है
सबको दिखती है दूसरे की ख़ता
किसको अपना कुसूर लगता है
फिक्र में जिस्म को गला देना
मुझको बेज़ा फ़ितूर लगता है
जिसमें मासूमियत हो बचपन की
उसके चेहरे पे नूर लगता है
पूछना हाल–चाल लोगों का
मुझको उम्दा शऊर लगता है
चाहता कुछ हुआ है जाता कुछ
मुझको तेरा सुरूर लगता है।

3
लगा अच्छा तेरा आना अचानक
मगर तड़पाएगा जाना अचानक
अभी हल्ला मेरे अंदर बहुत है
सुनेगा कौन चिल्लाना अचानक
सज़ा खुद को न दूँ तो क्या करूँ मैं
मेरे दिल ने दिया ताना अचानक
जो तय मैंने किया वो हो न पाया
इसी से काम हर ठाना अचानक
जहाँ पे जश्न आधी रात तक था
वहाँ पहुँचा अभी थाना अचानक।

4
जहाँ खेत है खलिहान है, ज़हाँ गाय–गोरू बथान है
थमी धूप नीम की छाँव में, ज़रा दूर करती थकान है
यूँ हवा चली कि बिखर गया, जो बिखर गया तो उजड़ गया
जो गिरा हुआ है ज़मीन पर, मेरी ख़्वाहिशों का मचान है
कोई राहगीर उठा गया, उसे मंज़िलों की तलाश में
जहाँ पूर्वजों के निशान थे, वहाँ और कोई निशान है
मेरी चुप्पियों की गवाहियाँ, यही चींख–चींख के कह रहीं
जो सही है वो सही है, मेरा सिर्फ एक बयान है
वो हरेक घाव को भर गया, कोई वक्त जैसी दवा नहीं
कई घाव पिछले बरस लगे, किसे याद है किसे ध्यान है।

---

1. अनुज अब्र की गजलें
झूठा कोई ख़्वाब दिखाया जाएगा
जुगनू को सूरज बतलाया जाएगा
मंदिर मस्जिद को लड़वाया जाएगा
मुद्दे से हमको भटकाया जाएगा
पैरों में डाली जाएँगी जंजीरें
हाथों से रस्ता नपवाया जाएगा
काट लिए जाएँगे पर मासूमों के
फिर उनको आकाश दिखाया जाएगा
भेद खुलेगा ठाकुर की तब रहमत का
जब बुधवा से खेत लिखाया जाएगा
बीन बजाई जाएगी इस कोने पर
उस कोने पर साँप दिखाया जाएगा
'अब्र' तुम्हारी बातें देश विरोधी हैं
मुझ पर ये इल्ज़ाम लगाया जाएगा।

2
अब्र जिस रोज़ बरसते हैं ये कालेवाले
चन्द घंटो में ही भर जाते हैं नालेवाले
चलता रहता हूँ कि चलने का नशा है मुझको
पड़ते रहते हैं मेरे पाँव में छालेवाले
रुक ज़रा एक दफ़ा और तसल्ली कर लें
ठीक से बन्द सभी हैं तो न तालेवाले
घुप अंधेरे में कई दिन से पड़े हैं तन्हा
नाम अपना जो बताते थे उजालेवाले
भूल जाने को हूँ तैयार सभी कुछ मैं भी
साफ़ कर ज़ेहन से तूभी तो ये जालेवाले

2
अगर ख़फ़ा हो तो सब कुछ उजाड़ देती है
नदी पहाड़ का सीना भी फाड़ देती है
हवा को कम न समझना खिलाफ़ होने पर
बड़े शज़र को भी जड़ से उखाड़ देती है
तुझे पता है न बेटे की इक भली कोशिश
मुसीबतों को हमेशा पछाड़ देती है
ये बात कहने में तकलीफ़ दे रही है पर
क़मीनी भूख बदन भी उघाड़ देती है
बहुत कम उम्र में हासिल हुई सफलता भी
बड़े बड़ों का तवाज़ुन बिगाड़ देती है
मैं सच बताऊँ मेरी आठ साल की बिटिया
ग़लत करूँ तो मुझे भी लताड़ देती है
अगर निगाह में क़ायम है 'अब्र' शर्मो हया
तो एक दूब की पत्ती भी आड़ देती है।

अनुज पांडेय 'अब्र'
इंदिरानगर, लखनऊ
मो.–9532521100

3
मुहब्बत का मेरी कब जानता था ये बदल दोगे
करोगे दिल्लगी खेलोगे मुझसे और चल दोगे
तुम्हें जल्दी पड़ी है जाओ पहले तुम निकल जाओ
नहीं तो तुम न जाने कितने लोगों को कुचल दोगे
जिसे महफ़ूज रखने का दिखावा कर रहे हो तुम
अभी कुछ देर में वो फूल तुम खुद ही मसल दोगे
बदल कर रख दिया इसने तुम्हें भी देख लो आख़िर
बड़े दावे तुम्हारे थे सियासत को बदल दोगे
तुम्हें हम ज़ीस्त में अपनी कभी आने नहीं देते
अगर हमको ख़बर होती कि तुम इतनी दखल दोगे

4.
समुंदर को मैं अक्सर इस तरह हैरान करता हूँ
जहाँ सब डूब जाते हैं वहाँ से मैं उभरता हूँ
खुदा ने मुझको भी सोने के जैसी खूबियाँ दी हैं
मैं जितना आग में तपता हूँ उतना ही निखरता हूँ
मेरी हस्ती तेरी आँखों का जिस दिन से बनी मरकज़
उसी दिन से रफीकों की नज़र में मैं अखरता हूँ
नहीं मैं सोचता ज़्यादा ग़लत क्या है सही क्या है
मुझे जो ठीक लगता है उसे मैं कर गुज़रता हूँ
मेरे बारे में दुनिया की नहीं है राय अच्छी तो
यहाँ मैं ही ज़माने की कहाँ परवाह करता हूँ।

संजय कुमार 'कुन्दन'
बेली रोड, पटना
मो. 8709042189

1
पास अपने रहूँ तुझमें भी मुब्तिला हो जाऊँ
ऐन मुमकिन है के मैं कोई मोजज़ा हो जाऊँ
रहा मैं वज़्द में इल्हामे–मुहब्बत के लिए
वही न उतरी तो चाहा के बेवफ़ा हो जाऊँ
कभी तो जागती शब और कभी ख़्वाबीदा दिन
मैं इंतशार की हद से भी अब सिवा हो जाऊँ
मेरे हवाले से पहुँचे हैं लोग मंज़िल तक
अपनी क़िस्मत में था मैं कोई रास्ता हो जाऊँ
खुदपरस्तिश तो जुनूँ की हदों को तोड़ चली
आदमी आम था चाहा के क्या से क्या हो जाऊँ
तेरे फ़साने में पहुँचा तो दरम्यान में था
और ये चाह के क़िस्से की इब्तदा हो जाऊँ
भटकता ही रहा जब एक रूह की मानिन्द
क्यूं न 'कुन्दन' मैं बदन से ही अब जुदा हो जाऊँ।

2
साफ़गो हूँ मगर कुछ इतना नहीं
सारे सच कह दूं सबसे ऐसा नहीं
झूठ की जुल्फ़ मेरे चेहरे पर
सच का हामिल हूँ मगर सच्चा नहीं
साफ़ कहता नहीं चले जाओ
पास इतना है मुझ से खुलता नहीं
इक हवस की चमक है आँखों में
कोई जुगनू कोई सितारा नहीं
ख़्वाब में भी ग़मे–दुनिया का अक्स
ग़मे–जानाँ का ज़ोर चलता नहीं
मैं भला क्या हूँ, मैं भला क्या हूँ
तूही तूहै, कहीं मैं दिखता नहीं
रोशनी दिन की गुम हुई 'कुन्दन'
रात में भी कोई अन्धेरा नहीं।

4
मैं कौन हूँ, तू कौन है, ये सब हैं भला कौन
सबकी जुबां है बन्द तो देता है सदा कौन
राहें भी हैं सूनी, न कोई शोर, न आहट
पर दिल यही पूछे है के महफ़िल से उठा कौन
वो कर रहा है बात बहुत ज्यादा सँभल कर
क़ाबिज़ हुआ है उसकी जुबाँ पर ये नया कौन
मिलती है नए हाथों से हरदम पुरानी चोट
अक्सर नई शक्लें लिए मिलता है भला कौन
वो कौन है सदियों से जो कतराता रहा है
हम किसको ढूँढते रहे, हमको है मिला कौन
अहले–नज़र हो, तुमसे कोई बात छुपी है?
अच्छा, चलो, माना के भला हमसे बुरा कौन
शिकवा भी सलीक़े से किया करते हैं 'कुन्दन'
यूँ शेरों से इरसाल करे अपना गिला कौन।

4
मिल गई गर हँसी की आवाज़ें
मुख़्तलिफ़ हैं खुशी की आवाज़ें
साज़ कैसा भला जुनूँ का है
आ रहीं आगही की आवाज़ें
छा गया है हरेक शै पे सुकूत
अब सुनो ख़ामोशी की आवाज़ें
गुफ़्तगू में जो ये तवाजुन है
ये नहीं दिलबरी की आवाज़ें
गोश से खो गई हर इक आवाज़
जो सुनीं शायरी की आवाज़ें
जिसने मंज़िल पे जाके दम लेली
क्या सुने बेखुदी की आवाज़ें
तारीकी बोल रही है 'कुन्दन'
गूंग हैं रोशनी की आवाज़ें।

डॉ० स्वदेश कुमार भटनागर
मुरादाबाद, उ. प्र.
मोबाइल – 7983639799

1
यूँ तो यह बदतमीज़ी लगती है
गाली अब लाज़िमी–सी लगती है
आदमी थूक से भी छोटा हुआ
बात झूठी कि सच्ची लगती है
एक खानाबदोश के मानिन्द
ज़ीस्त दर–दर भटकती लगती है
आदमी ने चुरा लिया खुद को
हर–सू अफ़सुर्दगी–सी लगती है
पैसे जितना ही सच है दुनिया में
बात यह तजुर्बे की लगती है
छन् से टूटा है गिरके कोई 'स्वदेश'
हर तरफ़ सरगरानी लगती है।

2
रात भर झिलमिलाता रहता है
मुझमें इक़ नाम ऐसा रहता है
दिल के आंगन में जलते दीपक का
आस्माँ तक उजाला रहता है
उम्र भर कितना भागिये साहब
फ़ासला खुद से थोड़ा रहता है
खुद से घबराके छूट न जाए कहीं
खुद में वो शख़्स उलझा रहता है।

3
वक़्त ने कैसी तल्खियाँ दे दीं
कब्र के नाम चिट्ठियाँ दे दीं
ले के लम्हों ने हमसे आवाज़ें
बात करने को चुप्पियाँ दे दीं
ऊँघते हैं ये क्यों हसीं मज़र
सुबह को किसने लोरियाँ दे दीं
हमने बच्चों से छीनकर तितली
याद करने को गिनतियाँ दे दीं।

4
किरनों की तरह हँस पड़ा अन्दर
कौन सूरज.सा यह उगा अन्दर
ये जो उठकर गया है इक़ लम्हा
देर तक शाख़.सा हिला अन्दर
रास्ते खुद में जब उलझ जायें
नक्श.ए.पा अपने ढूँढना अन्दर
मोतियों सा पिरो दिया खुद को
किसने आदाब.सा कहा अन्दर
सर बरहना ख़याल निकले हैं
क्या हुआ कोई हादसा अन्दर
धूप.सा शाख़ पे मैं बैठा हूँ
बर्फ़.सा कुछ पिघल गया अन्दर
झुटपुटा है कि है तुलू.ए.सुब्ह
झाँककर देख तो ज़रा अन्दर
हर्फ़ इक़ लिखते, गुनगुनाते हुए
रात का एक बज गया अन्दर।

धर्मेन्द्र गुप्त 'साहिल'
माँ शीतला भवन, गायघाट
वाराणसी
मो. 8935065229

1
यूँ नहीं मरती प्रबल सम्भावना
आप जो करते सही आलोचना
भाव था कोई न कोई भावना
सत्य से मेरा हुआ जब सामना
लिख रहा हूँ ज़िन्दगी पर मैं निबन्ध
पर न अबतक बन सकी प्रस्तावना
मानता हूँ स्वाति का है मेघ वो
तू भी चातक बन जा मत कर याचना
उनको मेवा, दूध, फल, मिष्ठान्न, घी
औ हमें रोटी, नमक या गुड़, चना
पुष्प, दीपक, है, न है नैवेद्य ही
कर रहा हूँ फिर भी मैं आराधना।

2
कोई जब वक़्त खोता है
तो उस पर वक़्त रोता है
हसीं केसर की क्यारी में
तू क्यों बारूद बोता है
सभी होते हैं ख़ुद अपने
किसी का कौन होता है
निभा सकता नहीं जो तू
तो क्यों रिश्तों को ढोता है
सँभालो उड़ नहीं जाये
तुम्हारे हाथ तोता है।

3
मेरा तो जो पल जाता है
मुझको बस वो छल जाता है
बढ़ जाती है उसकी क़ीमत
जो बाज़ार में चल जाता है
अब तक मैं यह जान न पाया
कैसे कोई बदल जाता है
यादों के जंगल में मुसाफ़िर
कितनी दूर निकल जाता है
जब आती है मेरी बारी
फ़ैसला उनका टल जाता है
रास न आता उनको सुख भी
मुझको दुख भी फल जाता है
दिल का बहलना बेहद मुश्किल
बच्चा फिर भी बहल जाता है
यादों के जंगल में मुसाफ़िर
कितनी दूर निकल जाता है
ढलता नहीं है दर्द का सूरज
चाँद तो फिर भी ढल जाता है
चाँद को जब आराम है मिलता
सूरज कितना जल जाता है।

4
कोई अहसास ना गुमाँ कोई
लेके आया मुझे कहाँ कोई
कैसे मंज़र कोई दिखाई दे
हर तरफ़ सिर्फ़ है धुआँ कोई
अब किसी का बयाँ नहीं दरकार
दे गया ऐसा इक़ बयाँ कोई
सोचता हूँ कि कौन देगा ज़मीन
दे गया मुझको आसमाँ कोई
ना उठी गर्द ना गुबार उठा
कैसे गुज़रा है कारवाँ कोई
ढूँढ़ता रहता है न जाने क्या
चाँद–तारों के दरमियाँ कोई
की मेहरबानियाँ किसी ने मगर
बनके बैठा है मेहरबाँ कोई
ढूँढ के कोई मुझको ले आये
मेरा मिलता नहीं निशाँ कोई।

पंकज कर्ण
चित्रगुप्त मंदिर लेन
शास्त्रीनगर (कन्हौली)
मुजफ्फरपुर

1
वो बीता वक़्त भी उसका खंगाल सकता है
हाँ, उसकी आँख का पानी निकाल सकता है
अभी समय ही कुछ ऐसा है कि वो है गंभीर
नहीं तो पल में वो ख़ूँ को उबाल सकता है
सियासी शख़्स ही अधिकार इतना रखता है
वो अपने वास्ते गुंडा भी पाल सकता है
वो चाहता है कि मैं आज उसका हो जाऊँ
किसी बहाने वो दाना भी डाल सकता है
कोई तो जाके ये समझाये शाहजादों को
कि बाप उसकी तरह सौ को पाल सकता है
ये सत्ता खेल नहीं ऐसे–वैसों का 'पंकज'
वही सँभाले इसे जो सँभाल सकता है।

2
मैंने फिर वक़्त की चाहत ही सदा माँग लिया
घर से जब निकला हिफ़ाज़त की दुआ माँग लिया
मुझको मालूम था उस शख़्स की फ़ितरत से दोस्त
मैंने किस तरह सितमग़र से वफ़ा माँग लिया
किसको मालूम कि मिल जाये सफ़र में सेहरा
घर से जब निकला तो सावन से घटा माँग लिया
आज के दौर में ठहरा ये मोहब्बत का चलन
काम से पहले ही नुकसान–नफ़ा माँग लिया
हमको जीना इसी माहौल में है ऐ 'पंकज'
इसलिए वक़्त से जीने की अदा माँग लिया।

3
किसे मालूम किसका मन कहाँ मचल जाए
वक़्त कहता है कि हर आदमी सँभल जाए
जिनकी मायूसियों में शाम गुज़र जाती है
कभी उनके लिए अच्छी सुबह निकल जाए
इसी उम्मीद पर कुछ लोग जिया करते हैं
न कोई हादसा हो और हो तो टल जाए
हार जाते हैं ज़िन्दगी की जंग जो भी यहाँ
काश, उनका भी ये मौसम कभी बदल जाए
अब भी कुछ लोग यहाँ इस भरोसे हैं 'पंकज'
लाख खोटा हो मग़र उनका सिक्का चल जाए।

4
जब हिदायत कोई सरकार की आ जाती है
बात तब जनता के दरबार की आ जाती है
थामना चाहता हूँ जब मशाल हाथों में
बात अपनी नहीं घर–बार की आ जाती है
कल तलक तय भी कहाँ था मसौदा मुद्दों का
फिर ख़बर कैसे ये अख़बार की आ जाती है
अपनी कोशिश तो समाधान की होती है मग़र
बहस में चर्चा क्यूँ तलवार की आ जाती है
घर की बुनियाद हो कमज़ोर तो अक़्सर 'पंकज'
शाम तें फिर दर–ओ–दीवार की आ जाती है।

1. ग़ज़लें : राहुल शिवाय

राहुल शिवाय
बेगुसराय, बिहार
मो–8240297052

अँधेरी रात है पर रोशनी सलामत है
ग़मों के बीच भी ये ज़िन्दगी सलामत है
मुझे तो इस सदी में कुछ नया नहीं दिखता
नयी सदी में भी पिछली सदी सलामत है
जहाँ शहर हैं बसे, हैं वहीं विकल नदियाँ
अभी भी दश्त में बहती नदी सलामत है
नये–नये से मकाँ आसमाँ को चूम रहे
कि ऐसे दौर में भी मुफ़लिसी सलामत है
हज़ारों वर्षों से नदियाँ को पी रही है ये
मगर इस धूप की भी तिश्नगी सलामत है।

2.
रंग चाहे जो भी हों किरदारों के दस्तार में
आस्था सरकार की रहती है कारोबार में
हर तरफ़ मायूस पतझड़ ही दिखाई दे रहा
कोहरे ने धूप का सौदा किया बाजार में
आगजनी में हैं उन्हीं के हाथ सुन लो साथियो
आज जो सम्मान पाने जा रहे दरबार में
कौन जुर्रत प्यार करने की करेगा अब यहाँ
नफ़रतों ने प्यार को चुनवा दिया दीवार में
भूख के क़िस्से हमारी शायरी तक ही रहे
और विज्ञापन सजे हर दिन यहाँ अखबार में
गाँव, घर, बस्ती, शहर सब कुछ वहीं पर रह गया
सिर्फ मँहगाई बढ़ी, इस वक़्त की रफ़्तार में
एक दिन होगा तुम्हारे जुल्म का भी फ़ैसला
जीत यह बदलेगी जिस दिन हार के आकार में।

3.
हर गली में, हर सड़क पर आदमी ख़ामोश है
मौत से बदतर हमारी ज़िन्दगी ख़ामोश है
मुल्क की हर चीज को अब लूटते धनवान हैं
कुछ नहीं बदलेगा जब तक मुफ़लिसी ख़ामोश है
बेचकर पिछली सदी की सारी आमद खुश है वो
क्या बचेगा, कुछ नहीं, मुर्दा–सदी ख़ामोश है
जुल्म को सहने की आदत पड़ चुकी है दोस्तो
माँ भी कल ख़मोश थीं, अब बेटी भी ख़ामोश है
एक कब्रिस्तान जैसी दीख रही है आज ये
रोज़ लाशें ढो रही बेकल–नदी ख़ामोश है।

4.
हम बात अपने दिल की बता भी नहीं सके
कुछ जज़्ब ऐसे थे कि छुपा भी नहीं सके
रातें कटें सुकून से, सो दिन गँवा दिया
बिस्तर पे मुश्किलों को भुला भी नहीं सके
हमने हज़ार शेर लिखे उसके वास्ते
जिसको कि एक शेर सुना भी नहीं सके
अहले जहाँ को वे रहे ताबीज़ बाँटते
जो आफ़तों से खुद को बचा नहीं सके
दिन–रात बो रहे थे पसीना वो खेत में
ऐसी उगी फ़सल कि वो खा भी नहीं सके
ऐसे गिराओ मत मुझे अपने ज़मीर से
जिससे कि जिस्म खुद को उठा भी नहीं सके
पंजे में हाथ उनका गिरा मैं नहीं सका
पर वे तो मेरा हाथ झुका भी नहीं सके।

नफ़ीस परवेज़
निकट जामा मस्जिद,
मोहम्मद नगर, नूरपुरा,
जिला-बिजनौर (उ. प्र.)

(1)
हो रही है दिल में फिर हलचल बहुत
हैं अदाएँ आपकी चंचल बहुत
देर तक अच्छी ही है बेरुखी
बरहमी होती है पल दो पल बहुत
वह मज़ाक़े-वज़ादारी क्या हुआ
मैला-मैला तेरा आँचल बहुत
जाने कब खुशियों का मौसम आएगा
उजड़ा-उजड़ा दिल का है जंगल बहुत
हम ही क्या 'परवेज़' दीवाना बनें
उनकी ख़ातिर लोग हैं पागल बहुत।

(2)
झाँके है ऐसे अब्र के टुकड़ों से माहताब
जैसे उठा उठा के गिराए कोई नक़ाब
पढ़ कर कभी भी देख ले इंसान अमल का बाब
पोशीदगी में रहती है इक़-इक़ खुली क़िताब
नफ़रत बदल ही जाएगी इक दिन खुलूस में
देते रहे जो फूल से पत्थर का तुम जवाब
अपना भी कोई अपनों को पहचानता नहीं
हालात किस क़दर हैं ज़माने के अब खराब
सहमे हुए हैं महरो-वफ़ा जुल्मो-ज़ोर से
जाने यह कैसा आ गया 'परवेज़' इंकलाब।

(3)
सच भला यहाँ कहाँ
झूठ है जहाँ तहाँ
कोई न जा सके जहाँ
जाकर दिखाओ तुम वहाँ
यह भी है कोई ज़िन्दगी
दिल वहाँ है हम यहाँ
सच्चा है सिर्फ़ एक तू
झूठा है सारा जहाँ
हाथ में क़लम को थाम
कट गई है गर ज़बाँ।

(4)
शोलए-दिल है दहका, तुमको है जैसे देखा बिजली गिरा गए हो
अरमाँ जगा गए हो, दिल में समा गए हो, जादू जगा गए हो
मेरे लबों पे नग़मे, रह-रह के बिखरे कितने, इक़ साज़े-इश्क़ बन के
जज़्बात की गली से, इस दिल की महफ़िलों में, तुम जब से आ गये हो
हर आन सोगवारी, हर लम्हा बेक़रारी, खुद से बेनियाज़ी
तुम सुबह बन के आए, फिर रात बनकर मेरे ख़्वाबों पे छा गए हो
बेकैफ़ है सवेरा, हर सिम्त इक अँधेरा, दिल मुज़्तरिब है मेरा
आओ क़रीब आओ अपना मुझे बनाओ, तुम दिल पे छा गये हो
समझो न तुम नज़ाकत, ये वरहमी की आदत, इक सर बसर क़यामत
'परवेज़' भी है गुमसुम, जब से प्यार की तुम शमा जला गए हो।

1
ग़ाज़ अब गिरने लगी है धर्म और ईमान पर
जंग अब छिड़ने लगी है, गीता और कुरान पर
मंदिरों की शंख–ध्वनियाँ दबी–दबी क्यों लग रहीं
अंगुलियाँ उठने लगी हैं भक्त और भगवान पर
सच्चाई की राह में खतरे ही खतरे क्यों खड़े
सच बोलनेवालों की बन आयी है अब ज़ान पर
विनती से बात अब यहाँ बिल्कुल बनती नहीं
लोग उतर आए जब से बंदूकों की तान पर
नफ़रत की गहरी लकीरें चेहरे पर नक़्श हैं
बन्दिशें हजार अब तो हरेक की मुस्कान पर
आदमी आता नहीं अब बिना मुखौटे के नज़र
बहस छिड़ गई अब तो हरेक की पहचान पर
हर चीज़ बिकाऊ यहाँ ख़रीददार भर ही चाहिए
बिकाऊ हैं नेता अब तो राजनीति की दुकान पर
भ्रष्ट हुआ हर 'तंत्र' यहाँ कष्ट में तो 'लोक' है
लूट के इल्ज़ाम है देश के साहेबान पर
काली रात है कालेधन की बात लगती खाली खाली
जनता मस्त झूमती है जुमले की हर तान पर
करें कैसे यक़ीं खुशहाली की बातों पर
मुसीबत के बादल जब छाये हों आसमान पर
'सत्यमेव जयते' उद्घोष का क्या हुआ बोलो ज़रा?
अब झूठ क्यों पहुँच जाती है ऊँचे–ऊँचे पायदान पर।

2
अपनी उम्र हमें जी लेने दो यारों
हमें मौत के पहले ही न मारो
हो सके तो भावनाओं को स्वर दो
बेहतर दुनिया की तलाश करो यारों
इक नई रोशनी की चाह है हमें
अँधेरे में मत गुनाह करो यारों
क्यों दहशत से भर जाते हो हम शक्ल को देख
तुम्हारी ही बसाई गई दुनिया है यारों
एक घर तो ऐसा जरूर बनाया जावे
सबका जिसमें बसर हो सके यारों।

3.
हमें नहीं चाहिए ऐसी ऊँचाइयाँ
जहाँ साँसों में ज़हर घुला हो
विकास का हिमालय व्यर्थ है
जो तेज़ाबी बर्फ़ से ढका हो
हमें नहीं चाहिए ऐसा वरदान
जो अनीति के पलड़े में तुला हो
हमें नहीं चाहिए फ़ायदे का बाज़ार
जिसके पीछे शोषण का व्यापार हो
(बाज़ार नेमतों का नहीं चाहिए
जिसमें तबाही का इकरार खुला हो।)

बसंत राघव
बोईरदादर, रायगढ़ (छतीसगढ़)
मो.–8319939396

4
रफ़्ता रफ़्ता आदमी हैवान होता जा रहा
लाश बिछाता, लाश ओढ़ता मशान होता जा रहा
लाशों का ढेर लगाकर ज़श्न मना लेता है
अपनी दरिन्दगी से अन्ज़ान होता जा रहा
क़त्लेआम मचा, चैन से सो जाता है
किस मिट्टी का बना ये पाषाण होता जा रहा
मौत का सौदागर, मौत का मुलाज़िम है यह
मौत पर फ़िदा हो, कुर्बान होता जा रहा।

मधुकर बनमाली
मुजफ्फरपुर (बिहार)
मो.–7903958085

1
यायावर सा बढ़ जाते हो
जंगल से जंगल जाते हो
कैसे तुमको तलब लगी है
ऊँचे पर्वत चढ़ जाते हो
बाट तुम्हारी कौन जोहता
मिलने को विकल हो जाते हो
किसने तुमको पथिक बनाया
मौका मिले बहर जाते हो
ज़्वार, बाज़रा, मूली, भाज़ी
तृण की सेज़ पसर जाते हो
किस झरने का मीठा पानी
पीते रोज़ निखर जाते हो
हृदय समाने वाले 'मधुकर'
दृग जल बनकर झर जाते हो

2.
तुम बिन
रात तुम बिन गुज़र नहीं सकती
दो घड़ी को ठहर नहीं सकती
सोचता हूँ कभी न याद करूँ
आदतें सब सुधर नहीं सकती
तू भी शिद्दत से इश्क़ करती है
दायरे से उबर नहीं सकती
तेरा चेहरा गुलाब जैसा है
और ज़्यादा निखर नहीं सकती
फूल से दोस्ती भले होगी
उसके जैसे बिखर नहीं सकती
रात चादर लिये न कुहरे की
चाँदनी भी पसर नहीं सकती
मन की वीणा का तार छेड़ा है
ऐसे 'मधुकर' मुकर नहीं सकती।

3.
देवता कोई न था
कह रहे पापी हमें, पर देवता कोई न था
हाथ में पत्थर सभी के, हमनवा कोई न था
दोष अपना क्या बताएँ आदमी जो हो गये
खोज़ बैठे आदमी को पर दिखा कोई न था
प्रेम का दीपक ज़लाया आँसुओं के तेल से
रात भर ज़लता रहा ज्यों, यूँ ज़ला कोई न था
चार दिन की चाँदनी सम, मिल सकी कुछ रौशनी
बुझ गया अब दीप जैसे, यूँ बूझा कोई न था
दर्द अपना ही बहुत है सोचकर होते दुखी
गौर से देखा अभी जो, खुशनुमा कोई न था
चाँद की सूरत सलौनी, जो चमकता रात भर
दाग उसमें भी बहुत थे, देखता कोई न था
कुछ ग़लत करता न 'मधुकर' मुफ़्त ही बदनाम है
बात सच्ची कह गया जो, बोलता कोई न था।

सरोज व्यास
वर्मा ले-आउट,
नॉर्थ अम्बाझरी रोड,
नागपुर (महाराष्ट्र),
फोन - 0712-2238707

(1)
काँच की एक मंजुषा में बन्द हो गए
खोखले कितने यहाँ सम्बन्ध हो गए
सिसकियों की आँच से पिघले नहीं
पत्थरों से मोम के अनुबन्ध हो गए
बज उठी पायल सी, तो समझे नहीं
अनबूझे गूढ़ार्थ सारे छन्द हो गए
बिन किसी डाली या कोटर में बने
नीड़ों के आकाश में प्रबन्ध हो गए
देखने में हैं तो मानव, दो ही आँखें हैं
असुर भी लजा गए, 'कबन्ध' हो गए।

(2)
अनजाने शहरों की गलियाँ पहचानी क्यों हैं
रूखे से लमहों में, हँसती ज़िन्दगानी क्यों है
मीलों लम्बे फैले से, इस रेत के सागर में
प्यासे से माँगे नदिया, फिर पानी क्यों है
मीरा के प्याले में देखो, ज़हर लबालब है
लगन प्रेम की, फिर कहलाती दीवानी क्यों है
यहाँ भीड़ में खोज रहे हैं, हम हमदर्दों को
हर जानी-पहचानी सूरत बेगानी क्यों है
बिके नहीं कुछ पल बाक़ी हैं, रहमो-करम के देखो
ज़िन्दा-लाशों को मरने में, आसानी क्यों है।

(3)
जब दिल को लगती बात, ग़ज़ल तब होती है
हो लम्बी दुःख की रात, ग़ज़ल तब होती है
खुशियों के आँगन में कोई 'लहरा' जरा बिखर जाए
पर ग़म की हो बरसात, ग़ज़ल तब होती है
हर रोज़ हमारे हाथ उठे, आदाबो-सलामों में
बरसों बिछड़ा हो साथ, ग़ज़ल तब होती है
रिश्तों के आँगन छोटे हों, लम्बी लम्बी दीवारें
सहमे-सहमे जज़्बात, ग़ज़ल तब होती है
फूलों की लेकर आड़ कोई काँटा जब चुभ जाए
अपना कर बैठे घात, ग़ज़ल तब होती है।

(4)
इस पार हो गए, उस पार गए
हर बार मगर हम हार गए
जंगल में घने, ढूँढे जुगनू
हम कितने सूरज हार गए
वहशत जो देखी दुनिया में
हम सारी वहशत हार गए
उजियारे शाम के कितनी देर
अंधियारे आख़िर मार गये
बाग़ों की रौनक लाने को
माली तक चुभने खार गए।

रमेश कटारिया 'पारस'
30, कटारिया कुंज,
गंगा विहार महल गाँव,
ग्वालियर - 474002,
मोबाइल - 9893373562,
9893373563

(1)
दर्द सा इक जगा गया कोई
आग ऐसी लगा गया कोई
ज़िन्दगी रात से भी काली थी
एक सूरज उगा गया कोई
फूल हर सू खिले थे गुलशन में
उनमें जुगनू लगा गया कोई
मेरा भी नाम उसके साथ साथ आता है
नसीब मेरा जगा गया कोई
हर वक़्त उनका इन्तज़ार करता हूँ
मुझको एक काम से लगा गया कोई।

(2)
उनसे विसाल का हर मंज़र नदारद था
सजदे को गया मैं तो उनका दर नदारद था
सोचा कि नाव अपनी किनारे से लगा दूँ मैं
नाखुदा ग़ायब था लंगर नदारद था
मैं छोड़ के आया था जो हँसता मुस्काता
मासूम सा वो मेरा शहर नदारद था
जी चाहा उड़ूँगा मैं आकाश में जाकर
पर तौलने लगा तो मेरा 'पर' नदारद था
सर रख दूँ मैं अपना ये सोच के 'पारस' ने
सर उनको झुकाया तो मेरा सर नदारद था।

(3)
जिसकी तलाश थी जब वो ही नहीं है
तो यूँ समझिए यहाँ कोई नहीं है
रात भर बहते रहे वो अश्क मेरे अपने थे
मेरे लिए शबनम कभी भी एक पल रोई नहीं है
जागा किए हैं अक्सर चन्दा के साथ हम भी
आँखें तुम्हारी याद में सोई नहीं हैं
जब से रँगी है रंग में तेरे ये चुनरिया
किसी बावड़ी कुएँ पे हमने धोई नहीं है
'पारस' तुम्हारे पाँव में काँटे चुभे कभी
हमने कोई ऐसी फ़सल बोई नहीं है।

(4)
संग दिल से दिल लगाया इसलिए रोना पड़ा
इस क़दर मजबूर था कि बेवफ़ा होना पड़ा
पाक दामन पर जफ़ा के दाग़ इतने पड़ गए
रात दिन अश्कों के सागर से उसे धोना पड़ा
वो न मिलते तो बड़े आराम से था दोस्तो
उनसे मिलकर चैन सुख सब मुझे खोना पड़ा
एक लम्हे का मिलन और ये सदियों का बिछोह
दूर उनसे आज होकर क़ब्र में सोना पड़ा
'पारस' तुम्हीं बताओ अब इसका क्या करूँ
जो भी मैंने दाँव खेला हर दाँव ही उल्टा पड़ा।

नूर मुहम्मद 'नूर'
सी.सी.एम. कॉम्प्लेक्स,
द. पू. रेलवे,3, कोयला घाट स्ट्रीट,
कोलकाता - 700001,
मोबाइल - 09433203786

(1)
किन सज़ाओं तक मुझे मेरी ख़ता ले जाएगी
मुझको आख़िर दूर तक कितनी वफ़ा ले जाएगी
मुझको अपने रास्ते का इल्म है अच्छी तरह
क्यों नहीं मुझको कोई पागल हवा ले जाएगी
मैं तो अपनी कोशिशों से जाऊँगा जंगल के पार
आपको उस पार क्या कोई दुआ ले जाएगी
जिन्दगी जब जब भी आएगी मेरी दहलीज़ पर
माँग कर मुझसे वो थोड़ा हौसला ले जाएगी
'नूर' इस अल्हड़ पवन को इस तरह से साध तू
दूर तक दुनिया में वो तेरा कहा ले जाएगी।

(2)
इस सदी सी बेहया कोई सदी पहले न थी
इस क़दर बेआब, आँखों की नदी पहले न थी
क्या कहा जाए उजालों के सियाह किरदार पे
तीरगी बरदार ऐसी, रोशनी पहले न थी
क्या कहें इसको तकाज़ा वक़्त का या और कुछ
दोस्तों के साथ ऐसी दुश्मनी पहले न थी
अब तो यमुना के किनारे भी बहुत वीरान हैं
कृष्ण तेरी बाँसुरी, यूँ बेसुरी पहले न थी
मसलिहत तो है यक़ीनन जानते हैं आप भी
वर्ना जैसी आजकल है शाइरी पहले न थी।

(3)
बस्तियों में सर छुपाने को ठिकाना ढूँढना
बंजरों में पागलों सा आबोदाना ढूँढना
जिस तरह सहरा में पानी ढूंढते हैं तिश्नालब
दोस्तों के बीच रहकर, दोस्ताना ढूँढना
आदमी में आदमीयत और खुशबू फूल में
हो सके तो शहर में अब ये ख़ज़ाना ढूँढना
शेर कहना अब अदब के वास्ते, ऐसा लगे
जैसे गूँगों के लिए कोई तराना ढूँढना
ढूँढते हैं अब मेरे हमअस्र मक़तल में पनाह
'नूर' तुम लफ़्ज़ों में तेवर क़ातिलाना ढूँढना।

(4)
यूँ कि याद आती है सुब्हो-शाम नानी ताड़ पर
पर फुलेसरा की टँगी है ज़िन्दगानी ताड़ पर
देखते ही देखते जर्जर बुढ़ौती आ गई
लबनियों में चू गई सारी जवानी ताड़ पर
बेधुआँ फिर आज चूल्हा, आज फिर हँडिया उदास
रात फिर कर दी किसी ने मेहरबानी ताड़ पर
बहकी-बहकी योजनाएँ धर्म भी ईमान भी
देश गड्ढे में पड़ा है राजधानी ताड़ पर
पेट की मजबूरियों की ज़िन्दगी की चाह की
'नूर' कविता चढ़ रही है या कहानी ताड़ पर।

उमा श्री
आनंद नगर
(माता मन्दिर के पास),
होशंगाबाद
(म.प्र.) 461001

(1)
हमपे आया शबाब का मौसम
इश्क़ के इन्क़लाब का मौसम
ऐ हवा मत उलट नक़ाब मेरा
ये है मेरे हिजाब का मौसम
जामो-मीना है और रिमझिम भी
रिन्दो आया शराब का मौसम
कल्लो-ग़ारत भरी है चारों तरफ
शहर में है अज़ाब का मौसम
तेरी अंगड़ाई कह रही है 'उमा'
आ चुका है शबाब का मौसम।

(2)
उनकी आँखें ग़ज़ल होंठ मेरे कमल
मिलती है ईद देखो ग़ज़ल से ग़ज़ल
ग़ौर से देखिए इश्क़ की झील में
हुस्न के खिल रहे हैं कमल ही कमल
उनसे होके जुदा मैं तो यूँ हो गई
जैसे हो 'मीर' की नामुकम्मल ग़ज़ल
ढलना सूरज का अपनी जगह है मगर
ढलना है गर तुझे जाम की तरह ढल
हर तरफ़ तेरी शोहरत है फैली 'उमा'
शौक से लोग पढ़ते हैं तेरी ग़ज़ल।

(3)
हर्फ़ हर्फ़ ईमान हुआ है
उनका ख़त कुरआन हुआ है
हुस्न के राजमहल में देखो
इश्क़ मेरा दरबान हुआ है
दिल ही लिया है मैंने तेरा
कौन बड़ा नुकसान हुआ है
सर्वव्यापी है इसकी महिमा
पैसा ही भगवान हुआ है
लगी नज़र है किस दुश्मन की
बाग 'उमा' वीरान हुआ है।

(4)
जो भी एहले-सुख़न हो गया
मालिके-बाँकपन हो गया
लंका लगने लगी ज़िन्दगी
सुख सिया का हरण हो गया
लब ने लब पर लिखी जब ग़ज़ल
दिल था सहरा चमन हो गया
मैं तो धरती थी धरती रही
प्यार मेरा गगन हो गया
प्यार से छूके तुझको 'उमा'
काँटा काँटा सुमन हो गया।

रवीन्द्र रवि
निकट विवेकानन्द चौक, कटनी (म.प्र.)
फोन - 07622-297001

(1)
मेरा है पर मेरा नहीं है
उसका सच कुछ पता नहीं है
मैं उसकी ख़ामोशी सुनता
उसने कुछ भी कहा नहीं है
शायद उसने भुला दिया है
महकी-महकी हवा नहीं है
कई समुन्दर आँखों में है
पलक से क़तरा गिरा नहीं है
दूर-दूर तक सन्नाटे हैं
इस सहरा में सदा नहीं है।

(2)
आँखों में आग का इक दरिया सा रहता है
क्या सोचता है तू क्यों ख़फ़ा सा रहता है
हर तरफ़ तू ही तेरा ही शोर है
ता-हदे-नज़र तेरा क़ाफ़िला सा रहता है
दूर हो गई है सारी मुफ़लिसी मेरी
बस यही ख़्वाब में गुमाँ सा रहता है
इक यही सवाल का हल निकलता नहीं
किस शहर में, कौन, कहाँ अपना सा रहता है
खुले हाथ से ग़मे-दौलत लुटा दी मुझपे
ज़िन्दगी से फिर क्यों गिला सा रहता है।

(3)
आगे-आगे चलता है
मुझसे कितना जलता है
दुश्मन है तभी तो मेरी
वो साँसों में पलता है
उठकर मेरी नींदों में
करवट कोई बदलता है
तन्हाई जब साथ चले तो
साथ किसी का खलता है
ग़म का दरिया यादों में
लम्हा-लम्हा जलता है।

(4)
ये दुनिया, जरा सा सिमट जाए
या मेरे रास्ते से हट जाए
इक इन्साँ मुक्क़मल में हो जाऊँ
कोई हादसा सफ़र में घट जाए
दिल में ही दर्द ये महफ़ूज़ रहे
मैं बोलूँ जुबाँ मेरी कट जाए
हो जाए कुबूल दुश्मन की दुआ
आफतें घर मेरे ही डट जाए
मेरी ज़िन्दगी की जब मौत से जंग हो
एक बार में ही ज़िन्दगी निपट जाए।

अंजनि कुमार शर्मा
सियाराम नगर, भीखनपुर, भागलपुर (बिहार)
मोबाइल - 9831214685

(1)
रात जाएगी सवेरा होगा
कोहरे का न ये घेरा होगा
हाथ को हाथ नहीं दिखेगा
रोशनी क्या वो अँधेरा होगा
तय शुदा मित्र से मिलना जो है
मोड़ आने पे ही फेरा होगा
शहर में लौट तो आया हूँ मैं
दिन पता क्या कभी मेरा होगा
शहर में आबो-हवा बदली है
कोई कूँची से उकेरा होगा।

(2)
अब रौब के तले ही बसने लगे हैं लोग
फुफकार कर पलट कर डँसने लगे हैं लोग
फ़ीकी पड़ी है ताक़त सच की सभी तरफ
सच पर ही फ़ब्तियाँ अब कसने लगे हैं लोग
जबड़ा है भेड़िए का पंजा है शेर का
अपने ही जाल में अब फँसने लगे हैं लोग
चारा चबा गया है चर्चा है मुल्क में
उल्टी बहा के गंगा भँसने लगे हैं लोग
अपराध कर रहे हैं मज़हब के नाम पर
हैवानियत के हद पर हँसने लगे हैं लोग।

(3)
यहाँ इस तरह कुछ बनाए गए हैं
पुराने महल ही सजाए गए हैं
हुआ है जमाना भी खुदगर्ज़ इतना
हवा में उछलने सिखाए गए हैं
सितारे हजारों धरा पर खड़े हैं
हमेशा डराकर सताए गए हैं
महल भी नए जितने तामीर उनसे
गुनाहों के परचम उड़ाए गए हैं
करो अंजनी अब फिक़र मत जरा भी
जुल्मो-क़हर तुम पे ढाए गए हैं।

(4)
फिर लगाकर बस्तियों में आग कोई
गा रहा है दूर जाकर फाग कोई
एक भी मेहमान तो आता नहीं है
फिर उचड़ता क्यों यहाँ पर काम कोई
हम सिमाने पर लड़ाई लड़ रहे थे
आस्तीं में ही छिपा था नाग कोई
जब मिली ऋतुराज आने की खबर तो
देखकर हर्षा गया फिर बाग कोई
आदमियत तीन कौड़ी का हुआ है
फिर उछाला जा रहा है पाग कोई।

डॉ० मनाज़िर आशिक़ हरग़ानवी
कोहसार, भीखनपुर-3, भागलपुर
बिहार, मोबाइल - 09430966156

(1)
मेरी ग़ज़लें जवाँ कुछ इसलिए हैं
असासे शायरी तेरी ज़बीं है
ज़माना कद्रदाँ है मेरे फन का
रबाबे नग़मगी तेरी ज़बीं है
लिखीं उज्वे सरापा पर जो ग़ज़लें
सबब इनका वही तेरी ज़बीं है
मनाज़िर का नहीं ये रंग लेकिन
कहाँ ले आई भी तेरी ज़बीं है

(2)
मुझको लाए हैं अब वहाँ अबरू
लूट लेते भी हैं जहाँ अबरू
अहले हक़ को ख़बर भी है कि नहीं
दुश्मन इमाँ के हैं यहाँ अबरू
सारे आज़ा हसीं हैं पैकर के
पर क़यामत हैं कुछ ज़वाँ अबरू
रूए ज़ानाँ की हैसियत भी सही
पर खिलाते हैं गुलसिताँ अबरू।

(3)
जिसके दीदे का गिर गया पानी
उसकी आँखों से मत मिला आँखें
बिख़रे हर सू हैं ज़ल्व-ए-ज़ानाँ
उनके दीदार से बसा आँखें
ग़र बुराई नहीं मिटा सकता
ऐसे मंज़र से तू छुपा आँखें
लुत्फ़ जीने का है मनाज़िर क्या
जब हों उनकी भी बेवफ़ा आँखें।

(4)
मर जाये बेमौत कोई
शौक ऐसा है नाक तेरी
दोस्त ही क्या कि दुश्मन भी
जिसपे फ़िदा है नाक तेरी
चेहरा है गुलज़ार अगर
फूला खिला है नाक तेरी
आह मनाज़िर के हक़ में
तल्ख़ दवा है नाक तेरी।

डॉ० अमरेन्द्र
लाल खाँ दरगाह लेन,
सराय, भागलपुर (बिहार),
फोन - 2428067

(1)
अलग हैं चाहने वाले कई तो घर उठा लाए
जिन्हें यह रास न आया तो वो ख़ंजर उठा लाए
सुना था चाँद पर दादी वहाँ तकली चलाती है
वहाँ पहुँचे भी तुम लेकिन यहाँ पत्थर उठा लाए
बड़े ही शौक से अपना ये दिल दे आए थे तुमको
तुम्हारी बेरुख़ी ही देख कर आख़िर उठा लाए
मेरी दीवानगी दिल की न जानी थी न जाएगी
मेरे क्यों वास्ते तुम स्वर्ग का मंज़र उठा लाए
बिगाड़ेगा ही महफ़िल को कहेगा बेतुकी ग़ज़लें
तुम्हें लाना 'अनल' को था ये 'अमरेंदर' उठा लाए।

(2)
जो जितना ही ऊपर से दीखता निडर था
सचाई थी भीतर से उतना ही डर था
न ईंटा न पत्थर न पाया न छप्पर
जिसे तुमने देखा वह मेरा ही घर था
न कहते न हँसते बस चलते सभी थे
यकीं मानो क़स्बा न गाँव था-नगर था
सभी तो वहाँ थे जब अमरित पिया था
अभी लोग कहते हैं वह तो ज़हर था
मरा जा रहा था जो अपने किए पर
तो मेरी ही ग़ज़लों का उस पर असर था।

(3)
ग़ज़ल कहो आसान नहीं है
बच्चों का सामान नहीं है
ग़ज़ल बयाँ की बारीकी है
रुक्नों का अरकान नहीं है
अपना दुःख तो कलियुग जैसा
दो दिन का मेहमान नहीं है
जब तक चाहो सुख से रह लो
दिल अफगानिस्तान नहीं है
मारोगे तो रोएगा ही
'अमरेन्दर' भगवान नहीं है।

(4)
काग़ज़ पे अब न तेरी जवानी लिखूँगा मैं
जलती हुई दुनिया की कहानी लिखूँगा मैं
प्यासी हुई ये रेत ये सूखी हुई नदी
तुम आग ही लिक्खो यहाँ पानी लिखूँगा मैं
जिस चीज़ को तू मान लिया है अजर अमर
मैं जानता हूँ फ़ानी है फ़ानी लिखूँगा मैं
मिलजुल के लिखें, तुम तो लिखो मुस्कुराहटें
ये दाग़ दिल के, दिल की निशानी लिखूँगा मैं
'अमरेन्द्र' तुमने जुल्म जो यारों के झेले हैं
ज़िन्दा रहा तो उसकी कहानी लिखूँगा मैं।

आभा पूर्वे
सम्पादक, नया हस्तक्षेप,
शरतचन्द्र पथ, मशाकचक,
भागलपुर-812001 (बिहार)

(1)
एक तुम्हारा जो मुझे, नहीं मिला है पास
आँसू-आँसू हो गया, जीवन का इतिहास
किस से-किस से जा कहूँ, अपनी हालत आज
मन भीगा नाचे फिरे, तन है तुलसीदास
सबके बैठी बीच भी, चित्त बहुत है दीन
कोई समझेगा नहीं, मेरा यह वनवास
जब से जाना नेह को, धरती हुई सरंग
मेरी मुट्ठी में हुआ, पूरा वह आकाश
प्यार तुम्हारा जो मिले, तो तोड़ूँ मैं ध्यान
तोड़ न सकती मृत्यु भी, 'आभा' का उपवास।

(2)
अब जब आया है चढ़ा, नभ पर घन आषाढ़
मन तो पहले ही हुआ, अब है तन आषाढ़
पुलकित हर्षित गगन है, गुमसुम भी है मौन
गड़ा हुआ ज्यों पा गया, ज्यों वह घन आषाढ़
मरुआए तरु गुल्म ने, कहा उठा कर आँख
आए लेकिन देर से, तुम जीवन आषाढ़
आया तो आषाढ़ है, जलती लेकिन देह
एक पिया बिन दिन लगे, ज्यों ईंधन आषाढ़
'आभा' दोहा ग़ज़ल लिख, बादल पर सौ बार
आया है कल लाएगा, मधु सावन आषाढ़।

(3)
तुम बिन ऐसी ही लगी, ज्यों सूखी सी रेत
मेरे दिन ऐसे कटे, ज्यों बच्चों की बेंत
मैं रास्ते पर यूँ खड़ी, लिये तुम्हारी आस
जैसे झूले डाल से, लटका कोई प्रेत
मेघा बने न आए तुम, मैं दरकी यूँ हाय
फटा-फटा सा जेठ में, जैसे दीखे खेत
अब चेतूँ तो क्या चेतूँ, और बढ़ेगी पीर
प्रेम कुआँ है अगम तल, इसकी रही न चेत
मन भी कहीं न पास था, वह था मुझसे दूर
मेरा मन तुम ले गए, 'आभा' गई समेत।

(4)
घिर के आया मेघ जब, मन मुस्काया गीत
बन में तो बादल घिरे, देह रही क्यों रीत
तुम भी आना छोड़ गये, मैं भी हो गई मौन
किससे अपना हाल कहूँ, हारी अपनी जीत
किससे अपना हाल कहूँ, तुम भी तो बेहाल
साँसें गिन-गिन तोड़ती, दीप स्नेह की प्रीत
छोड़े जाते हो मुझे, मेरे अपने हाल
सूली पर जो टाँग दे, मीत, मीत को मीत
आना बादल जान कर, मेरे घर के द्वार
'आभा' पहली बार है, तन मन से भयभीत।

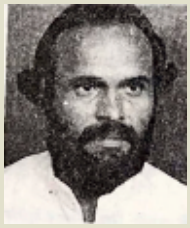

खुशीलाल 'मंज़र'
संरक्षक,
समय साहित्य सम्मेलन,
पुनसिया, बाँका(बिहार)

(1)
हम ज़िन्दगी जीते रहे हैं
फटे कपड़ों सा सीते रहे हैं
सताया आपने भी कम नहीं है
फिर नसीहत क्यों देते रहे हैं
है हुकूमत आपकी तो क्या हुआ
हर रोज़ कत्लेआम क्यों होते रहे हैं
फैलाकर दुश्मनी का ज़हर क्यों
बहती गंगा में हाथ धोते रहे हैं
होगी फ़जीहत आपकी भी एक दिन
क्यों कम्बल ओढ़ घी पीते रहे हैं।

(3)
बेतरह से सताए हुए हैं हम
समय के मारे हुए हैं हम
ज़ख़्म क्या दिखाएँ आपको
खुद लहू से नहाए हुए हैं हम
उड़ाई है हँसी आपने कैसी मेरी
फटे जिस्म को दबाए हुए हैं हम
हमारी उम्र का क्या भरोसा यारो
वैसे ही क़ब्र में लटके हुए हैं हम
कैसे कहें कि हम बेकुसूर हैं
कुसूर सिर्फ़ इतना कि सोये हुए हैं हम।

(4)
हम तो हर शख़्स को आज़माते रहे हैं
अश्क से अश्क को धोते रहे हैं
कौन कहता है हमने दुश्मनी की है
सब दोस्त यूँ ही दामन छुड़ाते रहे हैं
गर्दिश के दिन भी आए तो कोई बात नहीं
खुद अपने से अपनों को बहलाते रहे हैं
गर कोई गिला करे तो अलग बात है
हम तो अपनेपन को निभाते रहे हैं
यारों कभी आया था इस शाख़ पे 'मंज़र'
जिसे सपनों की तरह झुठलाते रहे हैं।

(5)
दर्द को दिल से लगाए कहाँ चलें
दामन में कोई बात छुपाए कहाँ चलें
आने लगे हैं स्वप्न से प्रेम के प्रतीक
विरहा के कोई गीत सुनाए कहाँ चले
ढल चुकी है जब कहीं ज़िन्दगी की शाम
यादों में कोई दीप जलाए कहाँ चले
सोने चले हैं जब कभी जुल्फ़ों की छाँव में
आँखों में कोई नींद चुराए कहाँ चले
कैद हो गए हैं मेरे गुफ़्तगू 'मंज़र'
मन में कोई आग लगाए कहाँ चले।

---

1)
जब भी देखा उसे जुदा पाया
मैंने हर बार एक खुदा पाया
जाने कब जागती वो सोती है
जब भी देखा उसे जगा पाया
जब भी लौटा कहीं से नाउम्मीद
उसमें उम्मीद को बचा पाया
उसको देखा जहाँ भी जैसे भी
मैंने बस दूध में धुला पाया
माँ सा चेहरा कोई नहीं होता
जब भी देखा तो हौसला पाया।

(2)
धूप चाहे जहाँ नज़र आए
एक टुकड़ा तो मेरे घर आए
लम्हे तारीकियों के आदम क़द
कौन जाने कि कब सहर आए
जिनको चाहा था ख़ूब शिद्दत से
शाम आए न दोपहर आए
एक पुल है तुम्हारी आँखों में
एक मंज़र मुझे नज़र आए
अपने हिस्से की धूप छाँव 'मयंक'
क्यों कहीं जाए अपने घर आए।

(3)
दिल के हर ज़ख़्म में नमी निकली
कितनी मजरुह ज़िन्दगी निकली
कोई इल्ज़ाम क्यों दूँ क़िस्मत को
कोशिशों में ही कुछ कमी निकली
जिनको चाहा था दोस्तों की तरह
हमसे क्यों उनकी दुश्मनी निकली
मेरी मुस्कान हर खुशी मेरी
मेरे होठों की बेबसी निकली
धूप अटकी थी बादलों में 'मयंक'
बाद अरसे के रोशनी निकली।

(4)
सूरज में आग दिल में बग़ावत नहीं रही
ये सच है आज सच की रिवायत नहीं रही
मुमकिन है इस फ़रेब में शामिल हों और लोग
पहले सी अब वतन से मुहब्बत नहीं रही
इज़्ज़त किसी ग़रीब की महफ़ूज़ भी रहे
ऐसी तो इस शहर की शराफ़त नहीं रही
कुछ रोटियों के मोल बिके बेटियों के जिस्म
दावा कि इसमें कोई तिजारत नहीं रही
हम खुद ही गुनहगार हैं, हैं मुद्दई भी खुद

हृदयेश 'मयंक'
203-ए, अरुणोदय अपार्टमेंट,
घोड़देव नाका, भायंदर (पूर्व) (महाराष्ट्र),
फोन - 28165435

इसमें किसी खुदा की इनायत नहीं रही
बिकने खरीदने में रुकावट नहीं रही
हम सब हुए गुलाम कि आहट नहीं रही
कुछ लोग झुग्गियों को परेशाँ हैं देखकर
पहले सी शहर की जो सजावट नहीं रही
चेहरों की झुर्रियों में है तस्वीर देश की
कहता है कौन साफ़ लिखावट नहीं रही
वे लोग जो मरे थे दवाओं के ज़हर से
तहक़ीक़ में दवा के मिलावट नहीं रही
सूरज को बादलों से निकलने की देर थी
धरती पे तीरगी की बुनावट नहीं रही।

भानु मित्र
ओंकार भवन,
पीपली महादेव की पोल, म
ानक चौक, जोधपुर,
मोबाइल - 09869610194

(1)
अपने घर में बिन घर सा क्यों है
खून का रिश्ता अवसर सा क्यों है
बच्चों के दिन क्रीड़ा विद्या के
इन हाथों में खप्पर सा क्यों है
दीवारों ने जिसको थाम रखा
उस छत को भी अब डर सा क्यों है
वो ही तवा है हाथ वही फिर भी
रोटी में अब अन्तर सा क्यों है।

(2)
दीवार हमने ठान ली गिराने की
बस देर है तो नींव को हिलाने की
सब को बना देंगे नदी उफ़ान भरी
पर्याप्त है धारा यहाँ बहाने की
यों मत बहाओ नीर को ज़रूरत है
फिर श्वेत बूँदें रक्त से गिराने की
जैसे उचित है युद्ध शान्ति में सब कुछ
है पेट को भी छूट सिर उठाने की
सब पूछते हैं मित्र को हुआ क्या है
चिन्ता वही है छाँव को बचाने की।

(3)
न अभिमान है न प्रस्थान है
यही तो पतन की पहचान है
ये मतदान ही ब्रह्मास्त्र है
समझ लीजिए अभयदान है
बता कर दलित दमित ही नहीं
तुझे बाँटने का अभियान है
तिरंगा कहीं न है मातरम्
न इक़बाल का ही सहगान है
बहुत रह लिए समय-पाश में
पलट दीजिए जो दिनमान है।

(4)
ज़िन्दगी जब उदास होती है
और जीने की आस होती है
जब ग़ज़ल मयलिबास होती है
इक सुलगती कपास होती है
क्यों न उम्मीद हो सवेरे की
रात जिसके भी पास होती है
जब से बैठी है चाँदनी दिल में
धूप ही आस-पास होती है
बूँद भी दूर तक नहीं दिखती
पास जब कोई प्यास होती है।

जहीर कुरैशी
समीर-कॉटेज, बी-21, सूर्य नगर,
शब्द-प्रताप आश्रम के पास,
ग्वालियर (म.प्र.)
फोन - 0751-2380303

(1)
बातों से सिर्फ़ बातों से ऐसा किया गया
लोगों के सामने उसे नंगा किया गया
इस 'राजनीति' के द्वारा महज़ वोट के लिए
जलते हुए सवालों को पैदा किया गया
वो भीख माँगता ही नहीं था इसीलिए
उस फूल जैसे बच्चे को अंधा किया गया
तालाब तल की कलमुँही कीचड़ को छेड़कर
उस स्वच्छ जल को व्यर्थ ही गन्दा किया गया
पत्थर विरोध करने से डरते हैं, आज भी
जिन पत्थरों पे चाकू को पैना किया गया।

(2)
वो घुप अँधेरे में ये भी कमाल कर देखे
पुरानी यादों के जुगनू निकाल कर देखे
वो सोन-मछली स्वयं चाहती है फँस जाना
कोई तो उसके लिए जाल डाल कर देखे
गवाह से वो उगलवा सका न वो उत्तर
वकील ने यूँ हजारों सवाल कर देखे
मैं किसके साथ रहूँ, इतने फ़ैसले के लिए
तमाम लोगों ने सिक्के उछाल कर देखे
मिलेंगे लाखों जहाजों के शव समुन्दर में
अगर समुद्र को कोई खँगाल कर देखे।

(3)
अनुभवों की पाठशाला ने सिखाया है बहुत
जो सिखाया है, वो मेरे काम आया है बहुत
लाख रुपए में खरीदा था पिता ने मेरा 'वर'
वो मेरा 'सर्वांग होकर भी, पराया है बहुत
आप जिसकी धीरता...गम्भीरता पर मुग्ध हैं
उस समुन्दर ने जहाजों को डुबाया है बहुत
आज भी तो है सियासत एक गणिका की तरह
इस सियासत ने मुझे भी आज़माया है बहुत
अब वो पंछी ही नहीं आज़ाद होना चाहता
मैंने उस पंछी को पिंजर से उड़ाया है बहुत।

(4)
हैं थके-सोए हुए ये लोग
आत्म-शव ढोए हुए ये लोग
ओढ़ लेते हैं सुबह मुस्कान
रात भर रोए हुए ये लोग
रह गए हैं गुमशुदा होकर
ख़ुद में ही खोए हुए ये लोग
तारकोली बात करते हैं
दूध के धोये हुए ये लोग
चाहते हैं फ़स्ल आमों की
नीम-फल बोए हुए ये लोग।

'बेकल' उत्साही
'गीतांजलि' सिविल लाइन,
बलरामपुर(उ.प्र.),
मोबाइल - 9415120838

(1)
फटी कमीज़ नुँची आस्तीन कुछ तो है
ग़रीब शर्मो-हया में हसीन कुछ तो है
किधर को भाग रही इसे ख़बर भी नहीं
हमारी नस्ल बला की ज़हीन कुछ तो है
तुम्हें तो चर्ख़ पे उड़ने से फ़ुरसतें हैं कहाँ
हमारे पाँव के नीचे ज़मीन कुछ तो है
लिबास क़ीमती रखकर भी शहर नंगा है
हमारे गाँव में मोटा महीन कुछ तो है
गुमान अहले-ख़िरद को हर एक दलील पे है
हम अहले-दिल को ख़ुदा पर यक़ीन कुछ तो है।

(2)
सादगी सिंगार हो गई
आइनों की हार हो गई
आँख ही थी ज़ख़्म की दवा
आँख ही कटार हो गई
चाँद नाव में उतर पड़ा
अब नदी अपार हो गई
दोस्तों का कारवाँ तो है
दोस्ती गुबार हो गई
'बेकल' और अश्क बह चले
जब हँसी शिकार हो गई।

(3)
वो तो मुद्दत से जानता है मुझे
फिर भी हर इक से पूछता है मुझे
रात तन्हाइयों के आँगन में
चाँद तारों से झाँकता है मुझे
सुबह अख़बार की हथेली पर
सुर्ख़ियों में बिखेरता है मुझे
होने देता नहीं उदास कभी
क्या कहूँ कितना चाहता है मुझे
मैं हूँ 'बेकल' मगर सुकून से हूँ
उसका ग़म भी सँवारता है मुझे।

(4)
जो मेरा है वो तेरा भी अफ़साना हुआ तो
समझे थे जिसे अपना या बेगाना हुआ तो
क़स्बे की ज़ियारत का सफर करने चले हो
रस्ते में कहीं कोई सनम-ख़ाना हुआ तो
तुम क़त्ल से बचने का जतन ख़ूब करते हो
क़ातिल का अगर लहजा शरीफ़ाना हुआ तो
कम ज़र्फ को इतनी न मुहब्बत से पिलाओ
लबरेज़ अगर वक़्त का पैमाना हुआ तो
'बेकल' ने तुझे दुश्मने-जानी ही कहा है
तुझसे जो अचानक कहीं याराना हुआ तो।

शहादत अली 'निज़ामी'
सी-282, डी.डी.ए. कॉलोनी,
खयाला, नई दिल्ली

(1)
एक दिन मेरा मुक़द्दर औज पर हो जाएगा
जो है पौधा आज वह एक दिन शजर हो जाएगा
अब ग़मों की राह में वह हमसफ़र हो जाएगा
तो सफर मेरा यकीनन मुख़्तसर हो जाएगा
दो क़दम पे मंज़िले-मक़सद जब रह जाएगी
मेरा दुश्मन क्या खबर थी राहबर हो जाएगा
जानता हूँ क्या मिलेगा हक़ बयानी का सिला
बस यही होगा क़लम मेरा सर हो जाएगा
मत भरोसा कर 'निज़ामी' चार दिन की उम्र पर
तेरा ख़्वाबों का महल एक दिन खण्डहर हो जाएगा।

(2)
जब ग़म के रास्तों से गुज़रेगी ज़िन्दगी
हर हर क़दम हमको निखारेगी ज़िन्दगी
हमको वफ़ा खुलूस मोहब्बत के वास्ते
इक दिन तो देख लेना पुकारेगी ज़िन्दगी
मुद्दत हुई कि दिल से न आई कोई सदा
कब साज़े-दिल के तार सुधारेगी ज़िन्दगी
आएँगे बन सँवर के जब उनके तसव्वुरात
लफ़्ज़ों की काइनात सँवारेगी ज़िन्दगी
ऐसा ज़रूर होगा किसी रोज़ देखना
बाज़ी वफ़ा को मौत से हारेगी ज़िन्दगी।

(3)
मेरा दिल जिसने तड़पाया बहुत है
मेरे दिल को वही भाया बहुत है
सितम सहना और उस पर मुस्कुराना
हुनर यह मेरे काम आया बहुत है
मेरे हमराह रहता है मुसलसल
तेरा ग़म मुझको रास आया बहुत है
भरोसा क्या करें अब मौसमों पर
गए मौसम ने बहकाया बहुत है
न घबरा गर्दिशों से ऐ 'निज़ामी'
बुज़ुर्गों का अभी साया बहुत है।

(4)
लफ़्ज़ों में चाशनी है ज़बाँ में मिठास है
इन्सानियत का दर्द हमारा लिबास है
मैं जिसको ढूँढता हूँ ज़माने की भीड़ में
मेरी नज़र में रहता है वह दिल के पास है
साकी तेरा करम अभी मुझ पर नहीं हुआ
बस मैकदे में मेरा ही खाली गिलास है
आएगा वह ज़रूर किसी रोज़ लौटकर
आँखों को इन्तज़ार मेरे दिल को आस है
ये कौन देखता है 'निज़ामी' को गौर से
ये कौन आज बज़्म में जौहर शनास है।

सत्यम् भारती
राजकीय मॉडल इंटर कॉलेज
नैथला, हसनपुर, बुलन्दशहर (उप्र.)
मो.–8677056002

1
प्यार की मुझको कहानी कह गया
आँसुओं की तर्जुमानी कह गया
आग जैसी जिसकी फ़ितरत है वही
पास आकर मुझको पानी कह गया
मैं ज़मीं का था, ज़मीं पर ही रहा
कौन मुझको आसमानी कह गया
मैं पिघलकर उसमें शामिल हुआ
बातें जब मुझको पुरानी कह गया
हाल मेरे हैं ग़रीबों से मग़र
वह मुझे क्यों राज़ा–ज़ानी कहा गया।

2
देखा मैंने नकली चेहरा चेहरे पर
सब कुछ ही था कितना अच्छा चेहरे पर
चेहरे से मुस्कान हटाकर देखो तुम
मिल जाएगा सच्चा–झूठा चेहरे पर
मैंने जबसे उसको देखा सपनों में
दिखता है इक रूप सुनहरा चेहरे पर
अक्षर–अक्षर सत्य दिखाई देता है
सुख–दुख सब कुछ आकर ठहरा चेहरे पर
पूरा ही है चाँद तुम्हारा यह चेहरा
ओढ़ो मत तुम कोई दुखड़ा चेहरे पर।

3
प्यार और तकरार तुम्हीं से
फिर–फिर है मनुहार तुम्हीं से
पतझड़ मन का दूर करे जो
गुलशन और बहार तुम्हीं से
तुम तक ही मेरी कविताएँ
ग़ज़लों का विस्तार तुम्हीं से
सारी दुनिया तुममें दिखती
मेरा है संसार तुम्हीं से
सपने, ख़ुशबू, बादल, जुगनू
सबका कारोबार तुम्हीं से।

4
मन ने क्या–क्या कहा है, सुनो तो सही
आज सपने दृगों में बुनो तो सही
हर तरफ़ ज्ञान बिखरा है, उसको पढ़ो
जो पढ़ा है उसे फिर गुनो तो सही
फूल चुनने को, सारा जहाँ चुन रहा
राह के काँटे भी कुछ चुनो तो सही
हर तरफ है अँधेरा, है कुहरा घना
सूर्य बनकर इन्हें तुम धुनो तो सही
सिर्फ़ अपनी कहानी सुनाओ नहीं
कौन क्या कह रहा है, सुनो तो सही।

सुभाष पाठक 'ज़िया'
समोहा, तहसील–करेरा,
जिला–शिवपुरी,
मध्यप्रदेश
मो– 8878355676

1.
लब से मासूमों की मुस्कान चुरानेवाले
कितने बेदर्द हैं अरमान चुरानेवाले
इस तरफ़ राह से चुनते हैं ये बच्चे कचरे
उस तरफ़ बैठे हैं सामान चुरानेवाले
ये ख़बर आज ही गुज़री हैं कई कानों से
आये हैं शहर में कुछ कान चुरानेवाले
चौड़े रस्ते का जो देते हैं भरोसा तुमको
बस वही लोग हैं दालान चुरानेवाले
सब के सब गर्क़ हैं मोबाइल की ही चोरी में
अब कहाँ मिलते हैं दीवान चुरानेवाले
आजकल आपको पहचान दिलाने की जगह
आ गए आपसे पहचान चुरानेवाले।

2
हम भी क्या बाहर निकल आये
चींटियों के पर निकल आए
इक कुएँ की रोकने को राह
सकैड़ों पत्थर निकल आए
धर्म की बदली है परिभाषा
जब से पगैम्बर निकल आए
बेच देना ख़ुशबुओं के हाथ
गर ज़मीं बंजर निकल आए
वो अगर चाहे तो मुमकिन है
बूँद से सागर निकल आए
तेरे दिल के हाईवे पर ही
काश मेरा घर निकल आए
एक दिन शायद करोड़ों में
कोई बाजीगर निकल आए
फँस गया 'साहिल' बहस करके
लोग तो हँसकर निकल आए।

3
आलमे–रंजिश में जेवर तोड़कर
क्या मिलेगा तुमको गौहर तोड़कर
ख़ैरमकदम आईने का कीजिये
आज ही लौटा है पत्थर तोड़कर
हो के वो सीना–सिपर निकला तो है
क्या कभी लौटेगा खंज़र तोड़कर
नफ़रतों का घर गिराया कीजिये
क्या मिलेगा प्यार का घर तोड़कर
शहरे–भागलपुर गर जाएँ कभी
खूब खायें घी का घेवर तोड़कर
बिलयकी आएगी घर–घर में खुशी
फाड़कर आये या छप्पर तोड़कर
तेरी चाहत का अगर ये शर्त है
लाएगा 'साहिल' भी अम्बर तोड़कर

4
किसी के वास्ते क्यों सारी दुनिया छोड़ देते हैं
ये कैसे लोग हैं जो डर के जीना छोड़ देते हैं
हमारी रोटियों पर हक़ परिन्दों का भी होता है
ख़याल आते ही हम थाली में लुकमा छोड़ देते हैं
सुने जाते नहीं हमसे बटाईदार के दुखड़े
जभी हम फ़स्ल का अपना भी हिस्सा छोड़ देते हैं
कभी सोचा भी है तुमने वो कैसे जी रहे होंगे
बुढ़ापे में जिन्हें बच्चे अकेला छोड़ देते हैं
जहाँ भी देख लेते हैं पड़ोसी की हरी फसलें
मवेशी को वहीं लाकर वो खुल्ला छोड़ देते हैं
निशाँ जिस राह पर पड़ जाते हैं जंगल के राजा की
हजारों जानवर डरकर वो रास्ता छोड़ देते हैं
जिन्हें है शोला–ए–नफ़रत से बेहद उन्सियत 'साहिल'
वही बारुद पर जलता पटाखा छोड़ देते हैं।

3.
उत्सव के दिन बहुत अकेले बैठे उत्सव
आँसू की झीलों में कैसे डूबे उत्सव
सन्नाटे में बीती होली, दीवाली, छठ
शहर गये हैं गाँवों के बेचारे उत्सव
कैलेण्डर में टँगे–टँगे ही रहते हैं अब
शहरों की भागादौड़ी में खोये उत्सव
नकली मुस्कानों को ओढ़े फिरते चेहरे
अवसादों की सीलन में हैं सीले उत्सव
पोता–पोती घर आये हैं दस बरसों में
बूढ़ी ठहरी आँखों में गहराये उत्सव
मन था खुलकर उत्सवमय हो जाने का पर
मजबूरी की हथकड़ियों में जकड़े उत्सव
उत्सव का असली मतलब अब शेष बचा क्या
सेल्फी लेने तक ही बस मुस्काते उत्सव
दुनियादारी रीति–रिवाज़ों को ढोती बस
बचपन ने ही सच में सिर्फ़ मनाये उत्सव।

2
रोज़ ढलकर भी नहीं इक पल ढला सूरज
घाटियों से चोटियों तक फिर चला सूरज
ठान बैठे बैर मुझसे आज कुछ जुगनू
देखकर हैरान हैं मुझमें पला सूरज
रोशनी भरता है सबकी ज़िन्दगी में वो
रोज़ तपती भट्ठियों में है जला सूरज
बादलों की ओट में कैसे थे बहकावें
गुम हो गया क्यों, आज वादे से टला सूरज
रोशनी पाकर गुमाँ में चाँद चिल्लाया
'है नहीं औकात कुछ, है क्या भला सूरज'
जेठ की इस दोपहर की थी तपिश ऐसी
उसके तन पर धूप बनकर है गला सूरज
हसरतें नभ की हुईं देखो सुहागन–सी
सुबह उसके सिर पे किसने है मला सूरज
उल्लुओं को कब उज़ाला भा सका 'गरिमा'
आँख में उनकी सदा से ही ख़ला सूरज।

1
आँखों में ख़्वाब, पाँवों में छालों को पालकर
लायी हूँ मैं अँधेरे से सूरज निकालकर
लड़की का ज़िस्म पहले तो शीशे का कर दिया
फिर उसको वो डराता है पत्थर उछालकर
ये ज़ख़्म तो दवाई से भर पाएगा नहीं
दिल की है चोट, दिल से ही तू देखभाल कर
जिसको जहाँ में हमने खुदा कल कहा था वो
अवसर को पा के बेच रहा दिल निकाल कर
मोती की चाह है तो समंदर के तल में जा
मोती कहाँ मिलेगा ये सहरा खँगाल कर
'मैं क्या कहूँ' ऐसी बातें तू मुझपे ही छोड़ दे
'तू क्या है' अपने आपसे पहले सवाल कर।

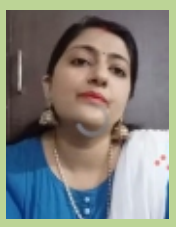

गरिमा सक्सेना
अनंतपुरा रोड यलहंका बेंगलोर, कर्नाटक
मो.–7694928448

4.
दिखाई दे रही है उसमें ख़्वाव की सूरत
अँधेरी ज़िन्दगी में आफ़ताब की सूरत
हरेक सिम्त पे बिखरी ख़्याल की खुशबू
छुपा के रखता है वो इक गुलाब की सूरत
वो मेरी मुश्किलों में मेरे साथ रहता है
नदी है वो, नहीं है वो हबाब की सूरत
हरेक हर्फ़ में वो जी रहा मुहब्बत को
मिली है उसको हसीं इक किताब की सूरत
रहा है ज़ोर सरहदों का उसपे कब 'गरिमा'
लबों पे ज़िन्दा है आबे–चिनाब की सूरत।

1
गलत कहेंगे, तो मान लेंगे, तुम्हीं कहो कुछ, ये तय नहीं था
मगर सभी के बयान लेंगे, तुम्हीं कहो कुछ, ये तय नहीं था
ज़वान ज़िस्मों की भूख जैसी, उम्मीद बेज़ा खड़ी रहे पर
वो अपनी आँखों में तान लेंगे, तुम्हीं कहो कुछ, ये तय नहीं था
उसी के तीरों से ज़िस्म घायल, लड़ाई लड़ने हमारे बाजू
उसी से टूटी कमान लेंगे, तुम्हीं कहो कुछ, ये तय नहीं था
उदास ग़ैरत के तंग हाथों में, सिर्फ अस्मत निराश नज़रें
ये ज़िस्म कोई दुकान लेंगे, तुम्हीं कहो कुछ, ये तय नहीं था
ज़रूरतें थी कभी फ़सल की, मुसीबतों में ये कीटनाशक
कभी यहाँ खुद किसान लेंगे, तुम्हीं कहो कुछ, ये तय नहीं था
लटक रहे हैं जो पाँव कब्रों में, आज अपनी हरारतों की
उसी कड़ी में उफ़ान लेंगे, तुम्हीं कहो कुछ, ये तय नहीं था
गुलामियों ने सिखा दिया है, नज़र मिले तो सलाम करना
नहीं तो हाकिम ज़ुबान लेंगे, तुम्हीं कहो कुछ, ये तय नहीं था
यक़ीं नहीं था न कल्पना थी, ज़िबह हुए जो कतिल फिर भी
शिक़स्ता पर ये उड़ान लेंगे, तुम्हीं कहो कुछ, ये तय नहीं था
शिकार कर या शिकार हो जा, ये फ़ैसला हो ज़मीन पर ही
ये ज़िद ग़लत है मचान लेंगे, तुम्हीं कहो कुछ, ये तय नहीं था
सवाल सबको बता मुझे ही, ज़लील करना हो चाहते हैं
वही यहाँ इम्तिहान लेंगे, तुम्हीं कहो कुछ, ये तय नहीं था
ग़ज़ल ज़ुबानों की मज़हबों की, या मुल्क़ की भी नहीं बपौती
कहें वो फिर भी तो मान लेंगे, तुम्हीं कहो कुछ, ये तय नहीं था
(कतिल=एक प्रकार की पक्षी) ––––––

2
जिस्म अपना है, सब पराया है
ये किसी ने तुम्हें बताया है
वक़्त पर फल भी देखना संभव
कोई पौधा अगर लगाया है
उम्र भर रास्ते ही नापे हैं
रास्ते में किसे उठाया है
अब ज़रूरत नहीं रही मेरी
आपने इस तरह भुलाया है
मैं सभी के लिए रहा अक्सर
हर किसी ने मुझे भुनाया है
फूल गिरने से फल नहीं आते
पेड़ को किस समय हिलाया है
हमको सीढ़ी बना उठे ऊपर
सबसे पहले हमें गिराया है
यार हम चाहते थे क्या बनना
वक़्त ने क्या हमें बनाया है
खिलखिलाओ तो ज़ोर से तुम भी
ज़िंदगी ने अगर रुलाया है
हमने मंदिर नहीं बनाये पर
आदमी देवता बनाया है।

महेन्द्र अग्रवाल
सदर बाजार, शिवपुरी (मप्र.)
मो.–9425766485

3
मैं लड़ूँ किसकी तरफ़ से इतनी हक़दारी मुझे
हर क़बीला सौंपना चाहता है सरदारी मुझे
मैं बदलने की करूँ ख़्वाहिश ज़रा सी भी अगर
चैन से रहने कहाँ देती है खुद्दारी मुझे
हाँ किसी की चाह में डूबा हुआ समझा नहीं
एक दिन ले डूबेगी उसकी तरफ़दारी मुझे
वक़्त, क़िस्मत बेबसी झुंझला रहा धृतराष्ट्र भी
बाँधकर पट्टी लगी संतुष्ट गंधारी मुझे
मैं ग़ज़ल का शुक्रिया वर्षों अदा करता रहूँ
हाँ इसी ने हैसियत दी और दमदारी मुझे
शेर अच्छा है, मगर कुछ तो सलीक़े से पढ़ो
मंच पर अच्छी नहीं लगती अदाकारी मुझे
मैं फ़क़त शायर समुन्दर पार मेरा नाम है
यार रुसबा मत करो यूँ कहके ज़रदारी मुझे।

डॉ. आरती कुमारी
आज़ाद कॉलोनी रोड–3
माड़ीपुर, मुजफ्फरपुर
मो. 8084505505

1
तुम्हें दुनिया की नज़रों से बचाकर साथ रखना है
मेरी चाहत का ख़त हो तुम छुपाकर साथ रखना
मेरे आँगन में ठहरे हैं तुम्हारी याद के साये
तुम्हारे आने तक दिल से लगाकर साथ रखना है
कहानी की तरह तुमको सुना सकती नहीं सबको
तुम्हें गीतों के जैसे गुनगुना कर साथ रखना है
सज़ाना है कभी हाथों में मेंहदी की तरह तुझको
कभी आँखों में काज़ल–सा समा कर साथ रखना है
मैं तितली की तरह हूँ फूल के जैसा है तू हमदम
मैं दिल हूँ सो तुझे धड़कन बनाकर साथ रखना है
सफ़र मुश्किल बहुत है और मंज़िल दूर है अपनी
हमें मुश्किल को ही हिम्मत बनाकर साथ रखना है।

2
वही मंज़र नज़र आते हैं अब हमको नज़ारों में
कि जिनमें साथ हम–तुम चल रहे हैं चाँद–तारों में
कभी मन्नत के धागों में कभी गंगा की धारों में
तुम्हें माँगा तुम्हें पाया है क़िस्मत के सितारों में
छलक आते हैं आँसू यूँ तुम्हारे प्यार में अक़्सर
कि जैसे बारिशें पत्ते भिगोती हैं बहारों में
सुखद अहसास होता है तुम्हें जब सोचते हैं हम
लगे ऐसा कही हो बात तुमने कुछ इशारों में
अगर हो साथ तुम तो डर नहीं है मौत का हमको
खुशी से चल पड़ेंगे पाँव अपने इन शरारों में।

3
हम तरफ़ है शोर ज़ारी, ख़ौफ़ तारी है
मन व्यथित है साँस भारी, ख़ौफ़ तारी है
वक़्त है हम चुप न बैठें हाथ बाँधे यूँ
अब तो लें कुछ ज़िम्मेदारी, ख़ौफ़ तारी है
हर घड़ी है सबके मन में सोच यह हावी
कब यहाँ है किसकी बारी, ख़ौफ़ तारी है
ज़ात मज़हब नस्ल पैसा, कुछ नहीं देखे
इसके आगे सब भिखारी, ख़ौफ़ तारी है
ख़बरें मुर्दों से भरी चैनल से रिसता खूँ
ख़ौफ़ में जनता है सारी, ख़ौफ़ तारी है
ये सियासत मौत पे भी ज़श्न है करती
कुछ कमी इसमें हमारी, ख़ौफ़ तारी है।

4
मेरे सीने में दिल तुम्हारा है
हाय कितना हसीं नज़ारा है
ख़ौफ़ क्यों हो मुझे अँधेरों से
मेरी क़िस्मत का तू सितारा है
तुझ तलक बार–बार आती हूँ
मैं लहर और तू किनारा है
तेरा–मेरा नहीं है अब तो कुछ
पास जो भी है सब हमारा है
याद आई है रेत की मछली
तेरे बिन जब भी दिन गुज़ारा है
हिम्मतो हौसला है तुमसे ही
और चैनो सुकून सारा है।

भगवती प्रसाद द्विवेदी
सर्जना, बिस्कुट फैक्ट्री रोड
मगध आईटीआई के निकट
नासरीगंज, दानापुर, पटना (बिहार)
मोबाइल – 9304693031

1
जन.गण.मन की पीर
नानक की जागीर लिखेंगे
साखी.सबद.कबीर लिखेंगे
मर.मर कर जी उठने वाले
जन.गण.मन की पीर लिखेंगे
बूँद लहू की टपके टप.टप
मिहनत की तासीर लिखेंगे
एके सबद अढ़ाई आखर
राँझा के मुख 'हीर' लिखेंगे
दहके.लहके, मह.मह महके
जूझे सकल शरीर लिखेंगे।

2
रामभरोसे
गाल बजाएँ रामभरोसे
पचरा गाएँ रामभरोसे
जल में रह मगरों से कैसे
बैर बढ़ाएँ रामभरोसे
खुद बलिदानी बन राजा का
मुकुट बचाएँ रामभरोसे
भाषण.नारों में खुद को पा
बस अगराएँ रामभरोसे
बलि का बकरा बन 'जाई' पर
खूब लुभाएँ रामभरोसे
जागर हर पल तोड़ें तब भी
लोला पाएँ रामभरोसे
धोबीपाट पटक देंगे जब
धूल चटाएँ रामभरोसे।

3
थाह नहीं है
चाह बहुत है, राह नहीं है
तैरें कितना, थाह नहीं है
मरते बूढ़े, बगिया, पोथी
नवयुग की परवाह नहीं है
मुरझाए बिरवा रचना का
जाती उधर निगाह नहीं है
तुरत मिताई तुरत सगाई
होती मगर निबाह नहीं है
पीर हिया की अदहन बनकर
डभके कैसे, धाह नहीं है।

4
उसकी पीड़ा
जबरा जाबे, डर बोए
जबह करे, मुखिया होए
पीर पराई जो बुझे
वह अपना दुःख क्या रोए
बहुत हँसाता है जोकर
चल, उसकी पीड़ा टोएँ
जो पाए, हरदम पाए
खोनेवाला बस खोए
बाहुबली लाठीवाला
दूध दुहे, गैया नोए।

सुभाष चन्द्र झा
पूर्व विशेष सचिव
बिहार प्रशासनिक सेवा
मोबाइल – 9431208428

1

साथ चलो
है कांटों भरा कठिन डगर, साथ चलो
अंधेरों में लिपटा है शहर, साथ चलो
मैं एकाकी भटक न जाऊँ कहीं राहों में
सन्नाटे भरा है सूना सफ़र, साथ चलो
चारों तरफ पसरी है ख़ामोशी की चीख़
फ़ीकी फ़ीकी उदास है नज़र, साथ चलो
तेरी राह में हमराह और भी हैं माना
मालूम है सारी हक़ीक़त, मगर साथ चलो
तुम मंजिल हो किसी और की जहां में
मुसाफ़िर हूँ मैं उम्रभर, साथ चलो
अजनबी है ये पत्थरों का शहर मेरे लिए
अनज़ान सारा रहगुज़र, साथ चलो
सारी उम्र वहाँ कोई साथ देता किसी का
ये लमहा भी कहीं जाये न गुज़र, साथ चलो
इस वक़्त तुम हो, मैं हूँ और ग़ज़ल है
अब किसे है कल की ख़बर, साथ चलो
तुम्हें कहाँ अपनों से फ़ुर्सत, मैं स्वयं से कब खाली
सिमटी घड़ियां न जाए बिसर, साथ चलो
अभी घना कोहरा है, दूर तक रोशनी कहाँ
जमीं.आसमां ढा रहा कहर, साथ चलो
हिचकोले खा रही क़श्ती, गहरे समन्दर में
है अंधड़, तूफान और लहर, साथ चलो
माना बड़ी सूनी.सूनी.सी है ये ज़िन्दगी
प्यार से मगर जाएगी संवर, साथ चलो
माना ग़म की रात है लंबी, दिन है भारी
बीत ही जाएगा रखो सबर, साथ चलो
रहता नहीं वसंत किसी के जीवन में सदा
बस कुछ देर का है पतझर, साथ चलो
दग़ा, धोख़ा, छल सच्चाई है लोगों की
बर्बाद करने को न छोड़ेंगे कसर, साथ चलो
अच्छे बनकर जीना, गुनाह है इस बस्ती में
अमृत को बना देंगे जहर, साथ चलो
लाख पुकारती रहे दुनिया, अपने मतलब से
न झांको कभी इधर.उधर साथ चलो।

2

फ़िर से मिलेंगे
इबादत पे अपनी एतबार है हमको
हम अपना नसीब फ़िर से लिखेंगे
दवाओं ने दर्द से कर ली है दोस्ती
ये सच तबीब को फ़िर से लिखेंगे
आपकी संगदिली आपको ही मुबारक हो
आपका हर रक़ीब हम फ़िर से लिखेंगे
ये दिल्लग़ी तो इक बहाना था यार
कम्बख़्त तारीख़ का नसीम हम फ़िर से लिखेंगे
हमारी उल्फ़त को नज़रअंदाज़ करना आसां नहीं
बारहां अमीर को ग़रीब, हम फ़िर से लिखेंगे
ये दौर अलग है, ये लोग अलग हैं माना
इस खुदगर्जी को तहज़ीब हम फ़िर से लिखेंगे
चमन में दाग़दार गुलों को ख़ार ही कहेंगे
दरम्यां फ़ासलों को क़रीब फ़िर से लिखेंगे
वफ़ा के बदले बेवफ़ाई ही फिरतरत है यहाँ
मतलबी मोहब्बत को अज़ीब, फ़िर से लिखेंगे
ये अदायें, नज़ाकत शोख़ियाँ महज़ दिखावा हैं
आपके हसीं दामन को सलीब, फ़िर से लिखेंगे
उड़ तो सकते थे हम भी आकाश में मगर
मिट्टी से जुड़ने का हक़ीब, फ़िर से लिखेंगे
तुम्हें हुस्न पे दस्तरस है ऐ हसीना.ए.नाज़नीं
खूबसूरत ग़ज़ल2लज़ीज, फ़िर से लिखेंगे।

3

खूबसूरत हो तुम
समन्दर पार उतरी शाम की तरह
खूबसूरत हो तुम अपने ही नाम की तरह
मक्खन नहाया बदन, महकता हुस्नो.शबाब
क़ातिल ज़माल आपका, 'पूनम' के चांद की तरह
रंगीन से जुदा बेहद हसीन ओ ख़्वाबीदा
जेहन में कैद तेरी तस्वीर श्वेत.श्याम की तरह
घनेरी जुल्फ़ों की बदलियां, काली घटाओं का पहरा
मय के प्याले भरे नयन, समंदरी शाम की तरह
दो बूंद पानी कभी छलके, बरसे या तरसे
लबों पे प्यास.ही.प्यास, नशीले ज़ाम की तरह
पाकर आपको पूरी हुई सदियों की तलाश मेरी
अब मंजिल बिछी राहों में, डगर सरेआम की तरह
एक.दूजे के तन.मन में यूँ समाये हैं हम
जैसे जोड़ी हो हमारी.तुम्हारी सीताराम की तरह
आओ बनायें मोहब्बत के इस पाक रिश्ते को हम
पैर छूकर किये गए आत्मिक प्रणाम की तरह
जो भी होता खास, सदा वो रहता नहीं पास
यही सच है अपने कर्म के अंज़ाम की तरह
ये दौर अलग है, ये लोग एकदम अलग हैं
हर अपने हैं यहाँ, मतलबी नमकहराम की तरह
छल, फ़रेब, धोखा, बेवफाई है आज की फ़ितरत
मोहब्बत रही ही कहाँ अब, चारों धाम की तरह
किसका कौन यहाँ मतलब की इस दुनिया में
रिश्तों में पसरी है ख़ामोशी, कोहराम की तरह
जिधर जाते हैं सब, जाना अपना उधर नहीं
चाहे जो हो ना हो, समर.ए.संग्राम की तरह।

रंगीन यादें
न रही पहली.सी मोहब्बत तो क्या हुआ
शाम मीठी मदमाती रंगीन वो यादें तो हैं
चाहे मिट जायें अपनी चाहत के सारे सबूत
जेहन में अंगड़ाइयां लेतीं ढेर सारी मुलाकातें तो हैं
जहां से देखा था पहली बार आसमां हमने
आलोकित उस धरा की खूबसूरत सौगातें तो हैं
हम लाख कोशिश कर लें फ़ासलों की
दरम्यां हमारे प्रेम.काव्य की नेमतें तो हैं
हैं तेरे.मेरे दरम्यां अब दूरियां माना
साथ चलती धड़कनें ओ सांसें तो हैं
मैं समन्दर भी हूँ मोती भी गोताखोर भी
साथ मेरे आंधी, तूफां, बरसातें तो हैं
कल की बात और है हम ऐसा रहें ना रहें
अभी तो संग.साथ महकते रिश्ते.नाते तो हैं
इस छोर से उस छोर तक फकत तन्हाइयाँ
बीच में रेंगती प्यार की मीठी बातें तो हैं
इन स्याह अँधेरों से कभी तो निकलेगी
'पूनम' की चांदनी
अपने हिस्से में अभी ढेर सारी रातें तो हैं
जो गुज़र गई वो कल की बात थी, रीत गई
हर पल को अपना बना लेने की आदतें तो हैं
वक़्त.वक़्त की बात है नजदीकियां ओ दूरियां
कुछ हो न हो हमारे बीच वो उल्फतें तो हैं।

रवि खण्डेलवाल
इन्दौर (म.प्र.)
मोबाइल – 9431208428

1
पाप का भर गया है घड़ा इसलिए
जागिए वक्त रहते सभी जागिए
मत बताना सभी को हुआ लाज़िमी
चाहिए आपको क्या भला चाहिए
धर्म अपना निभाए हुकूमत, या फिर
धर्म को जो पिलाये नशा, चाहिए
झूठ में फ़र्क क्या, सत्य में फ़र्क क्या
कथनी.करनी के अंतर को पहचानिए
हिंदुओं को सखे, मुस्लिमों को सखे
राष्ट्र की मुख्य धारा में ले आइए
राम का नाम सुमिरन करें, पर कभी
आप नारा बना कर न उच्चारिए।
जो लोग, पा के सत्ता को मदहोश हैं
लोकमत से उन्हें, होश में लाइए।

2
सवालों के सम्मुख न जो आ रहे हैं
जवाबों से खुद के ही कतरा रहे हैं
सभी दाग वाशिंग म. धुल कर रहेंगे
कमल का डिटर्जेंट, अपना रहे हैं
विरोधी की ताकत को, कमज़ोर करने
वो उम्मीदवारों को चमका रहे हैं
सनातन को लेकर, कभी शक्ति को ले
विपक्षी के शब्दों पे, भरमा रहे हैं
गारंटी की जो, दे रहे हैं गारंटी,
गारंटी का मतलब समझ पा रहे हैं
जिन्हें चार सौ पार करने की जिद है
शिकंजा मतों पर कसे जा रहे हैं
मुनासिब हुआ राज कलियुग में लाना
कि मेरठ से चुन राम को ला रहे हैं

3
उँगलियों में एकजुटता, आप यदि दिखलाएंगे
हर तरह की मुश्किलों से सामना कर पाएंगे
देश में सुख चैन हरगिज नहीं ला पाएंगे
जब तलक लोभ और प्रलोभन को नहीं ठुकराएंगे
छीन कर हक़ दूसरों का चैन से सो पाएंगे
रोटियाँ हासिल न होंगी, हाँ दवाई खाएँगे
भक्ति करनी है करें पर आँख अपनी खोलकर
अंध भक्ति, व्यक्ति की कर, है यकीं पछताएंगे
सोच पाएंगे यकीनन, आपका अच्छा बुरा
झूठ में औ' सत्य में यदि फर्क खुद कर पाएंगे
आप यदि पन्ने उलटकर देखने में लग गए
द्वेष ईर्षा पाल कर, बस वक्त को दोहराएंगे
ज़िंदगी जीना बहुत आसान हो, यदि सोच लें
साथ में क्या लाए थे 'रवि' साथ क्या ले जाएंगे।

4
क्या हुआ क्यों ज़ख्म को सहला रहे
वोट ज़ालिम को दिया पछता रहे
थाम ले पंजे में तू अपने, कमल
खौफ से धन धान्य हो कहला रहे
भर गया बदबू से जब सारा सदन
इत्र से हालात को महका रहे
आ गये बातों में उसकी क्या करें
लोग अपने आपको समझा रहे
साथ देंगे काम के औजार ही
हाथ में हँसिया रहे बरछा रहे
शेर हों दो चार, मक्ता हो न हो
हर ग़ज़ल में आपकी मतला रहे
जीतनी है वर्चुअल यदि जंग तो
आपका नहले पे 'रवि' दहला रहे।

वाई. वेद प्रकाश
द्वारा विद्या रमण फाउंडेशन
शंकर नगर, मुराई बाग
डलमऊ, रायबरेली
उत्तर प्रदेश – 229207

1
रोशनी तो है मगर छाया अंधेरा है
कोई कैसे जाने आखिर मुल्क़ मेरा है
हर तरफ फैला हुआ है एक ताण्डव
जख्म ऐसे दे गये लम्हों का घेरा है
गर्दनों पर छूरियां हर पल चलीं
बिक चुका कानून अब गुण्डों का डेरा है
हर क़दम पर मौत बिकती है यहां
जाति.मज़हब का अमूमन एक फ़ेरा है
बांटते हैं गांव.घर, बांटते हैं देश को
बंदिशों में जिन्दगी तेरा बसेरा है।

2
डरकर सब अंधियारे निकले
सूरज, चांद.सितारे निकले
बुझा सके जो प्यास ज़मीं की
ऐसे नदियां . नारे निकले
कहने को ऊंचा उड़ते थे
लेकिन सब गुब्बारे निकले
शीतलता क्या मिलती उनको
अधरों से अंगारे निकले
आखिर साथ कहां तक चलते
हिम्मत से तो हारे निकले
बसने को घर से बेघर हो
सब के सब बन्जारे निकले
नया सबेरा फिर है आया
हँसी.ख़ुशी से सारे निकले।

अनामिका सिंह
स्टेशन रोड, गणेश नगर
शिकोहाबाद, फिरोजाबाद (उ.प्र.)
मोबाइल – 9639700081

1
चिमनियाँ, तीलियाँ, डोरियाँ चाहिए
दाहने, टाँगने बीवियाँ चाहिए
सेंकने रोटियाँ अपने घर की उन्हें
सिर्फ औरों के घर बेटियाँ चाहिए
जो सितम सह के भी बोलती कुछ न हों
बज्म में दो हसीं तितलियाँ चाहिए
हुक्म जो 'रात–दिन' उनका माना करे
उनको बीवी नहीं दासियाँ चाहिए
रोकने को दमन जिस्म 'और' रूह पर
खेलनी फाइनल पारियाँ चाहिए
आप इंसान तो हम भी इंसान हैं
आत्मसम्मान संग झप्पियाँ चाहिए
'वक्त' रहते 'जुबां' खोल दो लड़कियों
ज़िन्दगी की हमें चाबियाँ चाहिए।

4
काट कर पहले उनके पर रख दो
फिर ये फ़रमान कि 'हुनर रख दो'
काम होगा ज़रूर ही होगा
दाम कुछ हाथ में अगर रख दो
बात हम भी महीन कर लेंगे
ढूँढ पूरा हिसाब ग़र रख दो
बात मुद्दों पे कोई न कर सके
हॉट टी०वी० पे 'इक़' खबर रख दो
हाँ हाँ, इससे 'ही है' ज़माना बुरा
क्यों न घर पे ये बद–नज़र रख दो
गुफ्तगू करनी है अगर हमसे
होगी, पहले अना उधर रख दो।

2
बीते पलों के फिर वही मौसम नहीं हुए
तुम भी नहीं हुए तो कभी हम भी नहीं हुए
कितनी कलाइयाँ कटीं कितने टँगे मिले
बेरोजगार फिर भी यहाँ कम नहीं हुए
गांधी, सुभाष और भगत को पढ़ा मगर
उनकी तरह तो आज तलक हम नहीं हुए
औरत पे ही तमाम लगीं बंदिशें वहाँ
आदम के भेष में जहाँ आदम नहीं हुए
कितने ही गीत और ग़ज़ल कह चुके सभी
आलोचकों की आँख में ऑसम नहीं हुए
चूल्हों में झोंक दी गईं ज़िंदा ही औरतें
शौहर हुए जहाँ, कभी हमदम नहीं हुए
कितनी उदास हो के उठी होंगी सब 'अना'
लाशें वो जिन पे ठीक से मातम नहीं हुए।

3
हम पर उसका जोर नहीं था झगड़ा इस पर था
दुश्मन ज्यादा, दोस्त हमारा वो रत्ती भर था
अभिनय में पूरे सौ नंबर उसको बनते हैं
अभिनेता है डाउट हमको होता अक्सर था
यों तो ज़ाहिर था हम पर वो पूरा शातिर है
जितना ऊपर लेकिन उससे दूना अंदर था
अब फ़रेब के चुग्गे डाले और कहीं जाकर
इन आँखों में लावा है कल जिनमें केसर था
औना.पौना ताल्लुक़ कोई हमको क्यों रखना
मेरा दिल था समझा उसने कंकड़.पत्थर था
बात.बात में रोला करना एक शग़ल जिसका
अगले ही पल उसी जुबां पर घोले शक्कर था
इश्क बुआई कर बैठे हम नहीं जमीं देखी
दूर.दूर तक उसके मन में ऊसर.बंजर था
इश्क में यारों और ख़सारा इससे ज्यादा क्या
मन में कड़वी यादों का बस बाक़ी बंकर था

1
सबको अपनी तेवर का ख़ुदा चाहिए
अब तो सबको इक मज़हब जुदा चाहिए
सब कुछ ज़िन्दगी में तयशुदा चाहिए
फिर तो तुमको भी होना ख़ुदा चाहिए
हमको भी है चाहत इक़ जजीरे की अब
हमको भी जहाँ कोई जुदा चाहिए
जो इन्सानियत से जितना ही दूर है
उतना ही बड़ा उसको ख़ुदा चाहिए
हमको जो बचा ले बीच मझधार में
कुछ ऐसा ही यारों नाख़ुदा चाहिए।

2
हर बात पर उनको ख़फ़ा कर देना
तू सीख ले उनको रज़ा कर लेना
फिर से वही दिल की सदाएँ मेरी
फिर से तेरा वो अनसुना कर देना
मैं अपनी सब बातों में संजीदा हूँ
हल्के में मेरी बातों को मत लेना
मैं सबसे मिलने का नहीं हूँ क़ायल
तुम सबको अब मेरा पता मत देना
इक कशमकश में जिन्दगी गुज़री है
आसाँ नहीं था कुछ भी तय कर लेना
बस हाथ मलते रह गए थे हम तो
था वक्त रहते फ़ैसला कर लेना।

3
फिर खलल पड़ गया है आन में क्या
दो–दो तलवारें हैं म्यान में क्या
सोचते थे भला गुमान में क्या
वो ज़रा सा भी है ध्यान में क्या
यार! अव्वल ही आना होता है
इश्क़ के सारे इम्तिहान में क्या
तुमने ज़ाया ही की है सारी उम्र
ज़िन्दगी मिल गयी थी दान में क्या
मैंने आवाज़ भी लगायी थी
कोई रहता भी है मकान में क्या
बोल कड़वे निकलते हैं तेरे
ज़हर घोला है इस ज़ुबान में क्या
आज फिर कोई फ़लसफ़ा तुमसे
ज़िन्दगी कह गयी है कान में क्या
उसने कुछ उलज़लूल कह दिया था
फिर से अपने किसी बयान में क्या।

4
हम तो अपने सूखे लब देखते हैं
पीने वाले हमको कब देखते हैं
औरों की ख़ामी तो सब देखते हैं
अपना दामन लोग कब देखते हैं
उनसे अब तक जो नहीं कह सके हम
आओ! उनसे कह के अब देखते हैं
संगदिल हमलोग कैसे हो सकते
हम तो पत्थर में भी रब देखते हैं
सात पर्दे में छुपा ले तू सच को
देखने वाले तो सब देखते हैं।

भानु झा
भागलपुर, बिहार
मो. 9155252161

नवीन माथुर पंचोली
अमझेरा, धार, म.प्र.
मो.– 9893119724

1
थके जब पर उड़ानों तक नहीं आते
सफर यूँ आसमानों तक नहीं आते
कभी जब तक यहाँ ढलता नहीं सूरज
परिंदे सब ठिकानों तक नहीं आते
चुकाये ग़र चलाये तीर जो तुमने
निशाने फिर निशानों तक नहीं आते
पले दिल में हमारे फ़लसफ़े जितने
सभी चलकर ज़ुबानों तक नहीं आते
पुराने कायदे उनके मुसलसल बन
सभी बदले ज़मानों तक नहीं आते।

2
सोचता जो रहा शराफ़त से
बात रखता रहा रिवायत से
वास्ता, दोस्ती, वफा रखकर
दूर रहता रहा अदावत से
ठोकरें राह की बचाकर वो
पाँव रखता रहा हिदायत से
चाह उसको नहीं दुआओं की
साथ जिसका रहा लियाक़त से
जीत या हार हो ख़ुशी से वो
काम करता रहा सदाक़त से।

3
दोस्ती का सिलसिला
वास्तों से जा मिला
बेवज़ह रखना पड़ा
आपसे शिकवा.गिला
रास्ता ठहरा रहा
रुक गया जब काफिला
वो अकेला रह गया
फूल जो छुप कर खिला
पेड़ तो मुरझाएगा,
हो अगर जड़ से हिला
साथ उसके सब हुए
जो सही थी इत्तिला।

4
फूल सा हँसता रहूँगा
बाग में खिलता रहूँगा
तितलियों, भौरों के गाये
गीत मैं सुनता रहूँगा
सुन बहारों की शिकायत
दूर सब करता रहूँगा
हैं सभी आँखें मुझी पर
जानकर बचता रहूँगा
बन सहारा चाँद जैसा
रात भर चलता रहूँगा
भाप से पानी कभी फिर
बर्फ़ सा जमता रहूँगा।

आराधना प्रसाद
के – 58, पी. सी. कॉलोनी
हनुमान नगर, कंकड़बाग
पटना – 800020

1
वो गया वक़्त है जाकर नहीं आने वाला
दिल का यूँ है कि ये सब पर नहीं आने वाला
पेड़ जो था यहाँ फलदार उसे काट चुके
इस तरफ़ अब कोई पत्थर नहीं आने वाला
अपने मौज़ों पे न इतराए ये कह दो उससे
मिलने दरिया से समुंदर नहीं आने वाला
तुमको चाहत की जरूरत है तो बाहर निकलो
उल्फ़तें बाँटने वो घर नहीं आने वाला
जिसकी हर बात पे सब लोग हँसा करते हैं
आज सर्कस में वो ज़ोकर नहीं आने वाला
हौसलों को मेरी मंजिल का पता है शायद
अब मेरी राह में कंकर नहीं आने वाला।

2
अब ये साया नहीं जा सकता है
वो भुलाया नहीं जा सकता है
तुम मेरे प्यार को महसूस करो
दिल दिखाया नहीं जा सकता है
याद रखना इस अँधेरे के बिना
जगमगाया नहीं जा सकता है
मेरी आँखों में हैं कुछ ख़्वाब जिन्हें
यूँ चुराया नहीं जा सकता है
अब भी कुदरत के ख़ज़ाने के बिना
कुछ बनाया नहीं जा सकता है
याद रख मौत की हक़ीकत को
साथ साया नहीं जा सकता है
एक धन होता है संतोष का धन
जो कमाया नहीं जा सकता है।

3
झील पर यूँ चमक रही है धूप
जैसे पानी की हो गई है धूप
क्यों हैं घर में अंधेरों के साये
जबकि छत पर टहल रही है धूप
जाने किसकी तलाश है इसको
क्यूं झरोखों से झांकती है धूप
सर्द राहों पे आके ज़म सी गई
छांव पाकर सिमट रही है धूप
शामे–ग़म की उदास राहों से
मुझसे पहले गुज़र चुकी है धूप।

4
फूल से होती है तितली को बला की चाहत
गुलशन–ए–इश्क में खुशबू सी बिख़रती चाहत
जिक्र तो करते हो चाहत का मगर क्या जानो
अच्छे–अच्छों को बनाती है भिखारी चाहत
तुम तो चाहत हो तुम्हें चाहने वाला जाने
कौन समझेगा यहाँ शान तुम्हारी चाहत
प्यार के साये में हम रहते थे खुशहाल बहुत
वक़्त की धूप ने दिखलाई पिघलती चाहत
घर से जो लौटे सनम आपके सोचा हमने
चाय की प्याली थी या थी वो उफ़नती चाहत
ढलते सूरज ने भी क्या खूब क़रिश्मा देखा
शाम ने ओढ़ी बदन पर जो गुलाबी चाहत
होती है चाह जहां राह भी मिल जाती है
हौसला रखती है वो ख़ूब सयानी चाहत।

सुधीर कुमार प्रोग्रामर
आंगलोक, पार्वती मिल, सुल्तानगंज
भागलपुर – 81321(बिहार)
मोबाइल – 9334922674

1
हवाओं का रुख़ आजमाएगी बेटी
ख़ुशी की इमारत बनाएगी बेटी
सिपाही अँधेरा समाने से पहले
पिता घर का दीपक जलाएगी बेटी
किताबों का कानून ने हक़ दिया जो
गरीबों को पढ़कर बताएगी बेटी
खुलेआम बिकने लगे ग़र अदालत
तो जनता अदालत लगाएगी बेटी
चलाने लगी जब हवा में हवाई
तो दुश्मन के छक्के छुड़ाएगी
बहुत चोट खाई ज़माने से फिर भी
मुहब्बत की दुनिया बसाएगी बेटी
विधाता हथेली पर लिख ही दिए तो
नये घर को भी जगमगाएगी बेटी।

2
राजधानी पाँव पैदल रात में निकली
सतरंगी सोच के ज़ज़्बात में निकली
भोर में ऐसी ख़बर आई गई सुनकर
हिचकियों से जान रोटी.भात में निकली
मौन बैठी थी अदालत और काँधे पर
न्याय की अर्थी गज़ब हालात में निकली
फूल पर सिक्का उछलता रह गया बाहर
आह! की आवाज़ भीतर.घात में निकली
चीन से चीनी हुआ यह जानकर शायद
झुण्ड लेकर चींटियाँ बारात में निकलीं।

3
हमारी शोख़ धरती की अनोखी शान है हिंदी
सरल मीठी सुरीली तान की पहचान है हिंदी
यहीं गंगा, यहीं यमुना, यहीं काबा, यहीं काशी
ये पावन हिंद धरती पर, धवल परिधान है हिन्दी
इसी की रूह में तुलसी, कबीरा, सूर, मीरा हैं
ये रामायण, यही गीता, यही कुरआन है हिंदी
हमारी माँग है सरकार से इक राष्ट्रभाषा दे
समूचे हिन्द पट्टी का यही अरमान है हिंदी
सजाती है सुहागन माँग को सिंदूर से जैसे
धरा पर राष्ट्रगीतों के लिए कुर्बान है हिन्दी।

4
कुछ फ़र्ज़ निभाने हैं, कुछ कर्ज़ चुकाने हैं
हिन्दी के सिरहाने में, अनमोल ख़ज़ाने हैं
शब्दों की बदौलत ही, धोती और पगड़ी है
हिंदी की फ़सल में ही, जय हिन्द घराने हैं
आज़ाद हुआ भारत, पर हाय री मजबूरी
अमरित तो बीत गए, क्या और बहाने हैं
ललकार रही हिंदी, धिक्कार रही हिन्दी
बस वोट की खातिर ही उनको भरमाने हैं
सरकार जो अपनी है, दरकार उन्हीं से है
हर साल कसम खाती, अब हाल बताने हैं।

कृष्ण कुमार प्रजापति
प्रजापति भवन, मेन रोड
राउरकेला (ओडिशा)
मो. 9437044680

1
जिन्दगी की राह में धोका, मुकद्दर दे गया
रहबरी जिसको न आती थी, वो रहबर दे गया
अपने भाई के गलत इन्साफ़ का मारा हूँ मैं
मेरे हिस्से में ज़मीनें सारी बंज़र दे गया
जिसके तलवों में कभी काँटा नहीं चुभने दिया
मेहरबानी उसने की, काँटों का बिस्तर दे गया
ये मेरी दरियादिली है, ये मेरा ज़र्फ़ो.ज़मील
ख़ुद तो मैं बेघर रहा लेकिन तुझे घर दे गया
दोस्ती की ख़ातिर, ज़माने भर से कर ली दुश्मनी
दोस्त ही सौ ज़ख़्म, मेरे दिल के अन्दर दे गया
जिन्दगी भर सबके होठों पर हँसी रखता रहा
कौन था जो मेरी आँखों को समन्दर दे गया
लड़कियाँ पथराव करने निकल आयीं 'कुमार'
फूल के हाथों में आखिर कौन पत्थर दे गया।

2
हमने सब कुछ किया, कुछ न हासिल हुआ
कैसा वक़्त आ गया, जीना मुश्किल हुआ
पार सबको जो हँसकर लगाता रहा
आज डूबा तो ग़मगीन साहिल हुआ
मेरी ख़ुशियों में सब लोग आये मगर
मेरे दु:ख में कहाँ कोई शामिल हुआ
आँख उठती नहीं है किसी की तरफ़
तुझ पे क़ुर्बान जबसे मेरा दिल हुआ
सब बुलाये गये, सबकी शिरक़त हुई
कौन उसके सिवा जाने.महफ़िल हुआ
मशवरा देने लगता है हर बात पर
मेरा बेटा तो मुझसे भी क़ाबिल हुआ
जिन्दगी में 'कुमार' उसको मंजिल मिली
जिस किसी का सफ़र सू.ए.मंज़िल हुआ।

3
बन्द रखेंगे आप धन्धा कब तलक
बैठकर खायेंगे पैसा कब तलक
उठ ही जाता एक दिन रुख़ से नक़ाब
तुम छुपाये फ़िरते चेहरा कब तलक
अपनी मेहनत से न बाज़ आयेंगे हम
सच न होगा कोई सपना कब तलक
चाँद तारे सो गये, सो जाइये
देखिएगा उसका रस्ता कब तलक
तू भी अपना इक ठिकाना ढूँढ ले
यूँ फिरेगा मारा.मारा कब तलक
नेकियाँ भी कुछ कमा ले ऐ 'कुमार'
तू कमायेगा ये दुनिया कब तलक।

4
जो कहा तूने उसे आम किया है मैंने
मैं हूँ मुजरिम तुझे बदनाम किया है मैंने
प्यार इन्साँ की जरूरत है कोई पाप नहीं
प्यार इक गुल से सरेआम किया है मैंने
मेरी बिछड़ी हुई राधा से मिला दे मुझको
तेरी सेवा बहुत घनश्याम किया है मैंने
घर से बेघर हुए लोगों को बसाने के लिए
अपना क्या कुछ नहीं नीलाम किया है मैंने
ज़िम्मेदारी ने कभी चैन से रहने न दिया
जब रुकी साँस तो आराम किया है मैंने
अपने ओहदे से ही तो लोगों में पहचान नहीं
शायरी में भी तो कुछ नाम किया है मैंने
मुझको तहजीब सिखायी है बुजुर्गों ने 'कुमार'
नौकरों से भी न तुम ताम किया है मैंने।

शिवनारायण
शांति निकेतन कॉलोनी
भूतनाथ रोड, पटना
मोबाइल – 9334333509

1
ग़म का क्या उपचार नहीं है
लोगों में किरदार नहीं है
ऊपर ऊपर क्या पढ़ लोगे
जीवन यह अख़बार नहीं है
हम रिश्तों में जीने वाले
कोई भी दीवार नहीं है
जो ख़ुशियों पर ताला जड़ दे
ऐसी भी सरकार नहीं है
'शिव' को यह मालूम हुआ है
जीना यह दुश्वार नहीं है।

2
हर तरफ़ अब यहाँ भुखमरी देखिये
चीख से गूंज़ती झोपड़ी देखिये
खेत की हर फ़सल धूप फिर ले गई
इन किसानों की अब ज़िन्दगी देखिये
इतने अपराध के ग्राफ बढ़ने लगे
सहमी सहमी हुई हर गली देखिये
रेत पर पाँव अपने ज़लेंगे बहुत
हर तरफ़ एक सूखी नदी देखिये
सिर्फ काँटे उगे 'शिव' के खलिहान में
आँख में आज मेरी नमी देखिये।

3
बेख़बर सरकार है
और चुप अख़बार है
मैक़शी गली गली
राजपथ फ़रार है
है सियासत बस यही
एक कारोबार है
हाथ में ख़ंजर छुपा
कहते तुमसे प्यार है
गुल के रास्तों में 'शिव'
पेंच काँटेदार है।

4
सुख दुःख का बँटवारा कर लो
मेरा और तुम्हारा कर लो
जीवन है तो चाहे इसको
खट्टा मीठा सारा कर लो
आने वाले दिन बोलेंगे
जो है आज गुज़ारा कर लो
ख़ाली हाथ तुम्हें जाना है
जितना चाँद सितारा कर लो
खिंच कर 'शिव' आ जाएगा ही
मन अपना बंज़ारा कर लो।

ममता किरण

1
भारी बहुत था उसके लिए, उस निशा का रुख़
दामन में हौसले थे, किया फिर ज़िया का रुख़
कब ख़ेत में बुआई है, किस बीज की उचित
तय करता है किसान, समझकर मृदा का रुख़
धरती की गोद में, वो समा जाएंगी अभी
कब राम जान पाये कि क्या है सिया का रुख़
बच्चों की शक़्ल देख के, छोड़ा ख़्याल ये
ग़म अपने भुलाने को, करे मयक़दा का रुख़
उसने सलाह और किसी से, न ली कभी
हर बार मशविरे को, किया माँ पिता का रुख़
सूली पे उसको टांग के, जो लोग भी थे ख़ुश
उनको भी दी दुआ, न किया बद्दुआ का रुख़
हैरान है तमाम बहस, सुन के जज भी अब
शातिर ने किस सलीक़े से, मोड़ा ख़ता का रुख़

2
वही अशआर अक्सर आप, हम, सब गुनगुनाते हैं
कि जिनमें ज़िंदगी के फ़लसफे मिलते मिलाते हैं
किताबी ज्ञान से तो आप बस रोटी कमाते हैं
सबक जीने के, अनुभव मीठे ख़ट्टे ही सिखाते हैं
ख़ुदा बन कर के आड़े वक़्त में जो साथ आते हैं
उन्हीं के नूर से हम जिंदगी में ज़गमगाते हैं
जो जीते ज़िंदगी को हैं बहुत ही सावधानी से
क़दम उनके भी राहों में कभी तो लड़खड़ाते हैं
क़माया हो तो वो जानें, क़माया जाता है कैसे
जो दौलत बाप दादा की कमाई की उड़ाते हैं
चमन में दुर्दशा फूलों की हो, उनको नहीं मतलब
हैं कवि ऐसे भी अब जो बागवां का गान गाते हैं
उन्हें सेवा नहीं बस लालसा है धन कमाने की
करोड़ों ले विधायक तब ही ख़ुद को बेच पाते हैं

3
जब व्यस्तता के बीच में अवसर लगा मुझे
अपने ही साथ रहना ही बेहतर लगा मुझे
यूं तो सुनी थी उसकी जो अच्छाइयां बहुत
उससे मिली तो और भी बढ़कर लगा मुझे
पत्थर से नारी बन गयी वो पल था क्या गज़ब
जब राम आगे बढ़ गये ठोकर लगा मुझे
बच्चों के घर में रहने को हैं चार दिन बहुत
बस अपने घर में रहना ही बेहतर लगा मुझे
दुबका पड़ा था कोने में घर, अब चहक रहा
आया खिलौना घर में, तो घर, घर लगा मुझे
इक़ है हवा हवाई तो मिट्टी से इक़ जुड़ा
दोनों के बीच साफ़ ये अंतर लगा मुझे
अपने हिसाब से मेरे रब ने बहुत दिया
फ़िर भी रही कमी कहीं अक़्सर लगा मुझे।

4
राहों से मेरी ख़ार हटा क्यों नहीं देते
राहों में मेरी फूल बिछा क्यों नहीं देते
कहते हो मेरे जैसा नहीं कोई है रहबर
ऐसा है तो मंज़िल का पता क्यों नहीं देते
करते हो अगर प्यार उसे ज़ां से जियादा
ये बात है तो उसको ज़ता क्यों नहीं देते
क्यों ढोये चले जाते हो बीमार सा रिश्ता
तुम ज़िंदगी से अपनी हटा क्यों नहीं देते
ना हो के मेरे पास पिता रहते हैं हरदम
ये सच है मगर मुझको सदा क्यों नहीं देते
पत्तों से जुदाई का बहुत दुःख है शज़र को
तुम उसको दिलासा दे घटा क्यों नहीं देते
वो राज जो वर्षों से दबा रक्खा है तुमने
वो राज जमाने को बता क्यों नहीं देते
वो मान चुका हार जो जीवन से कभी का
जीने की कला उसको सिखा क्यों नहीं देते
ज़लते ही रहे दीप इरादों के मेरे जब
फ़रमान था हवा को बुझा क्यों नहीं देते
करते हैं दग़ा आप से जो आप के बन कर
नजरों से उनको अपनी गिरा क्यों नहीं देते
नफरत की अगन फैल रही है जो चमक में
हो बाग़वां सच्चे तो बुझा क्यों नहीं देते।

नज़्म सुभाष
कनकसिटी आलमनगर
लखनऊ
मो.–639489504

1
दबे कुचले हताश इसलिए इंसान दिखते हैं
जिधर भी डालिये नज़रें उधर हैवान दिखते हैं
लगाई उल्लुओं ने जबसे पंचायत गुलिस्तां में
हैं पत्ते काँपते रहते तने हैरान दिखते हैं
वही मस्ज़िद वही मंदिर, है केवल फ़ेर नज़रों का
वहीं अल्लाह दिखते हैं, वहीं भगवान दिखते हैं
भला कबतक डटे रहते मछेरे अपनी नावों में
समुंदर में उमड़ते कुछ नये तूफ़ान दिखते हैं
कहीं पर बम धमाके हैं कहीं है अश्क़ आँखों में
मग़र ख़ामोश हैं सारे, सभी अंज़ान दिखते हैं
लड़ा जाएगा भीषण युद्ध अब सत्ता में आने को
'नये संदर्भ' में इतिहास के अभियान दिखते हैं
इन्हें चुगने की ज़ल्दी है उसे इनको फ़ँसाने की
शिक़ारी को परिन्दे ये बड़े नादान दिखते हैं।

2
चील–कौवे, बाढ़, लाशें, नाव, पानी देखिए
आँक़ड़ों में देश की स्वर्णिम कहानी देखिए
सूखते तालाब में ज़िन्दा हैं कैसे मछलियाँ
केचुओं के ज़िस्म पर चस्पा निशानी देखिए
राष्ट्र की इस नींव को दीमक लगी है चाटने
आप आतिशबाज़ियाँ ही आसमानी देखिए
कुर्सियों की कामना मातम धुनें फिर से बजें
ख़िलख़िलाती ड्रैकुला की राजधानी देखिए
मैं उज़ाले के निकट आकर के भी हैरान हूँ
स्याह रातों की बुनी सच्ची कहानी देखिए
कोर्ट से वह छूट आया बन नपुंसक ही सही
आप बेबस पेट में पलती निशानी देखिए
हिन्दू–मुस्लिम की इतर मुद्दे यहाँ ख़ामोश हैं
ये हमारे वक़्त की मुर्दा ज़वानी देखिए।

3
तुम उठाओ तेग अपनी वाहवाही के लिए
सर कटी लाशें लड़ेंगी बेगुनाही के लिए
बाज़ को क़ातिल बता पाना न जब संभव हुआ
तब पकड़ लाए कबूतर कार्यवाही के लिए
डिग्रियाँ लेकर यहाँ सब तिलमिलाते भूख से
और हाज़िर हैं निरक्षर बादशाही के लिए
रात की रंगीनियों में संगमरमर का बदन
पेशे–ख़िदमत कीजिए ज़िल्लेइलाही के लिए
न्याय की दहलीज़ पर जब घूसख़ोरी आम है
कोर्ट कैसे दंड देगा धन उगाही के लिए
पैग का हर फ़ायदा रक्खेंगे अपनी ज़ेब में
और विज्ञापन करेंगे हम मनाही के लिए
दुश्मनों की मैं शिकायत 'नज़्म' अब क्योंकर करूँ
दोस्त ही काफी हों जब मेरी तबाही के दिए।

द्विजेन्द्र 'द्विज'
निकट आईटीआई धर्मशाला
लोअर बड़ोल दाड़ी
मो.–9418465008

1
अँधेरे चंद लोगों का अगर मक़सद नहीं होते
यहाँ के लोग अपने आपमें सरहद नहीं होते
न भूलो, तुमने ये ऊँचाइयाँ भी हमसे छीनी हैं
हमारा क़द नहीं लेते तो आदमक़द नहीं होते
फ़रेबों की कहानी है तुम्हारे मापदंडों में
वरना हर जगह बौने कभी अंगद नहीं होते
तुम्हारी यह इमारत रोक पाएगी हमें कबतक
वहाँ भी तो बसेरे हैं जहाँ गुम्बद नहीं होते
चले हैं घर से तो फिर धूप से भी जूझना होगा
सफ़र में हर ज़गह सुंदर घने बरगद नहीं होते।

2.
इन्हीं हाथों ने बेशक विश्व का इतिहास लिखा है
इन्हीं पर चंद हाथों ने मग़र संत्रास लिखा है
हमारे सामने पतझड़ की चादर तुमने फैलाई
तुम्हारे उपवनों में तो सदा मधुमास लिखा है
जहाँ तुम आजकल सम्पन्नता के गीत गाते हो
अभावों का वहाँ तो आज भी आवास लिखा है
फ़रेबों की कहानी पर यक़ीं कैसे हो आँतों को
तुम्हारे आश्वासन हैं, इधर उपवास लिखा है
अँधेरे बाँटना तो आपकी फ़ितरत में शामिल है
उजालों का हमारे गीत में उल्लास लिखा है
बताओ किस तरह बदलें हम उलझी भाग्य रेखाएँ
बनाएँ घर कहाँ 'द्विज' वो जिन्हें वनवास लिखा है।

4
छलनी क़दम–क़दम पे है सीना पहाड़ का
दूभर किया है किसने ये ज़ीना पहाड़ का
चमके हैं दूर से जो नगीना पहाड़ का
बनता है देखते ही क़रीना पहाड़ का
जिस तरह चढ़ रहे हैं वो ज़ीना पहाड़ का
लगता है बैठ जाएगा सीना पहाड़ का
भाता अग़र है आपको ज़ीना पहाड़ का
लेकर कहाँ से आएँगे सीना पहाड़ का
घाटी की प्यास और ये मीना पहाड़ का
महँगा पड़े न ज़ाम ये पीना पहाड़ का
जो देखना है तुझको भी ज़ीना पहाड़ का
सर्दी में आके काट महीना पहाड़ का
ये ग़ार–ग़ार सीना ये रिसता हुआ वजूद
दामन किया है किसने ये झीना पहाड़ का
सबको पता है अब नये बनिए की आँख में
चुभता है किस क़दर ये दफ़ीना पहाड़ का
इमदाद हो कोई कि इशारा वतन का हो
आता है काम ख़ून–पसीना पहाड़ का
साज़िश कुछ इस तरह हुई यारो पहाड़ से
सड़कों से आके सट गया सीना पहाड़ का
जो चाहते हैं आप भी ज़ीना पहाड़ पर
मत भूलिएगा आप क़रीना पहाड़ का।

3
कौंध रहे हैं कितने ही आघात हमारी यादों में
और नहीं अब कोई भी सौगात हमारी यादों में
वो शतरंज जमा बैठे हैं हर घर के दरबाज़े पर
शह उनकी थी, अपनी तो है मात हमारी यादों में
ताज़महल को लेकर वो मुमताज़ की बातें करते हैं
लहराते हैं कारीगरों के हाथ हमारी यादों में
घर के सुंदर स्वप्न सँज़ोकर, हम भी कुछ पल सो जाते
ऐसी भी तो कोई नहीं है रात हमारी यादों में
धूप ख़्यालों की ख़िलते ही वो भी आख़िर पिघलेंगे
बैठ गये हैं जमकर जो 'हिमपात' हमारी यादों में
जलता रेगिस्तान सफ़र है, पग–पग पर है तन्हाई
सन्नाटों की महफ़िल सी, हर बात हमारी यादों में
सह जाने को, चुप रहने का, मतलब यह बिल्कुल भी नहीं
पलता नहीं कोई भी प्रतिघात हमारी यादों में
सच को सच कहना था जिनको, आख़िर तक सच कहना था
काँधे हैं 'द्विज' वो बनकर 'सुकरात' हमारी यादों में।

अविनाश भारती
अहियापुर, साहेबगंज
जिला–मुजफ्फरपुर
मो. 9931330923

1
कौन आए इधर या उधर से यहाँ
सुब्ह भी गर्म है दोपहर से यहाँ
शौक़ से मत कहो पेट के वास्ते
दूर हैं हम सभी अपने घर से यहाँ
बाप से हैं ख़फ़ा घर के बेटे सभी
दूर जैसे परिन्दा शज़र से यहाँ
क्यों नहीं है दिखाता ख़बर ये कोई
जो भी देखी है सबने नज़र से यहाँ
एक दूजे के दुश्मन बने हैं सभी
मौत होती नहीं अब उहर से यहाँ।
बात 'अविनाश' ईमां की करते हो तुम
लोग उठते कहाँ है कमर से यहाँ।

2
बात झूठी नहीं मैं असल कहता हूँ
मैं जुदा और से आजकल कहता हूँ
इक दफ़ा मैंने महफ़िल में देखा उसे
नाम जो भी रहे मैं ग़ज़ल कहता हूँ
मीर, ग़ालिब, निराला को जबसे पढ़ा
झोपड़ी को तभी से महल कहता हूँ
दिन गुज़ारे जो थे मैंने तेरे लिए
ज़िन्दगी के गुलों को कँवल कहता हूँ
आप 'अविनाश' मेरी ग़ज़ल देखिये
खून आसान मीठी सरल कहता हूँ।

3
इस वबा की घड़ी में सताने लगे
मौत के क्यूँ भला सब ठिकाने लगे
भूख से इक परिन्दा तड़पता मिला
दिन पुराने हमें याद आने लगे
घर के बच्चों को क्या हो गया दोस्तो
आज सबको ये आँखें दिखाने लगे
इस ज़हर का क़हर देखिये तो ज़रा
अपनों से खुद को हम बचाने लगे
बैर 'अविनाश' हमको ज़माने से क्या
घर हमारा भला क्यों जलाने लगे।

4
हाँ, सैरो–सफ़र में मुझे हर दर में मिला है
जो भी मिला है फ़लसफ़ा ठोकर से मिला है
रोने लगे थे बोल के क़ातिल भी ये मेरे
तेरा पता ये हमको तेरे घर से मिला है
झुकने को दिखावा किया करते मेरे हाकिम
झुकने को हुनर भी उन्हें अंबर से मिला है
लौटा कहाँ वो आज तलक तट पे दुबारा
दरिया जो कभी जा के समंदर से मिला है
जो हो रहा है घर में उसे यूँ नहीं मालूम
ये शक नहीं, मालिक जो है,नौकर से मिला है।

विकास विदीप्त
बरेका, वाराणसी,
मो.–9794839182

1
टपकती धूप टूटे छप्परों से, ले हथेली पर
खुशी से खेलता बच्चा दिखा कच्ची हवेली पर
कभी भी भूख़ की चिंता, अभी सोने की ख़्वाहिश है
बहुत उलझा हुआ है आदमी ऐसी पहेली पर
सुई–धागा से सीकर एक गुड्डा जब मिला उसको
जमाए रौब लड़की, बॉर्बी वाली सहेली पर
नहीं होती दहेजी चीज़ कोई प्यार से उम्दा
किरासन मत उड़ेलो तुम किसी दुल्हन नवेली पर
उसे अभिमान रहता है कुकर्मों की कमाई का
मुझे है गर्व मेहनत से मिली हर इक अधेली पर।

2
इस ज़माने में तिज़ारत की बड़ी हलचल रही है
पर मुहब्बत की ज़रूरत भी मुझे हरपल रही है
दुश्मनों की है लड़ाई आग, अबतक ज़ल रही है
अब मुहब्बत की ज़गह शंका की आँधी चल रही है
एक दरिया की तरह है जो उसे सहरा कहें क्यों
है ग़लतफ़हमी यही तो बात मन में खल रही है
कह रहा वह मूढ़ बेटा आज अपनी माँ को पागल
माँ अभागी जिसके पीछे उम्र भर पागल रही है
ज़ेब सूनी, हाथ खाली, पाँव में चप्पल पुरानी
पर हुनर ऐसा मिला, दुनिया सदा क़ायल रही है।

3
मिला हो हुस्न जब इफ़रात इतराया नहीं जाता
निग़ाहों से क़हर हर दिल पे बरपाया नहीं जाता
नए लोगों से मिलिए शौक से हर रोज़, पर उनमें
केई आशिक़ बनाकर इश्क़ फ़रमाया नहीं जाता
बनाते हैं तसल्ली से, लगा लेते हैं होठों से
कशिश से हो भरा जो ज़ाम, छलकाया नहीं जाता
हक़ीमों ने कई हाकिम–हुक्क़ामों ने की कोशिश
हमारे सर से क्यों काला घना साया नहीं जाता
कहीं वो बारिशें दिन रात दम भर कर बरसती हैं
कहीं उन बादलों से एक पल छाया नहीं जाता।

4
आज वो आ गए थे ज़माने के बाद
कीमती वक़्त सारा बिताने के बाद
उनसे पूछा कि कैसे कटे इतने दिन
वो सिसकने लगे मुस्कुराने के बाद
कौन सुलगा रहा है ये चिंगारियाँ
आग लोगों से मिलकर बुझाने के बाद
हाकिमों ने लिया आज फिर फ़ैसला
ज़ाम जी भर के पीने–पिलाने के बाद
चीख़ती है हवा, रो रहा आसमां
इक क़यामत हुई उनके जाने के बाद
गीत–ग़ज़लें, गुलों की महक, मूसीकी,
है जरूरी मग़र चार दाने के बाद
सच कहा जाए सब चाहते थे मग़र
ख़लबली मच गई सच बताने के बाद।

शरदनारायण खरे
पुलिस थाने के सामने,
तिलक वार्ड, मंडला (म.प्र.),
फोन - 7642-253060

(1)
दीवारें उठाने की सियासत न कीजिए
सच बोलूँगा ज़रूर शिकायत न कीजिए
जो प्यार के संसार में काँटों को बिखेरे
ऐसी तो गिरे भाई इनायत न कीजिए
ये मुल्क मुहब्बत का इक चमन था दोस्तो
मज़हब के नाम गन्दी विरासत न कीजिए
कल का जहाँ क्यों आज से झगड़ों में रहे
जो बाँट दे दिलों को, वसीयत न कीजिए
इन्सानियत के दायरे के पार हो 'शरद'
ऐसी तो आप मुझसे अदावत न कीजिए।

(2)
ज़िन्दगी के दौर में रोज़ ही होता है अब
झूठा-कपटी चैन की नींद में सोता है अब
दुश्मनों की बात तो अब मैं भला क्यूँकर करूँ
दोस्त ही नित राह में काँटों को जब बोता है अब
झूठ का हर सिम्त यारो, क़हक़हों का शोर है
और यहाँ इन्साफ़ तो काज़ी के घर रोता है अब
अपनी ख़ातिर जो जिया बस उसने ही जीवन जिया
जो लड़ा सबके लिए अपना सुकूँ खोता है अब
ऐ 'शरद' अब हाल मैं, आगे क्या तुमसे कहूँ
छोड़कर अच्छाई को बाक़ी सभी होता है अब।

(3)
दूर क्यूँकर के खुशी से हो गई है ज़िन्दगी
है सभी कुछ, पर नहीं वो, अनमनी है ज़िन्दगी
वक़्त आगे बढ़ गया पर, मानो सब कुछ रुक गया
तुम गए उस मोड़ पर, ठहरी हुई है ज़िन्दगी
जाने कब आएगा मुझको जीने का असली मज़ा
बेचैन हूँ क्यूँकर के बस थोड़ी बची है ज़िन्दगी
ख़्वाब उनका जब भी आया, तब मुझे ऐसा लगा
है बदन पहले का तो भी, कुछ नई है ज़िन्दगी
दर्द बाँटा ना 'शरद', ना ही सहेजा मेरा ग़म
साथ रहकर भी लगा सब, अज़नबी है ज़िन्दगी।

(4)
अपनी ही धुन में देखिए खोए हुए हैं लोग
जागे हुए हैं या कि फिर सोए हुए हैं लोग
करके ये रोज़ पाप अब गंगा के नीर से
अपने सभी दुराचरण धोए हुए हैं लोग
खुदगर्ज़ी, झूठ, द्वेष की आदत ही पड़ गई
काँटे खुद अपनी राह में बोए हुए हैं लोग
चेहरे को देखकर लगा, वो खुशगवार हैं
सम्पन्नता तो है मगर रोए हुए हैं लोग
अब और क्या होने को शेष रह गया 'शरद'
पहले से ही तो जानवर होए हुए हैं लोग।

1
उसने क़सर न छोड़ी, लाचार बनाने में
ख़ोया रहा मैं खुद का क़िरदार बनाने में
ये आपकी दुआ ली, तो नूर सलामत है
दुनिया लगी हुई थी बीमार बनाने में
ग़र्दन की उम्र कितनी, अब देख कहाँ तक है
हर ओर सब भिड़े हैं, तलवार बनाने में
घर तोड़ती बहू को, ये ना हो पता शायद
कितना लहू भुना है, परिवार बनाने में
बचपन से हक़ हमेशा, भाई ने ज़ताया था
अब दर्द हो रहा है, हक़दार बनाने में।

2
ये शासकों की सलाह है साहब
सवाल करना गुनाह है साहब
जिसे हैं सरगम समझ के बैठे
वो आमजन की क़राह है साहब
कहो गुलिस्ताँ का क्या करोगे
इसी पे सबकी निग़ाह है साहब
न अब चलाओ जुबानी बारिश
किसान सच में तबाह है साहब
न कम से कम पग़ार दे दो
दो बेटियों का निक़ाह है साहब।
आँखों में प्राचीर छुपाए रखता है।

3
औरों की दुनिया में झाँका जाता है
खुद को दीवारों से ढाका जाता है
लाख हुनर हो शामिल लेकिन ये सच है
कमजोरों को कम ही आँका जाता है
इस हालत में दर्ज़ी खोज़ नहीं मिलता
घाव दिलों का खुद ही ढाँका जाता है
पहले दाना डालो जाल लगाओ फिर
मछली ऐसे थोड़े छाँका जाता है
ख़बर बनेगी फिर अनुकूलित कमरे में
धूल धुआँ अब किससे फाँका जाता है।

4
उलझन, आँसू, पीर छुपाए रखता है
क्या–क्या वह तस्वीर छुपाए रखता है
खुद को मेहनत से करता है सब हासिल
बक्से में तक़दीर छुपाए रखता है
दिखला देता है ज़ख़्मों का गहरापन
किसने मारा तीर छुपाए रखता है
कितने दिल की उसपर दावेदारी है
किस–किस का जागीर छुपाए रखता है
हाथ 'सुमन' के यूँ तो एक घरौंदा है

अंजनी कुमार 'सुमन'
नौलक्खा (पूरब)
सफियाबाद
मो.–9709964609

प्रकाश पुरोहित
धनश्री आशियाना हांडे लॉन्स के पीछे,
औताडे हांडे वाड़ी, पुणे
मो.–9422193853

1
दीन पर ईमान है क्या
दीन की पहचान है क्या
मानता अल्लाह को मैं
क्या तेरा–मेरा भगवान है क्या
पुर अमन है एक बस्ती
सोचकर हैरान है क्या
आदमी तू भी है मैं भी
आदमी इन्सान है क्या
जानवर हो या बशर हो
ये बता बेजान है क्या
ग़श्त ज़ारी है पुलिस की
अम्न काइ इमक़ान है क्या
बात गहरी है तो कह दे
शेर में दीवान है क्या?

2
छुपी हुई सी कोई नज़र है घर के अंदर
नज़र मुझे न आए मगर है घर के अंदर
कमरे में स्वर्गीय पिता की आहट सी है
पूजा घर में माँ का स्वर है घर के अंदर
ब्याह हुआ बेटे का तबसे ये आलम है
लगता है इक दूज़ा घर है घर के अंदर
चेहरे जाने–पहचाने हैं लेकिन फिर भी
अन्जाना सा कोई डर है घर के अंदर
वैसे तो हर चीज़ क़री से रक्खी है
कुछ तो है जो तितर–बितर है घर के अंदर
आँगन में बाहर खूँटे से गाय बँधी है
डॉगी का अपना बिस्तर है घर के अंदर
साइकिल से स्कूटर, स्कूटर से मोटर तक
साठ साल का यही सफ़र है घर के अंदर।

3
कोई भी हो रिश्ता अब तो नाटक लगता है
हमको हर चेहरा ज़ासूसी पुस्तक लगता है
ऐसी बात नहीं रातों को डर ना लगता हो
जबतक गहरी नींद न आए तबतक लगता है
खटका सा होता है इक आहट सी होती है
दरवाज़े पर देगा कोई दस्तक, लगता है
प्रश्नचिह्न लगता है तब बेटे के होने पर
माँ जाया बेटा जब माँ को दत्तक लगता है
सुबह का भूला शाम को आएगा दरवाज़े पर
ना जाने क्यों ऐसा हमको अब तक लगता है।

4
नज़र बेदार रखना
ज़हन हुशियार रखना
ये बस्ती मज़हबी है
कोई हथियार रखना
जुबाँ हो बंद लेकिन
नज़र में धार रखना
यहाँ सब कुछ बिकेगा
खुला बाज़ार रखना
बेमानी हैं रिश्ते
मग़र दो–चार रखना
शहर होता रहेगा
गली गुलज़ार रखना
तेरी मसरूफ़ियत में
मेरा इतवार रखना।

धर्मपाल महेन्द्र जैन

1.
दो भागों में देश
बँट गया है दो भागों में देश
कुछ ज़िन्दों में शेष लाशों में देश
जनसेवकों के बेटे दौलत यहाँ की
ज़ागीर है उनकी निग़ाहों में देश
कोठियाँ, हेलिकॉप्टर, नवसेठिये खुश
नगरवधू है उनकी बाँहों में देश
चैम्बर है, सेक्रेटरी है, आरामदेह कुर्सी
फाइल है अफ़सरों की शामों में देश।
सत्ता के प्यासे चिर टपकाते लार
पछाड़े जा रहे अपने दावों से देश
कुछ भूखे–नंगे बेघर हैं थके हारे
बनाते हैं अपने अभावों में देश
खेतों–कारखानों में पिघलाते शरीर
सलामत हैं उनके लावों में देश
वे ग़रीबों को मुर्दा समझ बैठे हैं
जी रहा है फिर से भुलावों में देश।

3.
शेर के कारण
सन्नाटा हर ओर शेर के कारण
हवा है आदमख़ोर शेर के कारण
सरसराते पौधे, काँपती पत्तियाँ
जड़ से हिले पेड़, शेर के कारण
मुँह लगे गीदड़ लपलपाते जीभ
बन गये दरबान शेर के कारण
नदी–नालों में होंठ सी लिये अपने
नीर हुआ रक्त, शेर के कारण
चप्पा–चप्पा मुख़बिर घात में बैठे
हर घर है वीरान, शेर के कारण
क्या समय, किस काल की बातें करें
गूँगी हुई ज़नता बस शेर के कारण।

4.
सत्ता की देह
अब आसमान से ज़मीन ताकिये नेताजी
बस सत्ता की देह में झाँकिये नेताजी
बदलिये दल, ज़माइये कुर्सी, बेचिये देश
भागिये सबसे तेज़, न हाँफिये नेताजी
पद बिन मरूस्थल है जन–सेवक का जीवन
चालों की अगली चाल भाँपिए नेताजी
जन रहे शोषित क्यों कीजिए चिंता
बटोरिये जीभर नोट, वोट छापिये नेताजी
यहाँ रोटी से आगे नहीं सोचती प्रजा
आप तो बेफिक्र हो रथ हाँकिए नेताजी।

1.
चौराहे ठसाठस हैं
क्रान्ति दब गई रेशमी कोड़ों से
चौराहे ठसाठस हैं फिर भी गपोड़ों से
सीने पे घाव सहने के दावे थे
वे परेशां हो गये हैं चंद फोड़ों से
दो जून रोटी की लड़ाई लड़ रहे थे
भूख मर गयी उनकी सुविधा के पकोड़ों से
देश भूखा–प्यासा कंकाल का ढाँचा
उत्सव की गंध है उनके रसोड़ों से
कुर्सी अन्नदाता कुर्सी माई–बाप, सर्वस्व
कुर्सी–सा बेज़ान तंत्र, बन रहा निगोड़ों से।

कंचनलता चतुर्वेदी
मीरापुर बसहीं
वाराणसी (उप्र.)
मो.–9532742070

1
जहाँ ईमान बिकता है, वहाँ आचार क्या देखें
जहाँ दूषित रहे परिवेश तो सत्कार क्या देखें
नशे की लत नहीं इज्जत, नहीं दिखता भला मानुष
वहाँ हम प्रेम या विश्वास या अधिकार क्या देखें
जड़ें हम सींचते परिणाम को देखे बिना ही तो
भला हर बात पर हम सब यहाँ सरकार क्या देखें
यहाँ तो खेलते हैं श्वास से कैसे कहूँ पीड़ा
करे बंजर धरा लालच भरा व्यापार क्या देखें
कभी बाँधा नहीं था, पोटली थी संस्कारों की
करम कुछ भी नहीं अपना बता संसार क्या देखें
नहीं सुनना किसी की लाडली मारी गयी फिर से
सना हो खून से बोलो तुम्हीं अख़बार क्या देखें
यहाँ जो मौन था पत्थर जिसे हम देवता समझें
तुम्हीं बोलो उसे बनता हुआ हथियार क्या देखें
मरी बेटी सियासत को मसाला मिल गया फिर से
मची हलचल, जली कुटिया, उठी चीत्कार क्या देखें।

2
छोड़ कल की बात तू चल आज की बातें करें
हम नई दुनिया नये अंदाज की बातें करें
ख़त्म हो कैसे बुराई सोचने की बात यह
हम बढ़ें लेकर शपथ आग़ाज़ की बातें करें
बात करते संस्कारी सुत शराबी क्यों बना
राज कर गंभीर है इस राज़ की बातें करें
हो सुशोभित देश निज सद्कर्म के क़िरदार से
बेटियाँ हँसने लगें परवाज़ की बातें करें
हों हृदय उत्तम सभी के शूल हम बोएँ नहीं
मीत के सिर पर सजें हम ताज की बातें करें
दिल न तोड़ें हम किसी का प्यार की खुशबू रहे
बैठकर हम साथ में हम राज की बातें करें
हैं दुखी 'कंचनलता' फिर क्यों मरी बेटी यहाँ
ख़त्म हो कैसे चलो उस बाज की बातें करें।

प्रसन्न वदन चतुर्वेदी 'अनघ'
श्यामपुरी बीका कॉलोनी
मीरापुर–बसही
वाराणसी,
मो.–70067675218

1
गड़े मुर्दे उखाड़े जा रहे हैं
सभी क़िरदार ताड़े जा रहे हैं
बनाया जा रहा अच्छे–बुरों का
बने चेहरे बिगाड़े जा रहे हैं
बने कुछ दोस्त जबसे फेसबुक पर
पुराने ख़त वो फ़ाडे जा रहे हैं
मुझे खुद से समझकर बेख़बर यूँ
वो अपनी ख़ूब झाड़े जा रहे हैं
दहाड़े जा रहे हैं घर के बाहर
मग़र घर में लताड़े जा रहे हैं
बनाने को अनघ अट्टालिकाएँ
हरे जंगल उजाड़े जा रहे हैं।

2
जो दर्द से वाक़िफ़ नहीं वो क्या दवा दे पाएगा
भटका हुआ खुद रहनुमा क्या रास्ता दे पाएगा
मौसम घने बादल लिए लेकिन हवा भी तेज है
पानी नहीं देगा हमें बस बुलबुला दे पाएगा
उम्मीद अब इन्सानियत की मत करो इन्सान से
जो चीज़ वो रखता नहीं कैसे भला दे पाएगा
जो दूर कर छिप गया है ढूँढ़ता हूँ मैं जिसे
ये देखना है कौन अब उसका पता दे पाएगा
जो काम कुछ करता नहीं, वो बात करता है बहुत
वो और कुछ तुमको नहीं बस झुनझुना दे पाएगा
ये उम्र की दरकार है, बूढ़ा हुआ लाचार है
लेकिन वही सबसे सही इक मशवरा दे पाएगा
अनज़ान हूँ इस शहर में कोई मेरा अपना नहीं
अपना वही होगा 'अनघ' जो आसरा दे पाएगा।

3
ज़ानकर भी बन रहे अनज़ान सब
जानते हैं, हैं यहाँ मेहमान सब
हम अलग मानें मग़र ऐसा नहीं
एक हैं संसार के भगवान सब
आँख कुदरत ने तरेरी जब कभी
देखिए होने लगे हलक़ान सब
जब कभी सत्ता सही शासन करे
देखकर होते यहाँ हैरान सब
आपको जैसा देखा है जब मैंने कभी
जाग जाते हैं मेरे अरमान सब
नाम जब भगवान का लेने लगे
मुश्किलें फिर हो गईं आसान सब
जब जड़ों से दूर अपने हम हुए
खो दिया हमने 'अनघ' पहचान सब।

4.
हँसना नहीं, रोना नहीं, कहना नहीं, सुनना नहीं
ऐसी अग़र हो ज़िन्दगी, रहना हमें ज़िन्दा नहीं
अहसास सारे मर गये दुनिया के हर इन्सान के
आते नहीं, जाते नहीं, मिलना नहीं, जुलना नहीं
हाथों में जबसे आ गये विज्ञान के कुछ झुनझुने
यारी नहीं, गपशप नहीं, अब रूबरू रहना नहीं
रिश्ते सिमटकर रह गए, माँ–बाप तक, बच्चों तलक
दादी नहीं, दादा नहीं, नानी नहीं, नाना नहीं
देखा जरा–सी बात पर गोली चला करती यहाँ
सब चिड़चिड़े से हो गये, इक़ बात भी सहना नहीं
पहचान में आते नहीं, बहुरूपिया सब हो गए
विश्वास की पूँजी नहीं, संस्कार का गहना नहीं
ये हम कहाँ तक आ गए, है सोचता अक़्सर 'अनघ'
क्यों शर्म की है बात ये अब आँख से गिरना नहीं।

मुनव्वर अली 'ताज'
सबजेल शुजालपुर सिटी, शाजापुर (म.प्र.)
07306-245506

(1)
बेहतर है हर बशर से समझता है आदमी
कितने मुग़ालतों से गुज़रता है आदमी
ये जिस्म ज़िन्दगानी की ऐसी सराय है
जिसमें बिना किराया ठहरता है आदमी
लाता है शादमानी के गौहर निकालकर
गहराइयों में ग़म की उतरता है आदमी
पहले बनाना पड़ता है मुंसिफ़ ज़मीर को
तब जाके अपने आप सुधरता है आदमी
मिलती है 'ताज' दर्द की शिद्दत को इन्तहा
तब जाके आदमी से निकलता है आदमी।

(2)
कैसा है, क्या है, क्यों है सवालों का हल नहीं
ग़म को समझना दोस्तो इतना सरल नहीं
ग़म गैस नहीं, ठोस नहीं और तरल नहीं
ग़म को परखने में कोई अब तक सफल नहीं
खुशियाँ ही दे हमेशा मगर ग़म कभी नहीं
आदि से अन्त तक कोई ऐसी ग़ज़ल नहीं
मैं पी चुका हूँ दर्द के सागर को इसलिए
ग़म के दबाव से मिरी आँखें सजल नहीं
जो 'ताज' है उसी पे ही उठती हैं उँगलियाँ
कीचड़ बिना खिले कोई ऐसा कमल नहीं।

(3)
जुल्मतकदे को नूर बना तो सही कभी
सूरज की तरह खुद को जला तो सही कभी
बस जाएगी किनारों प' उल्फत की बस्तियाँ
दरिया बना के खुद को बहा तो सही कभी
बोलेंगी अपने आप तवाज़ुन की ग़ल्तियाँ
अपना कलाम खुद को दिखा तो सही कभी
बेहद लज़ीज़ होते हैं लुक़्मे हराम के
खुद को शिकम केशर से बचा तो सही कभी
मायूसियों को 'ताज' तबस्सुम में ढालकर
नाकामियों को धूल चटा तो सही कभी।

सामबे
डिक्सन रोड, भागलपुर
फोन - 06411-2406374

(2)
आज सच को बताओ सुलगते सुलगते
हाथ अपना उठाओ सुलगते सुलगते
ये पंडितत पुरोहित, ये मुल्ला, ये काजी
आँख इनको दिखाओ सुलगते सुलगते
ये सत्यम्-अहिंसा धरम है सनातन
न हमको सिखाओ सुलगते सुलगते
न कोई है दाता, न कोई है मालिक
ये किस्सा सुनाओ सुलगते सुलगते
ये धरती-सिरिष्टी है ब्रह्मा की माया
भरम ये मिटाओ सुलगते सुलगते।

(3)
ये जमी कैसे बेहतर हो कोशिश करो
दूर खूनी ये मंजर हो कोशिश करो
हो न लम्बी, न छोटी, मझोली मिसाईल
नीले नभ में कबूतर हो कोशिश करो
इस स्वयंवर में टूटेगा उनका भरम
ऐसा ही अब स्वयं ही कोशिश करो
एक दीये के तले में है सारा शहर
रोशनी कैसे घर-घर में हो कोशिश करो
एक दीये के तले में है सारा शहर
रोशनी कैसे घर-घर हो कोशिश करो।

(4)
सर के ऊपर है जमी पाँवों तले आकाश है
इस जगह में एक मेरा ही तो बस इतिहास है
हर कदम पे है चुनौती हर जगह संघर्ष है
राम की असली कथा तो जानकी के पास है
हम तो शम्बूक की तरह सुनते रहेंगे वेद-मन्त्र
मेरी गरदन को तुम्हें जुल्म का अहसास है
हर नई पीढ़ी तो लव-कुश की तरह ही होती है
जिनकी नजरों में हुकूमत सड़ रही इक लाश है
हम तो रघुकुल के नहीं रघुनाथ थे अय 'सामबे'
किसकी साजिश से मिला यारों हमें बनवास है।

ग़ज़ाला तबस्सुम
आसनसोल, पश्चिम बंगाल
मो.–9932992400

1.
शोहरत की बुलन्दी से उतर जाने के डर से
हम ख़ौफ में हैं अपना असर जाने के डर से
सहमे रहे हैं तन्हा बिखर जाने के डर से
भटका किए हम राह में, घर जाने के डर से
बाक़ी न रहा लुत्फ़ कोई ज़िन्दगी में अब
बस यूँ ही जिए जा रहे, मर जाने के डर से
दुनिया को झुका लेती है कदमों में वो इक दिन
दस्तार जो झुकती नहीं सर जाने के डर से
है जोश मगर होश का दामन नहीं छोड़ा
क्यों काट दें हम पाँव, ठहर जाने के डर से
देती हैं सदाएँ मुझे भी इश्क़ की सरहद
ठहरे हुए हैं हद से गुज़र जाने के डर से
है दर्द के दम से ही मेरी शायरी ज़िन्दा
जख़्मों को कुरेदा किए भर जाने के डर से

2
अंदाज़ से अलग नए तवेर लिए हुए
शीशे खड़े थे हाथ में पत्थर लिए हुए
मुमकिन है ये भी होगा किसी दौर में यहाँ
आएँगे फूल भी कभी नश्तर लिए हुए
जुगनू की हैसियत को न कम आँकिये जनाब
उड़ता फिरे है खुद में इक अख़्तर लिए हुए
फिर से सजी हैं शाख़ें, चमन में हैं रौनकें
आई बहार फूलों का ज़ेवर लिए हुए
आग़ाज़ हो रहा है नए इक सफ़र का फिर
आया है पेशकश नई रहबर लिए हुए
किस बात का गुरूर है, मिलना है ख़ाक में
आए हैं आप खाक़ का पैकर लिए हुए
कारीगरी कमाल की कुदरत की देखकर
हैरान हूँ मैं तितलियों के पर लिए हुए।

3
बता रहे थे वो खुद को महान काग़ज़ पर
लड़ा रहे थे दो गूंगे जुबान काग़ज़ पर
उनींदे लफ़्ज़ हैं, एहसास भी हैं बोझिल से
उतार डाली है किसने थकान काग़ज़ पर
तड़प है टीस है जख़्मों की मेरी ग़ज़लों में
दिखेंगे, गौर से देखो निशान काग़ज़ पर
हमें न मुब्तला उलझन में ज़िन्दगी करना
दिए हैं हमने सभी इम्तिहान काग़ज़ पर
क़लम के साथ हुई ज़ंग रात लफ़्ज़ों की
निकल गई है स्याही की जान काग़ज़ पर
ये ज़िन्दगी फ़ना हो जाएगी मेरी इक दिन
बची रहेगी मगर दास्तान काग़ज़ पर।

सुसंभाव्य
प्रकाशन

कार्यालय

भवानी कॉम्पलेक्स, पटल बाबू रोड
गुरुद्वारा गली के सामने, भागलपुर (बिहार)
Mob.: 9931240303